मुकुन्दमाला स्तोत्र

राजा कुलशेखर की स्तुतियाँ

अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के संस्थापकाचार्य
कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद
तथा उनके शिष्यगण द्वारा

मुकुन्दमाला स्तोत्र

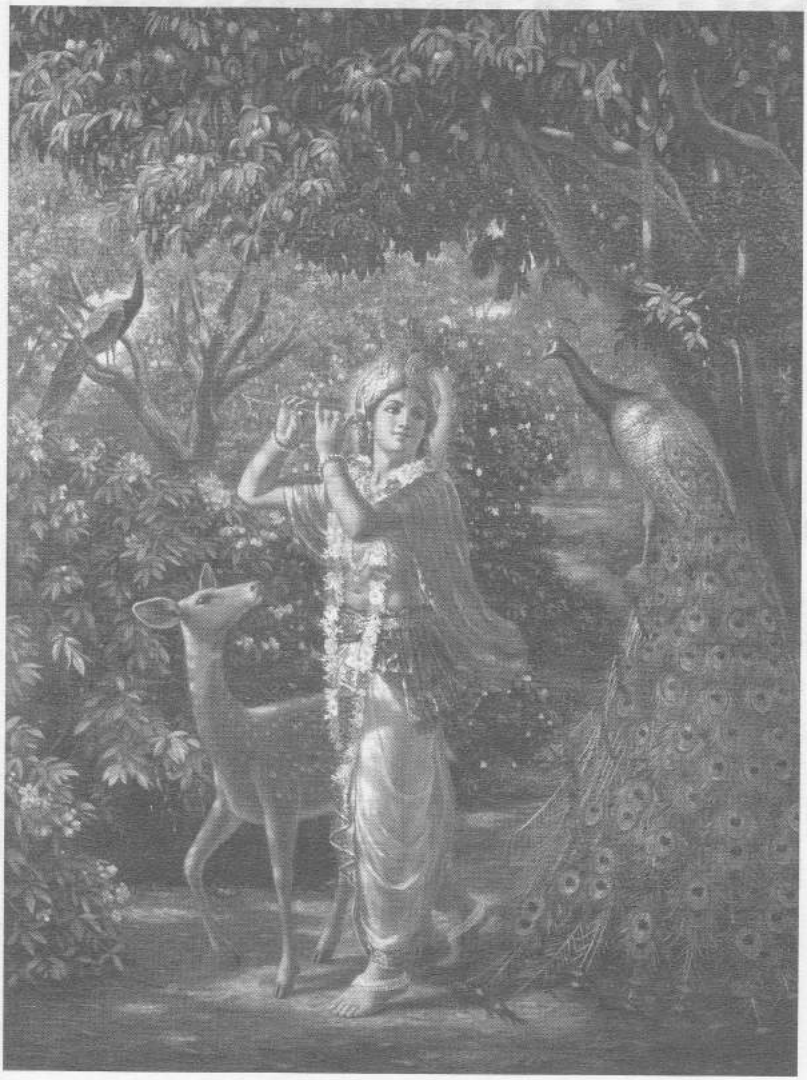

विषय-सूची

भूमिका ..... *vii*

मुकुन्दमाला स्तोत्र १

श्लोक १* १

श्लोक २* १०

श्लोक ३* १९

श्लोक ४* २४

श्लोक ५* ३०

श्लोक ६* ३३

श्लोक ७ ..... ३५

श्लोक ८ ..... ३७

श्लोक ९ ..... ३९

श्लोक १० ..... ४२

श्लोक ११ ..... ४४

श्लोक १२ ..... ४६

श्लोक १३ ..... ४८

श्लोक १४ ..... ५१

श्लोक १५ ..... ५३

श्लोक १६ ..... ५५

श्लोक १७ ..... ५८

श्लोक १८ ..... ६२

श्लोक १९ ..... ६५

श्लोक २० ..... ६७

श्लोक २१ ..... ७०

श्लोक २२ ..... ७२

श्लोक २३ ..... ७४

श्लोक २४ ..... ७६

श्लोक २५ ..... ७८

श्लोक २६ ..... ८१

श्लोक २७ ..... ८३

श्लोक २८-२९ ..... ८६
श्लोक ३० ..... ८९
श्लोक ३१ ..... ९१
श्लोक ३२ ..... ९४
श्लोक ३३ ..... ९६
श्लोक ३४ ..... ९९
श्लोक ३५ ..... १०२
श्लोक ३६ ..... १०५
श्लोक ३७ ..... १०८
श्लोक ३८ ..... ११०
श्लोक ३९ ..... ११३
श्लोक ४० ..... ११५
श्लोक ४१ ..... ११७
श्लोक ४२ ..... १२०
श्लोक ४३ ..... १२२
श्लोक ४४ ..... १२४
श्लोक ४५ ..... १२७
श्लोक ४६ ..... १२९
श्लोक ४७ ..... १३२
श्लोक ४८ ..... १३५
श्लोक ४९ ..... १३७
श्लोक ५० ..... १४०
श्लोक ५१ ..... १४२
श्लोक ५२ ..... १४४
श्लोक ५३ ..... १४६
परिशिष्ट १४९
श्रील प्रभपाद के विषय में १४९
सन्दर्भ ग्रन्थ १५२
श्लोकानुक्रमणिका १५३
उद्धृत श्लोकों की अनुक्रमणिका १५९
शब्द-सूची १६३

भूमिका

राजा कुलशेखर द्वारा रचित *मुकुन्दमाला स्तोत्र*—परम ईश्वर, उनके भक्तों तथा उनकी लीलाओं के पवित्र स्थलों के गुणगान में लिखे गीत—सैकड़ों काव्यमय संस्कृत स्तोत्रों में से सर्वाधिक प्रसिद्ध सदाबहार स्तोत्र है। कुछ लोगों का कहना है कि इसके रचयिता ने भगवान् कृष्ण की प्रसन्नता हेतु श्लोकों की माला के रूप में इसकी संकल्पना की थी। यह समस्त वैष्णव सम्प्रदायों के लिए दीर्घकाल से अत्यन्त प्रिय ग्रंथ रहा है और हमारे आध्यात्मिक गुरुवर, श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद, प्रायः इसके कुछ रुचिकर पद्यों को उद्धृत करने में आनन्द लेते थे।

राजा कुलशेखर भगवान् विष्णु की दिव्य प्रियतमा, श्री के द्वारा प्रस्थापित वैष्णव सम्प्रदाय, श्री सम्प्रदाय से जुड़े थे। इस सम्प्रदाय के सर्वाधिक प्रसिद्ध प्रतिनिधि, रामानुजाचार्य ने (ग्यारहवीं शताब्दी में) नाथ मुनि तथा यामुनाचार्य जैसे अपने पूर्ववर्तियों के ग्रन्थानुसार इस सम्प्रदाय का सृजन किया और श्री वैष्णव मत के क्रमबद्ध दर्शन की स्थापना की। किन्तु ये आचार्य आलवार नामक योगसिद्ध कवियों की पहले से चली आ रही प्राचीन परम्परा के अंग थे। समय समय पर दक्षिण भारत में, आज के तमिलनाडु के ही क्षेत्र में, बारह आलवार प्रकट हुए थे। श्रीवैष्णवों की परम्परा के अनुसार सबसे पहले के आलवार पाँच हजार से अधिक वर्ष पूर्व, अर्थात् आधुनिक कलियुग के प्रारम्भ के समय विद्यमान थे, जबकि सर्वाधिक अर्वाचीन आलवार ईसा के प्रथम सहस्राब्द में विद्यमान थे।

आलवारों का सम्पूर्ण तमिल काव्य *तिरुवायमोलि* नामक ग्रंथ में संग्रहीत किया गया था, जिसका सम्मान श्रीवैष्णवजन अपनी भाषा के वेद के रूप में करते थे। *तिरुवायमोलि* में वर्णित भक्ति प्रमाण के आधार पर सारे श्रीवैष्णवजन अपने आपको उभयवेदान्त का अनुयायी मानते हैं—ऐसा द्वैत वेदान्त दर्शन जो

संस्कृत तथा तमिल दोनों भाषाओं के शास्त्रों पर आधारित है। कुछ आलवार आदर्शभूत संन्यासी थे : इनमें से तीसरी आलवार आण्डाल नामक स्त्री थी और तीन आलवार शासन चलाते थे। इनमें से दसवें आलवार कुलशेखर पेरुमाल हुए, जो मलैनाडु (आज का केरल) के चेरवंश के शासक थे। आधुनिक विद्वानों का कहना है कि वे नौवीं ईस्वी शताब्दी में रहे होंगे।

राजा कुलशेखर का परम्परागत इतिहास बताता है कि एक बार जब वे अपने महल के कक्ष में सो रहे थे, तो उन्हें भगवान् कृष्ण का तेजोमय तथा सुस्पष्ट दर्शन हुआ। जागने पर वे भक्तिवश समाधिस्थ हो गये और वे यह नहीं जान पाये कि सुबह कब हुई। राजकीय गायक तथा मंत्रीगण सदा की भाँति उन्हें जगाने के लिए उनकी ड्योढ़ी पर आये, किन्तु कुछ समय तक प्रतीक्षा करने पर कोई उत्तर न पाकर अनिच्छा से उनके कक्ष में प्रवेश करने का साहस जुटाया। तब राजा की समाधि टूटी और उन्होंने उन सभी को अपने कृष्ण दर्शन करने की बात बताई। उसी दिन से शासन करने में उनकी रुचि घटती गई। उन्होंने अपना अधिकांश उत्तरदायित्व मन्त्रियों को सौंप दिया और स्वयं भगवान् की भक्ति में लग गये। कुछ वर्षों बाद उन्होंने सिंहासन त्याग दिया और श्रीरंगम चले गये, जहाँ वे रंगनाथ के कृष्ण अर्चाविग्रह तथा उनके उत्कृष्ट भक्तों की संगति में रहते रहे। कहा जाता है कि श्रीरंगम में ही कुलशेखर ने अपने दो महान् ग्रन्थों की रचना की। ये हैं—संस्कृत में *मुकुन्दमाला स्तोत्र* तथा १०५ तमिल स्तुतियाँ, जिन्हें बाद में *पेरुमाल तिरुमोलि* शीर्षक से *तिरुवायमोलि* में सम्मिलित कर दिया गया।

जिस प्रकार अन्य आलवार की योगिक रहस्यवादी अभिव्यक्तियाँ हैं, उसी तरह राजा कुलशेखर अपने ग्रन्थ *पेरुमाल तिरुमोली* में भगवान् रामचन्द्र तथा भगवान् कृंष्ण के अन्तरंग भक्तों में से राजा दशरथ, माता कौशल्या तथा माता देवकी एवं वृन्दावन की कुछ युवा गोपियों के चरित्रों का अनुकरण करते हैं। किन्तु महाराज कुलशेखर ऐसे गुह्य भक्ति रसों की अनुभूति करने में कोई गर्व नहीं जताते। इसके विपरीत, वे बारम्बार दीन भाव से यही याचना करते हैं कि उन्हें उस स्थान में, जहाँ भगवान् कृष्ण लीलाएँ रचाते हैं, पक्षी, मछली या फूल के रूप में अगला जन्म लेने की अनुमति दी जाय, जिससे वे उनके भक्तों की संगति का आनन्द ले सकें।

यद्यपि *मुकुन्दमाला स्तोत्र* उत्कृष्ट संस्कृत में रचा गया है, किन्तु यह कृष्ण के प्रति राजा कुलशेखर की सहज भक्ति तथा अन्य सभी के साथ अपने सौभाग्य को बाँटने की उत्सुकता है। इस तरह से अत्यन्त लौकिक कृति होने से यह अन्तरंग रहस्योद्घाटनों में या दुरूह दार्शनिक पहेलियों में प्रवेश नहीं करती। स्तोत्र परम्परा के अधिकांश अन्य ग्रन्थों की तरह इसका लक्ष्य किसी कथावस्तु को समुपस्थित करने की अपेक्षा ईश्वर के प्रेमी की सही सही भावनाओं को पूरी सत्यता तथा स्पष्टता के साथ व्यक्त करना है। हम पाठकों को इतने विवरण से पूरी तरह सन्तुष्ट हो जाना चाहिए, क्योंकि यह हमारे लिए दुर्लभ अवसर है जब राजा कुलशेखर जैसे महान् भक्त अपने हृदय को इतनी उन्मुक्तता के साथ खोल रहे हैं—और ऐसी शैली में जो हमारे लिए सर्वथा उपयुक्त है, जिससे अपनी अपूर्णताओं के बावजूद हम इसे सराह सकें।

प्रस्तुत संस्करण के विषय में

१८९५ में श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने संस्कृत में जो संस्करण प्रकाशित किया था, उसी का उपयोग करते हुए श्रील प्रभुपाद ने १९५० के उत्तरार्द्ध में *मुकुन्दमाला स्तोत्र* का अनुवाद करना आरम्भ किया, किन्तु छः श्लोकों का अनुवाद और भाष्य पूरा करने के बाद इसे रोक कर वे *श्रीमद्भागवत* के कार्य में जुट गये। इसके बाद उन्होंने इसे फिर कभी हाथ में नहीं लिया। फिर भी उनकी यह स्पष्ट इच्छा थी कि *मुकुन्दमाला स्तोत्र* प्रकाशित किया जाये, क्योंकि उन्होंने *श्रीमद्भागवत* के प्रथम स्कन्ध के तीनों खण्डों के प्रारम्भ में अपनी अन्य अंग्रेजी पुस्तकों की सूची में इसे भी सम्मिलित किया था।

१९८९ में अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के 'गवर्निंग बाडी कमीशन' ने सत्स्वरूप दास गोस्वामी से *मुकुन्दमाला स्तोत्र* को पूरा करने का अनुरोध किया। श्रील प्रभुपाद के सबसे पुराने शिष्यों में से एक सत्स्वरूप दास गोस्वामी विगत वर्षों में उनके सर्वाधिक विद्वान तथा साहित्यिक अनुयायी के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुके थे। वे संघ की मासिक पत्रिका 'बैक टु गॉडहेड' के पश्चिमी देशों से प्रकाशन की अवधि में लगभग तेईस वर्षों तक सम्पादक रह चुके थे और कई पुस्तकें भी लिख चुके थे, जिनमें से श्रील प्रभुपाद की जीवनी

के छः खण्ड सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं।

सत्स्वरूप दास गोस्वामी ने यह कार्य सहर्ष स्वीकार किया और भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट के संस्कृत सम्पादक श्री गोपी पराणधन दास से *मुकुन्दमाला स्तोत्र* के शेष सैंतालीस श्लोकों का अनुवाद करने में सहायता ली। तत्पश्चात् उन्होंने अत्यन्त सावधानी से स्वयं तात्पर्य लिखे, जिनमें प्रायः श्रील प्रभुपाद कृत भगवद्गीता तथा *श्रीमद्भागवत* एवं अन्य ग्रन्थों से उद्धरण दिये। इस तरह यह पुस्तक तैयार हुई है और हमें विश्वास है कि यह भक्तों, विद्वानों तथा सामान्यजनों के लिए समान रूप से सूचनाप्रद होगी।

—प्रकाशकगण

सम्पादक की टिप्पणी : इसमें *लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण* के उद्धरण, "दि ग्रेट क्लासिक्स आफ इण्डिया" के १९८५ के संस्करण से और *भक्तिरसामृतसिन्धु* के उद्धरण १९८२ के संस्करण से दिये गये हैं।

मायावाद के विषय में महत्त्वपूर्ण टिप्पणी

मायावादी भाष्य सुनिले हय सर्वनाश

"जो भी मायावादी दर्शन का श्रवण करता है, समझो उसका सर्वनाश हो गया।"
(*चैतन्य-चरितामृत मध्यलीला* ६.१६९)

अपनी सभी पुस्तकों में श्रील प्रभुपाद बारम्बार 'मायावादियों' के विरुद्ध बोलते हैं। प्रायः 'मायावादी' शब्द का अर्थ—"वह भौतिकतावादी व्यक्ति, जो इस जगत के सुखों में आनन्द की अनुभूति पाता है" के रूप में लगाया जाता है, किन्तु वास्तव में 'मायावादी' का अर्थ है, 'मायावाद का अनुयायी।' 'मायावाद' आदि शंकराचार्य के 'अद्वैतवाद' का दूसरा नाम है।

मायावादियों के अनुसार कृष्ण तथा उनकी भक्ति दोनों ही माया के प्रतिफल हैं। वे मानते हैं कि सारी वस्तुएँ 'एक' हैं और आध्यात्मिक जीवन का लक्ष्य 'ईश्वर से एकाकार' होना है। वे निर्विशेषवादी हैं; वे यह समझते हैं कि ईश्वर *निराकार* हैं। वे यह नहीं स्वीकार करते कि सर्वोच्च वास्तविकता पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण हैं।

मायावाद विभिन्न नामों तथा रूपों में भारत तथा उसके बाहर फैला हुआ है। मायावाद ने लोगों का ध्यान पुरुषोत्तम भगवान् से दूर हटाकर तथा उन्हें यह झूठी आशा दिलाकर कि वे 'ईश्वर से एकाकार' हो सकते हैं, विश्व के आध्यात्मिक जीवन में तबाही मचा रखी है। इसीलिए वैष्णव आचार्यों ने, विशेषतया श्रीपाद रामानुजाचार्य, श्रीपाद मध्वाचार्य तथा भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु ने मायावाद का डटकर विरोध किया है। उन्होंने शास्त्रों तथा सामान्य बुद्धि से प्रमाण देकर उन अनेक विसंगतियों का भण्डा-फोड़ करते हुए इसका क्रमबद्ध खण्डन किया है, जिन पर मायावाद की नींव खड़ी है।

परम सत्य की सही समझ यह है कि कृष्ण (विष्णु) सर्वोपरि हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने *भगवद्गीता* में इसे प्रत्यक्ष रूप से प्रस्थापित किया है और समस्त

वैष्णव दार्शनिकों ने इसे स्वीकार किया है। कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर हैं। वे निराकार **नहीं** हैं। वे अपने दिव्य रूप (*सच्चिदानन्दविग्रह*) में शाश्वत रूप से स्थित रहते हैं। दिव्य सत्य की सर्वोच्च समझ यह है कि *ईश्वर पुरुष हैं* और अन्य सारे जीव उनके नित्य दास हैं। इसलिए हमें ईश्वर बनने का प्रयास नहीं करना चाहिए, अपितु उनकी अधीनता स्वीकार करके उनकी शरण ग्रहण करनी चाहिए।

महान् वैष्णव आचार्यों की परम्परा में श्रील प्रभुपाद ने सदैव मायावाद का विरोध किया। उन्होंने बारंबार इसमें निहित दोषों तथा विसंगतियों को जोरदार ढंग से जगजाहिर किया। श्रील प्रभुपाद के ग्रंथ, मायावाद तथा मायावादियों के सन्दर्भों से भरे पड़े हैं, किन्तु इस विषय के सम्यक् विश्लेषण के लिए पाठकों को उनकी पुस्तक 'श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षाएँ' पढ़नी चाहिए।

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट
मुकुन्दमाला स्तोत्र अनुवाद एवं सम्पादकीय बोर्ड
(संस्कृत से अंग्रेजी)

सत्स्वरूप दास गोस्वामी
तात्पर्य लेखक एवं प्रधान संपादक

गोपीपराणधन दास अधिकारी
अनुवादक तथा संस्कृत संपादक

द्रविड़ दास ब्रह्मचारी
अंग्रेजी संपादक

मुकुन्दमाला स्तोत्र

श्लोक १ *

श्रीवल्लभेति वरदेति दयापरेति
भक्तप्रियेति भवलुण्ठनकोविदेति।
नाथेति नागशयनेति जगन्निवासे-
त्यालापिनं प्रतिदिनं कुरु मां मुकुन्द॥ १॥

श्री-वल्लभ—हे लक्ष्मी प्रिय; **इति**—इस प्रकार; **वरद**—हे वरदाता; **इति**—इस प्रकार; **दया-पर**—हे अहैतुकी कृपावाले; **इति**—इस प्रकार; **भक्त-प्रिय**—हे अपने भक्तों के प्रिय; **इति**—इस प्रकार; **भव**—जन्म-मृत्यु की पुनरावृत्ति; **लुण्ठन**—हर लेने में; **कोविद**—आप जो निपुण हैं; **इति**—इस प्रकार; **नाथ**—हे स्वामी; **इति**—इस प्रकार; **नाग-शयन**—सर्प (अनन्तशेष) की शैया पर शयन करने वाले; **इति**—इस प्रकार; **जगत्-निवास**—हे विश्व के आवास; **इति**—इस प्रकार; **आलापिनम्**—गायन करने वाले; **प्रति-दिनम्**—प्रतिदिन, नित्य; **कुरु**—कृपया बनाएँ, करें; **माम्**—मुझे; **मुकुन्द**—हे मुकुन्द।

अनुवाद

हे मेरे स्वामी मुकुन्द! कृपा करके आप मुझे अपने नामों का निरन्तर कीर्तन करने वाला बनने दिजीये, जिससे मैं आपको इस तरह सम्बोधित कर सकुं—श्रीवल्लभ (जो लक्ष्मी को अत्यन्त प्रिय हैं), वरद (जो वर देने वाले हैं), दयापर (जो अहैतुक रूप से दयालु हैं), भक्तप्रिय (जो अपने भक्तों को अति प्रिय हैं), भव-लुण्ठन-कोविद (जो जन्म-मृत्यु के चक्कर को समाप्त करने में दक्ष हैं), नाथ (परमेश्वर), जगन्-निवास (ब्रह्माण्ड के आश्रय) तथा नाग-शयन (नागशैया पर लेटने वाले)।

तात्पर्य

भगवान् का भक्त वह है, जो दिव्य आनन्द से विभोर होकर पुरुषोत्तम भगवान् की महिमा का गुणगान करता है। यह आनन्द परम पुरुष के प्रति

*तारक चिह्न से अंकित श्लोक तथा तात्पर्य श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद द्वारा लिखे गये हैं।

पूर्ण ज्ञान तथा पूर्ण सन्तोष का आगमन होता है और हमारे समग्र जीवन में पूर्णता का अनुभव होता है।

इसके बाद राजा कुलशेखर श्री भगवान् को *दयापर* अर्थात् "अहैतुक रूप से दयालु" कहते हैं, क्योंकि ईश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई ऐसा नहीं है, जो अहैतुक रूप से हमारा दयालु मित्र हो। इसलिए वे दीनबन्धु अर्थात् "दीनों के मित्र" भी कहलाते हैं। दुर्भाग्यवश हम इस संसार में जरुरत पड़ने पर अपने मित्रों को खोजने लगते हैं और यह भूल जाते हैं कि कोई एक दीन मनुष्य दूसरे दीन की सहायता नहीं कर सकता। इस संसार का कोई भी व्यक्ति सभी तरह से पूर्ण नहीं है, यहाँ तक कि यदि व्यक्ति का ईश्वर से सम्बन्ध ही नहीं है, तो अधिकाधिक धनी व्यक्ति भी स्वयं को ही दीन ही अनुभव करता है। भगवान् के बिना सभी शून्य हैं, क्योंकि भगवान् ऐसी संख्या हैं, जो शून्य को दस, दो शून्यों को सौ, तीन शून्यों को हजार में बदल देते हैं। इस प्रकार 'शून्य व्यक्ति' भगवान् की संगति के बिना प्रसन्न नहीं रह सकता, जो कि परम 'एक' (अर्थात् १) हैं।

जिस तरह एक वत्सल पिता अपने दुखी पुत्र को सदैव सम्पन्न देखना चाहता है, उसी प्रकार ये परम 'एक' सदैव अपनी संगति के द्वारा हमारे शून्य प्रयासों को मूल्यवान बनाना चाहते हैं। किन्तु विद्रोही पुत्र अपने प्रिय पिता की सहायता को हठपूर्वक अस्वीकार कर देता है और इस तरह सभी प्रकार के कष्ट सहता है। इसीलिए भगवान् इस सृष्टि के सभी भागों में अपने प्रामाणिक प्रतिनिधि भेजते हैं और कभी कभी अपने पतित पुत्रों का उद्धार करने के लिए स्वयं भी आते हैं। इस निमित्त वे दिव्य जगत के अपने वास्तविक जीवन को प्रदर्शित करते हैं, जहाँ उनके साथ हमारा सम्बन्ध सेवक, मित्र, माता-पिता तथा प्रियतमा इत्यादि के रूप में होता है। इस भौतिक जगत में सारे सम्बन्ध इन्हीं मूल सम्बन्धों के विकृत प्रतिबिम्ब हैं। इस भौतिक जगत में हम मात्र वास्तविकता की छाया का ही अनुभव करते हैं, जो आध्यात्मिक जगत में विद्यमान है।

सर्व दयामय भगवान् को इस जगत में हमारी कठिनाइयों का ध्यान रहता है और वे हमें भगवद्धाम वापस बुलाने के लिए हमसे भी अधिक उत्सुक रहते हैं। हमारी विद्रोही प्रवृत्ति के बावजूद वे स्वभावतः हम पर दयालु रहते

हैं। हमारे विद्रोही स्वभाव के होते हुए भी वे हमें सारी आवश्यक वस्तुएँ यथा भोजन, वायु, प्रकाश, जल, शीत तथा गर्मी (ताप) प्रदान करते हैं। फिर भी चूँकि हमने अपने आपको उनसे विलग कर लिया है, इसलिए हम अपनी इस पैतृक सम्पत्ति को अव्यवस्थित ही करते हैं। समाज के नेता अपनी समस्त भौतिकतावादी योजनाओं के बावजूद राह-भटकाने वाले नेता हैं, क्योंकि उनके पास भगवान् से टूटे हुए हमारे सम्बन्धों को पुनरुज्जीवित करने की कोई योजना नहीं है। फिर भी भगवान् के प्रामाणिक भक्तगण उनके साथ हमारे दिव्य सम्बन्ध के सन्देश का प्रचार करने का भरसक प्रसार करते हैं। इस तरह भक्तगण पतितात्माओं को उनकी वास्तविक स्थिति का स्मरण कराते रहते हैं और उन्हें भगवद्धाम वापस लाने के लिए कार्य करते हैं। भगवान् के ऐसे निष्कलुष दास उन्हें अत्यन्त प्रिय हैं। वे अपने इस दयामय कार्य के लिए भगवान् से विशेष कृपा प्राप्त करते हैं और इसी जन्म में वे भगवद्धाम वापस जा सकते हैं—उन्हें दूसरा जन्म लेने के लिए बाध्य नहीं किया जाता।

इसीलिए इसके आगे भगवान् को "भक्तप्रिय" कहा गया है, जिसका अर्थ यह है कि वे 'अपने भक्तों के अत्यन्त प्रिय' हैं या 'वे जो अपने भक्तों के प्रति अति स्नेहिल हैं।' भगवद्गीता (९.२९) में भगवान् ने अपने भक्तों के प्रति अपने उत्कृष्ट दिव्य स्नेह का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है। भगवान् यहाँ घोषणा करते हैं कि यद्यपि वे समस्त जीवों के प्रति समान रूप से दयालु हैं, क्योंकि वे उनके अंश हैं और उनकी आध्यात्मिक संतान हैं, किन्तु जो लोग प्रेम तथा स्नेह के द्वारा उनसे विशेष रूप से जुड़े हुए हैं और जिन्हें उनके अतिरिक्त अन्य कुछ भी प्रिय नहीं है, वे विशेष रूप से उन्हें प्रिय हैं।

ईसा मसीह ऐसे शुद्ध भक्त के उदाहरणस्वरूप हैं, जिन्होंने ईश्वर का प्रचार करना नहीं त्यागा बल्कि निर्दयतापूर्वक सूली पर चढ़ाया जाना स्वीकार किया। वे ईश्वर में विश्वास करने के प्रश्न पर कभी भी समझौता करने को तैयार नहीं थे। ऐसा ईशपुत्र भगवान् का प्रिय होने के अलावा और कुछ नहीं हो सकता। इसी तरह जब ठाकुर हरिदास को पवित्र भगवन्नाम का कीर्तन करने का परित्याग करने के लिए कहा गया, तो उन्होंने ऐसा करने से साफ इन्कार कर दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि उन्हें बाईस बाज़ारों में कोड़ों से पीटा गया; और प्रह्लाद महाराज ने अपने विकट नास्तिक पिता हिरण्यकशिपु से कभी

भी सहमति नहीं जताई और इस तरह उन्होंने अपने पिता द्वारा की जाने वाली क्रूरताओं को स्वेच्छा से स्वीकार किया। ये भगवान् के प्रख्यात भक्तों के कतिपय उदाहरण हैं और हमें यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि ऐसे भक्त उन्हें कितने प्रिय हैं।

भगवान् ने बलपूर्वक घोषित किया है कि कोई भी किसी भी परिस्थिति में उनके भक्त का विनाश नहीं कर सकता। इसका अच्छा उदाहरण अम्बरीष महाराज हैं। जब महान् योगी दुर्वासा ने जानबूझकर अम्बरीष का प्राणान्त करना चाहा, तो भगवान् ने दुर्वासा को उपयुक्त दण्ड दिया, यद्यपि वे शक्ति-सम्पन्न योगी थे, जिनकी पहुँच सभी देवताओं तक, यहाँ तक कि स्वयं भगवान् तक थी।

कभी कभी भगवान् की सेवा के लिए भक्त अनेक अवरोधों को दूर करने का जोखिम लेते हुए भी, अपने पारिवारिक सम्बन्धों तथा घरेलू सुख-सुविधाओं का परित्याग कर देता है। क्या भगवान् अपने प्रामाणिक भक्त के इन त्यागों को भुला सकते हैं? नहीं, क्षणभर के लिए भी नहीं, क्योंकि भगवान् तथा उनके भक्त के बीच का सम्बन्ध आदान-प्रदान का है, जैसाकि *भगवद्गीता* (९.२९) में भगवान् ने स्पष्ट कहा है, "जो भी भक्तिपूर्वक मेरी सेवा करता है, वह मेरा मित्र है—वह मुझमें है—और मैं भी उसका मित्र हूँ।"

भक्त कभी भी भगवान् की सेवा करने के लिए उनके दर्शन पाने का इच्छुक नहीं होता। फिर भी भगवान् अपने भक्त के सम्मुख प्रकट होते हैं, क्योंकि वे उस वत्सल पिता की भाँति हैं, जो पुत्र द्वारा पिता को देखे जाने की अपेक्षा अपने पुत्र को देखने के लिए अधिक उत्सुक रहता है। स्नेह में ऐसा मात्रात्मक भेद होना यह कोई विरोधाभास नहीं है। ऐसी असमता मूल वास्तविकता में भी भगवान् तथा उनके भक्तों में पाई जाती है और यह न केवल मानव समाज में माता-पिता तथा सन्तान के बीच प्रतिबिम्बित होती है, अपितु पशु समाज में भी होती है। निम्न योनि के पशुओं में भी माता-पिता का स्नेह प्रकट होता है, क्योंकि मूलत: ऐसा स्नेह अपनी पूर्णता में जीवों की समस्त योनियों के आदि-पिता भगवान् में प्रदर्शित होता है। जब कोई मनुष्य किसी पशु का वध करता है, तो उसके स्नेहिल पिता भगवान् व्याकुल हो जाते हैं और हृदय में पीड़ा का अनुभव करते हैं। अत: पशु का बध करने वाला

भौतिक शक्ति द्वारा उसी तरह समुचित रूप में दण्डित होता है, जिस तरह कोई हत्यारा सरकार द्वारा पुलिस कार्यवाही के माध्यम से दण्डित होता है।

ईश्वर की कृपा से भक्त समस्त ईश्वरीय सद्गुणों को विकसित कर लेता है, क्योंकि भक्त कभी भी अज्ञान के अन्धकार में नहीं रह सकता। पिता अपने पुत्र को ज्ञान तथा अनुभव प्रदान करने के लिए सदैव आतुर रहता है, पुत्र चाहे इन निर्देशों को स्वीकार करे या अस्वीकार करे। एक विनित भक्त ज्ञान की सारी गुत्थियों से स्वत: अवगत हो जाता है, क्योंकि भगवान् अन्दर से ज्ञान के स्वप्रकाशित दीप से उसके अन्धकार को भगा देते हैं। यदि भगवान् स्वयं ही भक्त को शिक्षा दें, तो भला वह संसारी झगड़ालुओं की तरह मूर्ख क्यों बना रह सकता है?

पिता स्वभावत: अपने पुत्र के हितार्थ कार्य करना चाहता है और जब वह अपने पुत्र को डाँटता है, तो उस डाँट में स्नेह भी घुला रहता है। इसी तरह वे सारे प्राणी, जिन्होंने परम पिता के प्रति अवज्ञा के कारण वैकुण्ठ में अपना स्थान गँवा दिया है, भौतिक शक्ति के हाथों में पड़कर जीवन के तीन तापों का बन्दी जीवन बिताते हैं। तो भी, परम पिता अपने विद्रोही पुत्रों को भूलते नहीं हैं। वे उनके लिए वेद तथा पुराण जैसे शास्त्रों का सृजन करते हैं, जिससे वे उनसे भूले सम्बन्ध को पुनर्जीवित कर सकें और अपनी दैवी चेतना जागृत कर सकें। जो बुद्धिमान हैं, वे इन शास्त्रों में निहित ज्ञान का लाभ उठाते हैं और इस तरह जीवन की सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त करते हैं।

भगवान् अपने भक्तों को राहत देने तथा उन्हें दुर्जनों के कुटिल कार्यों से बचाने के लिए इस जगत में स्वयं अवतरित होते हैं। ईश्वर की असीम शक्ति को सामान्य व्यक्ति की सीमाओं में बाँधने का प्रयास करना और हठपूर्वक यह मानना कि भगवान् अवतरित नहीं हो सकते, मूर्खतापूर्ण धारणा है। भगवान् अपने भक्तों की भौतिक पीड़ाओं को दूर करने के लिए यथारूप अवतरित होते हैं, फिर भी वे भौतिक गुणों से दूषित नहीं होते।

ज्योंही कोई व्यक्ति भगवान् की शरण में जाना स्वीकार कर लेता है, तो भगवान् उसका पूरा भार अपने ऊपर ले लेते हैं। ऐसे भक्त के कार्यों से तुष्ट होकर वे उसे भीतर से निर्देश देते हैं और इस तरह भक्त शुद्ध बनकर भगवद्धाम वापस जाने के मार्ग पर अग्रसर होता है। जो शुद्ध भक्त अपनी

भौतिक श्रेष्ठता के लिए रँच मात्र भी उत्सुक नहीं रहता, ऐसे भक्त का मार्गदर्शन करने में भगवान् पटु हैं। शुद्ध भक्त कभी भी न तो भौतिक सम्पत्ति की कामना करता है, न ही वह यह चाहता है कि बड़ी तादाद में उसके अनुचर हों, न ही वह सुन्दर पत्नी चाहता है, क्योंकि वह भगवत्कृपा से भौतिक सुख की निरर्थकता को जानता है। वह हृदय में जिस बात की कामना करता है, वह है, पुनः जन्म लेने का खतरा उठाकर भी भगवान् की प्रेममयी सेवा में लगे रहना।

जब कोई नवजिज्ञासु भक्त शुद्ध भक्ति के पथ से विचलित होता है और एकसाथ इन्द्रियतृप्ति तथा भक्ति करना चाहता है, तो भगवान् बड़े ही कौशल से मोहग्रस्त भक्त के समक्ष इस भौतिक जगत के असली स्वरूप को प्रदर्शित करके उसे सुधार लेते हैं। इस भौतिक जगत में सारे सम्बन्ध वास्तव में स्वार्थपूर्ण हैं, किन्तु वे तथाकथित प्रेम तथा स्नेह के मायावी आवरण से ढके रहते हैं। तथाकथित पत्नी तथा पति, माता-पिता तथा सन्तानें और स्वामी तथा दास, पारस्परिक भौतिक लाभ से सम्बन्धित होते हैं। जैसे ही माया का आवरण हट जाता है, वैसे ही तथाकथित प्रेम तथा स्नेह का मृत रूप आँखों के समक्ष दिखने लगता है।

भगवान् अत्यन्त कुशलतापूर्वक नवजिज्ञासु भक्त से उसकी भौतिक सम्पत्ति हरकर माया का आवरण हटा देते हैं और इस तरह भक्त स्वयं को अपने तथाकथित सम्बन्धियों के बीच अकेला पाता है। ऐसी असहाय अवस्था में वह अपनी तथाकथित पत्नी तथा बालबच्चों के साथ अपने सम्बन्धों की अनुपयुक्तता का अनुभव करता है। जब किसी व्यक्ति की सम्पत्ति नष्ट हो जाती है, तो उसे कोई भी प्यार नहीं करता, यहाँ तक कि उसकी पत्नी तथा बच्चे भी नहीं। ऐसा विपन्न भक्त भगवान् पर अपनी श्रद्धा को और अधिक पूर्णता से स्थिर करता है और तब भगवान् उसे हताश स्थिति से उबार लेते हैं।

यह सम्पूर्ण विराट् सृष्टि उन जीवों को भ्रमित करने की भगवान् की कुशल व्यवस्था है, जो छद्म भोक्ता बनने का प्रयास करते हैं। जीव की स्वाभाविक स्थिति भगवान के दास बनने की है, किन्तु दिव्य सम्बन्ध होने पर दास तथा स्वामी एक तरह से अभिन्न बन जाते हैं, क्योंकि भगवान् भी दास की सेवा करते हैं। इसका विशेष उदाहरण श्रीकृष्ण द्वारा अपने नित्यदास, अर्जुन का

सारथी बनना है। मोहग्रस्त संसारी व्यक्ति भगवान् तथा उनके भक्तों के बीच के इस दिव्य तथा पारस्परिक सम्बन्ध को नहीं समझ पाते और इसीलिए वे भौतिक प्रकृति पर अपना प्रभुत्व जताना चाहते हैं या मूर्खतावश परम ब्रह्म से तदाकार होना चाहते हैं। इस तरह जीव अपनी स्वाभाविक स्थिति भूल जाता है और वह या तो मालिक या संन्यासी बनना चाहता है, किन्तु ऐसे भ्रम तो माया की चालें हैं। मालिक या संन्यासी का छद्म जीवन तब तक विफल होता रहता है, जब तक जीव को चेत नहीं आ जाता और वह भगवान् के नित्य दास के रूप में उनकी शरण में नहीं चला जाता। तब भगवान् उसे मुक्ति प्रदान कर देते हैं और उसे जन्म-मृत्यु के चक्कर से बचा लेते हैं। इस तरह भगवान् को यहाँ पर *भवलुण्ठन कोविद* भी कहा गया है, जिसका अर्थ यह है कि वे बारम्बार जन्म तथा मृत्यु की यथास्थिति को समाप्त करने में दक्ष हैं। हर समझदार व्यक्ति भगवान् के नित्य दास के रूप में अपनी स्थिति को समझता है और अपने जीवन को तदनुसार ढालता है।

भगवान् को *नाथ* अर्थात् वास्तविक स्वामी भी कहा गया है। जीवन की पूर्णता असली स्वामी (भगवान्) की सेवा करके ही प्राप्त की जा सकती है। सम्पूर्ण भौतिक वातावरण जीवों की छद्म प्रभुता से पूरित है। सारे मोहग्रस्त जीव छद्म प्रभुता के लिए संघर्ष कर रहे हैं; फलतः कोई भी व्यक्ति सेवा नहीं करना चाहता। हर कोई स्वामी बनना चाहता है, भले ही ऐसा स्वामित्व बद्ध तथा क्षणिक क्यों न हो। कठिन परिश्रम करने वाला व्यक्ति स्वयं को अपने परिवार तथा सम्पत्ति का स्वामी मान बैठता है, किन्तु वास्तव में वह इच्छाओं का दास तथा क्रोध का सेवक होता है। इन्द्रियों की ऐसी सेवा न तो कभी समाप्त होती है, न ही सेवामुक्त करने वाली होती है, क्योंकि इच्छा तथा क्रोध ऐसे स्वामी हैं, जो कभी भी सन्तुष्ट नहीं होते। मनुष्य उनकी जितनी ही अधिक सेवा करता है, वे उतनी ही अधिक सेवा कराते हैं और इस तरह की मिथ्या प्रभुता विनाश के दिन तक चलती रहती है। फलस्वरूप मूर्ख जीव पतित जीवन बिताने लगते हैं और वे यह नहीं समझ पाते कि भगवान् समस्त कार्यों के भोक्ता, ब्रह्माण्ड के शासक तथा समस्त जीवों के मित्र हैं। जो वास्तविक स्वामी को जानता है, वह *ब्राह्मण* कहलाता है, किन्तु जो उन्हें नहीं समझ पाता, वह *कृपण* अर्थात् पहले दर्जे का कंजूस कहा जाता है।

सृजनशक्ति के स्वामी *अनन्त-शयन* कहलाते हैं। भगवान् के इस रूप की चितवन से भौतिक शक्ति गर्भित होती है और जो सारे सजीव तथा निर्जीव पदार्थों को जन्म दे पाती है। *अनन्त-शयन* शेषनाग की शैया पर शयन करते हैं, जिनका रूप सर्प की तरह है, किन्तु जो भगवान् से अभिन्न हैं। चूँकि भगवान् नागशैया पर शयन करते हैं, इसलिए वे *नाग-शयन* भी कहलाते हैं। शेषनाग अपनी आध्यात्मिक शक्ति से सम्पूर्ण ग्रहपिण्डों को अपने अदृश्य फनों पर थामे रहते हैं। शेषनाग संकर्षण नाम से प्रसिद्ध हैं, जिसका अर्थ है "जो चुम्बकत्व के नियमानुसार सन्तुलन बनाये रखते हैं।" वैज्ञानिक जगत में भगवान् की इस विशिष्टता को 'गुरुत्वाकर्षण का नियम' कहते हैं, जो अन्तरिक्ष में सभी ग्रहों (लोकों) को तैराये रखता है किन्तु वास्तव में यह नियम भगवान् की शक्तियों में से एक है। सारे ब्रह्माण्ड भगवान् द्वारा, शेषनाग पर शयन करते समय, उनके उच्छ्वास (सांस बाहर निकालने) से उत्पन्न होते हैं और जब वे श्वास भीतर ले जाते हैं, तो उन सबका प्रलय हो जाता है। सृजन, पालन तथा संहार के इन कार्यों के कारण ही भगवान् जगन्निवास माने जाते हैं, जो यह सूचित करता है कि वे सभी ब्रह्माण्डों के परम आवास हैं।

भगवान् विष्णु के अन्य लाखों नाम हैं और उनमें से प्रत्येक नाम स्वयं भगवान् जितना ही शक्तिशाली है। मनुष्य भगवान् के किसी भी नाम का निरन्तर कीर्तन करके उनकी निरन्तर संगति प्राप्त कर सकता है। उनके नामों के कीर्तन की कोई बँधी बँधाई विधि नहीं है। मनुष्य किसी भी समय और जीवन की किसी भी अवस्था में उनका मुक्त भाव से कीर्तन कर सकता है, किन्तु हम इतने हतभागी एवं पथभ्रष्ट हैं कि हम इस सरल विधि को भी नहीं अपना पाते हैं। यही भगवान् की भ्रामक शक्ति माया का तरीका है। फिर भी, यदि कोई भगवान् के चरणकमलों का निरन्तर स्मरण करे, तो वह माया की चालों से बच सकता है। राजा कुलशेखर मुकुन्द अर्थात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से यह सुविधा प्रदान किये जाने की प्रार्थना करते हैं।

श्लोक २*

जयतु जयतु देवो देवकीनन्दनोऽयं
जयतु जयतु कृष्णो वृष्णिवंशप्रदीपः।

जयतु जयतु मेघश्यामलः कोमलाङ्गो
जयतु जयतु पृथ्वीभारनाशो मुकुन्दः॥ २॥

जयतु जयतु—जय हो, जय हो; **देवः**—भगवान् की; **देवकी-नन्दनः**—देवकी के पुत्र; **अयम्**—यह; **जयतु जयतु**—जय हो, जय हो; **कृष्णः**—भगवान् कृष्ण की; **वृष्णि**—वृष्णि (भगवान् कृष्ण के पूर्वज); **वंश**—वंश के; **प्रदीपः**—प्रकाश स्तम्भ; **जयतु जयतु**—जय हो, जय हो; **मेघ**—नवीन बादल के सदृश; **श्यामलः**—श्याम रंग वाले; **कोमल**—अति मुलायम; **अङ्गः**—शरीर वाले; **जयतु जयतु**—जय हो, जय हो; **पृथ्वी**—पृथ्वी के; **भार**—भार के; **नाशः**—नाश करने वाले; **मुकुन्दः**—भगवान् श्रीकृष्ण।

अनुवाद

श्रीमती देवकीदेवी के पुत्र के रूप में विख्यात पुरुषोत्तम भगवान् की जय हो। वृष्णि वंश के उज्ज्वल प्रकाश भगवान् कृष्ण की जय हो। उन भगवान् की जय हो, जिनके कोमल शरीर का रंग नवीन बादल के श्यामल वर्ण जैसा है। उन भगवान् मुकुन्द की जय हो, जो पृथ्वी के भार को हटाने वाले हैं।

तात्पर्य

इस श्लोक की रूपरेखा यह है कि सर्वोच्च सत्य परम पुरुष हैं। यहाँ पर भगवान् के शरीर की बनावट तथा रंग के वर्णन किए जाने मात्र से यह सूचित होता है कि वे पुरुष हैं, क्योंकि निर्विशेष ब्रह्म को ऐसा शरीर नहीं हो सकता, जो अत्यन्त कोमल हो और जिसके रंग की कल्पना की जा सके। भगवान् का प्राकट्य वसुदेव तथा देवकी के पुत्र रूप में हुआ, क्योंकि उन्होंने पुत्र रूप में भगवान् को प्राप्त करने के लिए दीर्घ काल तक कठिन तपस्या की थी। उनके तप तथा संकल्प से संतुष्ट होकर भगवान् ने उनका पुत्र बनना स्वीकार किया था।

श्रीमद्भागवत में दिये गये भगवान् के जन्म के वर्णन से हमें पता चलता है कि वसुदेव तथा देवकी के समक्ष भगवान् चतुर्भुजी नारायण रूप में प्रकट हुए। किन्तु जब उन्होंने उनसे अपने इस दिव्य रूप को छिपाने की प्रार्थना की, तो वे द्विभुजी शिशु बन गये। *भगवद्गीता* (४.९) में भगवान् वचन देते हैं कि जो कोई भी उनके दिव्य जन्म तथा कर्म के रहस्यों को समझ लेता है, वह

माया के पाश से मुक्त होकर उनके पास उनके धाम में वापस जाता है। इसलिए कृष्ण के जन्म तथा एक सामान्य शिशु के जन्म में बहुत बड़ा अन्तर है।

कोई यह प्रश्न कर सकता है कि जब पुरुषोत्तम भगवान् समस्त जीवों के आदि पिता हैं, तो फिर देवकी नामक महिला किस तरह उन्हें अपने पुत्र रूप में जन्म दे सकती है? इसका उत्तर यह है कि देवकी ने भगवान् को उसी तरह जन्म दिया, जिस तरह पूर्वी क्षितिज सूर्य को जन्म देता है। सूर्य पूर्वी क्षितिज में उदय होता है और पश्चिमी क्षितिज में जाकर अस्त हो जाता है, किन्तु वास्तव में सूर्य न तो उदय होता है, न ही अस्त। सूर्य सदैव आकाश में स्थिर दशा में रहता है और पृथ्वी घूमती रहती है और घूमती हुई पृथ्वी की विभिन्न स्थितियों पर सूर्य उदय या अस्त होता प्रतीत होता है। इसी तरह भगवान् सदैव विद्यमान रहते हैं, किन्तु मनुष्य के रूप में अपनी लीलाओं को प्रकट करने के लिए वे सामान्य शिशु की भाँति जन्म लेते प्रतीत होते हैं।

अपने निर्विशेष (ब्रह्म) पहलू में भगवान् भीतर और बाहर सर्वत्र हैं। परमात्मा के रूप में वे अपने विराट व्यापक रूप से लेकर परमाणुओं तथा इलेक्ट्रानों के भीतर अर्थात् सभी के भीतर उपस्थित रहते हैं और भगवान् के रूप में वे सारी वस्तुओं का अपनी शक्तियों से पालन करते हैं। (भगवान् के इस रूप का वर्णन हम जगन्निवास नाम के प्रसंग में प्रथम श्लोक के तात्पर्य में कर चुके हैं।) इसलिए अपने तीनों लक्षणों—ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान्—में वे इस भौतिक संसार में सर्वत्र विद्यमान हैं। फिर भी वे उससे पृथक् रहते हैं—अपने परम धाम में अपनी दिव्य लीलाओं में व्यस्त।

जो अल्पज्ञ हैं, वे इस विचार को स्वीकार नहीं कर सकते कि भगवान् इस पृथ्वी पर पुरुष रूप में प्रकट होते हैं। चूँकि वे भगवान् की दिव्य स्थिति की जटिलताओं से ज्ञात नहीं होते, इसलिए जब भी वे भगवान् के प्राकट्य की बात सुनते हैं, वे उन्हें या तो भौतिक शरीर से युक्त अतिमानव के रूप में या अवतारवाद के प्रभाव के कारण ईश्वर के रूप में पूजित ऐतिहासिक पुरुष मान बैठते हैं। किन्तु भगवान् ऐसे मूर्खों के खिलौने नहीं हैं। वे जो हैं, वही हैं और वे उन मूर्खों की कल्पनाओं की विषयवस्तु बनना स्वीकार नहीं करते, जो उन्हें निरन्तर यह निष्कर्ष निकालने के लिए बाध्य करती हैं कि उनका निर्विशेष पहलू ही सर्वोच्च है। परम सत्य का सर्वोपरि लक्षण व्यक्ति होना है, अर्थात् वे

पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर हैं। निर्विशेष ब्रह्म तो उनका तेज है, जो प्रबल अग्नि के द्वारा फैलाये गये प्रकाश के सदृश होता है। अग्नि जलती तो एक स्थान पर है, किन्तु अपनी ऊष्मा तथा प्रकाश को चारों ओर बिखेरती है और इस तरह अपनी विभिन्न शक्तियों को प्रकट करती है। इसी तरह पुरुषोत्तम भगवान् अपनी विविधतापूर्ण शक्तियों के द्वारा कई प्रकार से अपना विस्तार करते हैं।

अल्पज्ञ लोग उनकी शक्ति के एक अंश से मोहग्रस्त हो जाते हैं; फलतः वे शक्ति के मूल स्रोत तक प्रविष्ट होने में असफल रहते हैं। हमें इस संसार में जितनी भी अचम्भित करने वाली शक्तियाँ प्रकट दिखती हैं, जिनमें परमाणु तथा नाभिकीय शक्तियाँ भी सम्मिलित हैं, वे सब उनकी भौतिक या बहिरंगा शक्ति के अंश हैं। किन्तु इस भौतिक शक्ति से श्रेष्ठतर शक्ति भगवान् की तटस्था शक्ति है, जो जीवों के रूप में प्रदर्शित होती है। इन दो शक्तियों के अलावा परमेश्वर की एक अन्य शक्ति भी है, जो अन्तरंगा शक्ति कहलाती है। तटस्था शक्ति या तो अन्तरंगा शक्ति या बहिरंगा शक्ति का आश्रय ले सकती है, किन्तु वास्तव में यह भगवान् की अन्तरंगा शक्ति से सम्बन्धित होती है। इसलिए सारे जीव परमेश्वर के अति सूक्ष्म प्रतिरूप हैं। गुणात्मक दृष्टि से जीव तथा परमेश्वर समान हैं, किन्तु मात्रात्मक दृष्टि से वे भिन्न हैं, क्योंकि भगवान् असीम शक्तिशाली हैं, जबकि जीव स्वभावतः अति सूक्ष्म होने से सीमित शक्ति रखता है।

यद्यपि भगवान् समस्त शक्तियों से पूर्ण हैं और इस तरह आत्मनिर्भर हैं, तथापि वे अपने शुद्ध भक्तों की अधीनता स्वीकार करके दिव्य आनन्द का भोग करते हैं। भगवान् के कुछ महान् भक्त सादर भय तथा पूज्यभाव की सीमा का उल्लंघन नहीं कर पाते, किन्तु कुछ भक्त भगवान् के प्रेम से इस तरह घनीभूत होते हैं कि वे भगवान् के उच्च पद को भूलकर अपने आपको उन्हीं के तुल्य या उनसे भी बढ़कर मानने लगते हैं। भगवान् के ये नित्य संगी उनके साथ मैत्री, पितृत्व तथा प्रेमी-प्रियतमा जैसे उच्च पदों का सम्बन्ध रखते हैं। ऐसे भक्तगण जो भगवान् के साथ अपना दिव्य सम्बन्ध उनके माता-पिता के रूप में स्थापित करते हैं, वे उन्हें अपना आश्रित शिशु मानते हैं। वे उनके उच्च पद को भूल जाते हैं और सोचते हैं कि यदि वे उनका ठीक से पोषण नहीं करेंगे, तो वे कुपोषण के शिकार हो जाएँगे और उनका स्वास्थ्य बिगड़ जाएगा। जो

भक्त उनके साथ दाम्पत्य का सम्बन्ध रखते हैं, वे उन्हें अपना आचरण सुधारने के लिए डाँटते हैं और भगवान् उनकी इन डाँटों में वेद-स्तुतियों से भी बढ़कर आनन्द पाते हैं। सामान्य भक्तगण वैदिक आचार-विचारों की औपचारिकताओं से बँधे होने के कारण भगवान् से ऐसी गुह्य भक्ति नहीं कर पाते; फलतः उनका साक्षात्कार अपूर्ण रह जाता है। कभी कभी तो वे निर्विशेषवाद की विपदा का भी शिकार हो जाते हैं।

वसुदेव तथा देवकी वात्सल्य रस में भगवान् के गुह्य भक्त हैं। उनसे भी बढ़कर नन्द तथा यशोदा हैं, जो वृन्दावन में उनके पालक मातापिता हैं। भगवान् को देवकीनन्दन, नंद-नंदन, यशोदानन्दन, जानकीनाथ, दाशरथी जैसे नामों से पुकारे जाने पर अतीव प्रसन्नता होती है। इन नामों से पुकारे जाने पर उन्हें जो आनन्द मिलता है, वह उन्हें परम पिता, महानतम, परमेश्वर या ऐसे ही अन्य नामों द्वारा, जो प्रभूत आदर के सूचक हैं, पुकारे जाने से कई गुना अधिक होता है। अतः इस श्लोक में भगवान् की कीर्ति को बताने के लिए राजा कुलशेखर ने जो नाम प्रयुक्त किये हैं, वे भगवान् के साथ उनके अन्तरंग दिव्य सम्बन्ध को सूचित करने वाले हैं।

जैसाकि ऊपर बताया जा चुका है, भगवान् के सारे नाम स्वयं भगवान् के ही समान शक्तिशाली हैं, किन्तु उनके विभिन्न दिव्य नामों के कीर्तन करने से मनुष्य को भिन्न भिन्न दिव्य रसों का अनुभव हो सकता है। उदाहरणार्थ, शास्त्र कहता है कि भगवान् विष्णु के एक सहस्र प्रमुख नाम (विष्णु सहस्रनाम) हैं। किन्तु यदि कोई एक बार राम नाम का उच्चारण करता है, तो उसे विष्णु सहस्रनाम जप का फल मिलता है। यदि कोई कृष्ण का एक बार नाम लेता है, तो उसे तीन बार राम नाम लेने का फल मिलता है। दूसरे शब्दों में, कृष्ण नाम का एक बार उच्चारण विष्णु के तीन सहस्र नामों के उच्चारण के तुल्य है।

इसलिए राजा कुलशेखर ने यह जानते हुए कि भगवान् अपने अन्तरंग भक्तों के साथ अपने दिव्य सम्बन्धों को सूचित करने वाले नाम से सम्बोधित किये जाने पर कितने प्रसन्न होते हैं तथा भगवान् कृष्ण की नाम-शक्ति कितनी महान् है, उन्होंने भगवान् को देवकीनन्दन तथा कृष्ण कहकर सम्बोधित करके महिमामण्डित करना पसन्द किया। राजा कुलशेखर उन्हें वृष्णिवंश प्रदीप भी

कहते हैं, क्योंकि वृष्णिवंश में भगवान् के प्राकट्य से उस वंश की लाखों पीढ़ियाँ पवित्र हो गईं। शास्त्रों का कथन है कि जिस कुल में शुद्ध भक्त जन्म लेता है, उसकी एक सौ पीढ़ियों के पूर्वज तथा उत्तराधिकारी पवित्र हो जाते हैं। शास्त्र यह भी कहते हैं कि जिस स्थान पर भक्त जन्म लेता है, उसके एक सौ मील के अर्धव्यास का प्रत्येक स्थान पवित्र हो जाता है। यदि एक भक्त अपने जन्म से किसी स्थान तथा वंश को इतने बड़े पैमाने पर पवित्र कर सकता है, तो फिर भगवान् जिस स्थान तथा जिस वंश में जन्म लेने का चुनाव करें, उन्हें वे किस तरह पूर्णतया पवित्र कर सकते हैं, उसका कहना ही क्या।

इस पृथ्वी पर भगवान् का जन्म निश्चय ही अत्यन्त रहस्यपूर्ण है; अतएव सामान्य व्यक्ति के लिए उनके जन्म पर विश्वास कर पाना कठिन है। भला सर्वशक्तिशाली भगवान् किस तरह एक सामान्य व्यक्ति की तरह जन्म ले सकते हैं? इस विषय की व्याख्या *भगवद्गीता* (४.६) में हुई है, जहाँ भगवान् कहते हैं—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

"यद्यपि मैं अजन्मा हूँ और मेरा दिव्य शरीर कभी क्षय नहीं होता, यद्यपि मैं समस्त जीवों का स्वामी हूँ, फिर भी मैं प्रत्येक युग में अपने आदि दिव्य रूप में अपनी दिव्य शक्ति द्वारा प्रकट होता हूँ।" शास्त्रों से हमें यह भी ज्ञात होता है कि भगवान् केवल मनुष्यों के ही परिवार में जन्म नहीं लेते हैं, अपितु वे देवताओं, जलचरों, पशुओं इत्यादि के परिवारों में भी जन्म लेते हैं। कोई यह तर्क कर सकता है कि चूँकि सामान्य जीव भगवान् की ही तरह शाश्वत तथा अजन्मा है और विभिन्न योनियों में जन्म लेता है, अतः भगवान् तथा सामान्य जीव में कोई अन्तर नहीं है। किन्तु उनमें अन्तर यह है कि सामान्य जीव जब एक योनि से दूसरी में देहान्तरण करता है, तब उसका शरीर बदल जाता है, किन्तु भगवान् अपना शरीर कभी नहीं बदलते। वे अपने आदि शरीर में बिना किसी परिवर्तन के प्रकट होते हैं। यही नहीं, सामान्य जीव तथा उसके शरीर में बहुत अन्तर होता है, किन्तु भगवान् तथा उनके शरीर में कोई अन्तर नहीं होता, क्योंकि वे शुद्ध आत्मा हैं। दूसरे शब्दों में, उनके शरीर तथा उनके आत्मा में कोई अन्तर नहीं होता।

भगवद्गीता के ऊपर दिए श्लोक में *अव्ययात्मा* शब्द स्पष्ट सूचित करता है कि भगवान् का शरीर भौतिक तत्त्वों से नहीं बना होता। वे पूर्ण रूप से आत्मा हैं। जन्म तथा मृत्यु केवल भौतिक शरीर पर लागू होते हैं। सामान्य जीव का शरीर भौतिक तत्त्वों से बना होता है; फलतः वह जन्म तथा मृत्यु के अधीन होता है। लेकिन भगवान् का शरीर पूर्ण आध्यात्मिक और इस तरह शाश्वत होने से, न तो जन्म लेता है, न मरता है। न ही भगवान् को, उनके पूर्वकर्मों के फलस्वरूप सामान्य व्यक्ति की तरह किसी विशेष परिवार में जन्म लेने के लिये बाध्य किया जा सकता है।

भगवान् भौतिक तत्त्वों के परम नियन्ता हैं और अनादि तथा अनन्त होने के कारण वे सभी कालों में—भूत, वर्तमान तथा भविष्य में—विद्यमान रहने वाले हैं। चूँकि वे परम हैं, इसलिए उन्हें पाप-पुण्य से कुछ भी लेना-देना नहीं रहता। दूसरे शब्दों में, उनके लिए पाप तथा पुण्य एक हैं, अन्यथा भगवान् परम सत्य न होते।

चूँकि भगवान् अपनी अन्तरंगा शक्ति द्वारा प्रकट होते हैं, अतः विभिन्न योनियों में उनके अवतार, बहिरंगा शक्ति, माया की सृष्टि नहीं होते हैं। अतः जो लोग यह सोचते हैं कि परमेश्वर भौतिक तत्त्वों से निर्मित शरीर स्वीकार करके विभिन्न रूपों में प्रकट होते हैं, वे गलत हैं; उनकी दृष्टि अपूर्ण है क्योंकि वे यह नहीं समझ पाते कि भगवान् की अन्तरंगा शक्ति किस तरह कार्य करती है। वेदों की जिज्ञासा रहती है—"भगवान् कहाँ पर स्थित हैं?" और इसका उत्तर तुरन्त मिलता है—वे अपनी अन्तरंगा शक्ति पर स्थित हैं। अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि यद्यपि जब भगवान् जन्म लेते हैं, तो ऐसा प्रतीत होता है कि वे सामान्य जीव की तरह भौतिक शरीर ग्रहण कर रहे हैं, किन्तु वास्तव में वे वैसा करते नहीं, क्योंकि उनमें तथा उनके शरीर में कोई अन्तर नहीं होता। इस तरह वे विभिन्न योनियों में प्रकट होने वाले अपने रूपों में परम सत्य बने रहते हैं।

दूसरे शब्दों में, जीव तथा परमेश्वर पृथक् परिस्थितियों में इस भौतिक जगत में प्रकट होते हैं। यदि कोई यह समझ ले कि भगवान् की विभिन्न शक्तियाँ किस तरह कार्यशील रहती हैं, तो वह इन पृथक् परिस्थितियों को सरलता से समझ सकता है। जैसाकि पहले बताया जा चुका है, भगवान् की

तीन प्रकार की शक्तियाँ हैं—अन्तरंगा, तटस्था तथा बहिरंगा। हमें बहिरंगा या भौतिक शक्ति का विशद अनुभव है, किन्तु हम सामान्यतया अन्य दो शक्तियों की क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं के विषय में जिज्ञासा करने से चूक जाते हैं। एक साधारण से उदाहरण से हम समझ सकेंगे कि भगवान् की शक्तियाँ किस तरह कार्य करती हैं। तीन पहचानों पर विचार करें—ईश्वर, एक मनुष्य तथा एक गुड़िया। गुड़िया भौतिक शक्ति से बनी है, मनुष्य भौतिक तथा आध्यात्मिक शक्ति का संयोजन है और ईश्वर पूर्णरूपेण आध्यात्मिक शक्ति हैं। गुड़िया पूर्णतया पदार्थ है, भीतर से और बाहर से भी। मनुष्य बाहर से पदार्थ है, किन्तु भीतर से आत्मा है। ईश्वर तो पूर्णतया आत्मा हैं—बाहर तथा भीतर दोनों से। जिस तरह गुड़िया पूर्णतः पदार्थ है, उसी तरह ईश्वर पूर्णतः आत्मा हैं। किन्तु मनुष्य आधा आत्मा और आधा पदार्थ है।

इस तरह ईश्वर का शरीर तथा जीव का शरीर भिन्न भिन्न प्रकार से निर्मित है। चूँकि भगवान् का शरीर शुद्ध आत्मा है, यह कभी क्षय नहीं होता, इसलिए ईश्वर को *अव्ययात्मा* कहा गया है। उनका शरीर परम, अनादि, अजन्मा तथा सनातन है, जबकि जीव का भौतिक शरीर सापेक्ष होने से अनित्य है—इसमें जन्म-मृत्यु का चक्र चलता रहता है। निस्सन्देह, जीव स्वयं में नित्य है और यदि उसकी इच्छा होती है, तो वह परम सत्य के शरीर में लीन होकर अथवा भगवान् के नित्य दास के रूप में, अपनी वैधानिक स्थिति में पुनः स्थापित होकर, अपनी नित्यता की अनुभूति कर सकता है। यदि वह ऐसा नहीं करता, तब भी उसकी नित्यता बनी रहती है, किन्तु वह इससे अनजान बना रहता है।

निष्कर्ष यह निकलता है कि भगवान् अपने आदि शरीर में बिना किसी परिवर्तन के प्रकट होते हैं और यह उनकी अचिन्त्य शक्ति के कारण ही सम्भव हो पाता है। हमें यह सदैव याद रखना चाहिए कि सर्वशक्तिमान भगवान् के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। यदि वे चाहें तो भौतिक शक्ति को आध्यात्मिक शक्ति में परिणत कर सकते हैं। वस्तुतः यदि वे चाहें तो सम्पूर्ण आध्यात्मिक प्रकृति को भौतिक प्रकृति के भीतर ला दें और आध्यात्मिक प्रकृति पर भौतिक गुणों का रंचमात्र भी प्रभाव न पड़े।

भगवान् की विभिन्न शक्तियाँ पूरी तरह से उनके नियन्त्रण में रहती हैं। वस्तुतः भगवान् के पास केवल एक ही शक्ति है अर्थात् अन्तरंगा शक्ति, जिसे

वे विभिन्न प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त करते हैं। यह स्थिति वैसी ही है, जैसे कि कोई व्यक्ति बिजली का प्रयोग किस तरह करता है। यही बिजली गर्म करने के साथ शीतल करने के भी काम आ सकती है। ऐसे विरोधी परिणाम विद्युत् कारीगर की कुशल कार्यक्षमता के कारण होते हैं। इसी तरह से भगवान् अपनी परमेच्छा से अपनी एक अन्तरंगाशक्ति को अनेक कार्यों को साधने के लिए प्रयुक्त करते हैं। यह जानकारी हमें श्रुतियों (*श्वेताश्वतर उपनिषद्* ६.८) से प्राप्त होती है—*परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते।*

मुकुन्दमाला स्तोत्र का यह श्लोक बताता है कि भगवान् के शरीर का रंग नये बादल की तरह श्यामल है। यही नहीं, उनका शरीर अत्यन्त कोमल भी है। शरीर की कोमलता महापुरुष की निशानी है। शास्त्रों का कथन है कि शरीर के निम्नांकित लक्षण महापुरुषत्व के सूचक हैं—आँखों, हथेलियों, तलवों, तालू, होंठों, जीभ तथा नाखूनों इन सात स्थान में लाल लाल कान्ति का होना; कमर, मस्तक तथा वक्षस्थल इन तीन स्थानों का चौड़ा होना; गर्दन, जाँघों तथा गुप्तेन्द्रियों इन तीन स्थलों का लघु होना। वाणी, बुद्धि तथा नाभि इन तीन स्थानों में गहराई; पाँच स्थलों—नाक, बाहों, कानों, ललाट तथा जाँघों का उन्नत होना तथा—त्वचा, सिर के केश, रोम, दाँतों तथा अंगुलि के सिरों इन पाँच स्थानों का पतला होना। ये सारे लक्षण भगवान् के शरीर में उपस्थित रहते हैं।

ब्रह्मसंहिता से पुष्टि होती है कि भगवान् के शरीर का रंग नये बादल की तरह श्यामल होता है, किन्तु यह श्यामल रंग इतना सुन्दर होता है कि यह लाखों कामदेवों को मात कर देता है। अत: यह श्यामल रंग भौतिक जगत के किसी भी श्यामल रंग से मेल नहीं खाता।

भगवान् के शरीर के ऐसे वर्णन काल्पनिक नहीं हैं, प्रत्युत ये उन लोगों के कथन हैं, जिन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि से उन्हें देखा है। यह दिव्य दृष्टि ब्रह्मा जैसे भक्तों को तथा ब्रह्मा के ही समान शुद्ध भक्तों के चरणचिह्नों का अनुसरण करने वालों को प्रदान की जाती है। किन्तु जो छिछोरे तथा अविश्वासी हैं, उनकी पहुँच इस दिव्य दृष्टि तक नहीं होती, क्योंकि उनमें ईश्वर-इच्छा के प्रति वांछित आत्मसमर्पण का अभाव रहता है।

श्लोक ३*

मुकुन्द मूर्ध्ना प्रणिपत्य याचे
भवन्तमेकान्तमियन्तमर्थम्।
अविस्मृतिस्त्वच्चरणारविन्दे
भवे भवे मेऽस्तु भवत्प्रसादात्॥ ३॥

मुकुन्द—हे भगवान् मुकुन्द; **मूर्ध्ना**—सिर के साथ; **प्रणिपत्य**—झुककर; **याचे**—आदरपूर्वक याचना करता हूँ; **भवन्तम्**—आपसे; **एकान्तम्**—एकमात्र; **इयन्तम्**—इतना ही; **अर्थम्**—इच्छापूर्ति; **अविस्मृतिः**—विस्मरण से मुक्ति; **त्वत्**—आपके; **चरण-अरविन्दे**—चरणकमलों पर; **भवे भवे**—प्रत्येक जन्म में; **मे**—मेरे; **अस्तु**—हो; **भवत्**—आपकी; **प्रसादात्**—कृपा से।

अनुवाद

हे भगवान् मुकुन्द! मैं आपके समक्ष नतमस्तक हूँ और आपसे आदरपूर्वक याचना करता हूँ कि आप मेरी इस एक इच्छा को पूरा करें कि मैं अपने प्रत्येक भावी जन्म में आपके चरणकमलों का सदा ही स्मरण करता रहूँ और उन्हें कभी न भूलूँ।

तात्पर्य

जिस संसार में हम रह रहे हैं, वह दुखदायी स्थान है। यों कहा जा सकता है कि यह आत्मा के लिए एक बन्दीगृह है। जिस तरह से एक बन्दी न तो कहीं आ-जा सकता है, न जीवन का पूर्ण आनन्द ले सकता है, उसी तरह भौतिक प्रकृति के नियमों द्वारा बद्ध सारे जीव अपने नित्य आनन्दमय स्वभाव का अनुभव नहीं कर पाते। उन्हें कोई स्वतन्त्रता नहीं रहती, क्योंकि उन्हें जन्म, बुढ़पा, रोग तथा मृत्यु—इन चार प्रमुख व्यथाओं को भोगना ही पड़ता है। भौतिक प्रकृति के नियम द्वारा यह दंड उन जीवों को दिया जाता है, जिन्होंने भगवान् को विस्मृत कर दिया है और जो यातना के इस मरुस्थल में स्थायी सुख की योजनाएँ बनाने में लगे हुए हैं।

भगवत्कृपा से शुद्ध भक्त इसे भलीभाँति जानता है। वस्तुतः उसका समस्त जीवन-दर्शन इसी ज्ञान पर आधारित होता है। ज्ञान की प्रगति का अर्थ है, इस जगत के नग्न सत्य को समझना और इस मृगतृष्णा के क्षणिक सौन्दर्य से

मोहित न होना।

भौतिक प्रकृति तनिक भी सुन्दर नहीं है, क्योंकि यह 'नकली मोर' जैसी है। असली मोर सर्वथा भिन्न होता है और हम में इसे समझने का ज्ञान होना चाहिए। जो लोग नकली मोर को पकड़कर उसका आनंद लेना चाहते हैं तथा वे लोग भी जो नकली मोर के प्रति निराशावादी दृष्टिकोण रखते हैं, किन्तु जिन्हें असली मोर की सही जानकारी नहीं होती, वे दोनों समान रूप से भौतिक प्रकृति के गुणों द्वारा मोहग्रस्त होते हैं। वे लोग, जो नकली मोर के पीछे पड़े रहते हैं, वे सकाम कर्मी हैं और वे लोग, जो नकली मोर की केवल भर्त्सना करते हैं, किन्तु असली मोर से अनजान बने रहते हैं, वे प्रयोगवादी दार्शनिक (कोरे ज्ञानी) हैं। इस भौतिक मरुस्थल में सुख की मृगतृष्णा से ऊबकर वे शून्य में लीन होना चाहते हैं।

किन्तु शुद्ध भक्त इन दोनों मोहग्रस्त श्रेणियों में से किसी से सम्बन्धित नहीं होता। वह न तो नकली मोर का आनन्द भोगना चाहता है, न ही निराशावश उसकी भर्त्सना करता है। वह तो असली मोर की खोज में रहता है। इस तरह वह न तो मोहग्रस्त सकाम कर्मी की तरह होता है, न ही बौखलाये कोरे ज्ञानी की तरह। वह भौतिक प्रकृति के इन दासों से ऊपर उठा हुआ होता है, क्योंकि वह भौतिक प्रकृति के स्वामी भगवान् की सेवा करने को अच्छा समझता है। वह तत्त्व को खोजता है और उसे त्यागना नहीं चाहता। वह तत्त्व है मुकुन्द के चरणकमल; और राजा कुलशेखर, अत्यधिक बुद्धिमान भक्त होने के कारण, उस तत्त्व को पाने के लिए प्रार्थना करते हैं, उसकी छाया के लिए नहीं।

भगवान् नारायण या मुकुन्द का शुद्ध भक्त अपने ऊपर आने वाली किसी भी परिस्थिति से तनिक भी भयभीत नहीं होता। इसलिए अनेक कठिनाइयों के बावजूद ऐसा शुद्ध भक्त भगवान् से अपने लिए कुछ भी नहीं माँगता। यदि संयोगवश उसे नरक जाना पड़े, तो भी वह भयभीत नहीं होता, न ही वह स्वर्ग जाने के लिए उत्सुक रहता है। उसके लिए नरक तथा स्वर्ग दोनों ही हवाई किले हैं। उसे इनमें से किसी से भी कुछ लेना देना नहीं रहता। राजा कुलशेखर द्वारा इसकी बहुत ही सुन्दर व्याख्या श्लोक ६ में की गई है।

राजा कुलशेखर जैसे शुद्ध भक्त भगवान् से भौतिक सम्पत्ति, अनुयायी, सुन्दर पत्नी या ऐसी कोई नकली मोर जैसी वस्तु के लिए प्रार्थना नहीं करते

हैं, क्योंकि वे ऐसी वस्तुओं की वास्तविकता से परिचित होते हैं। यदि संयोगवश उसे ऐसी स्थिति में रख दिया जाता है, जहाँ ऐसी वस्तुएँ उसके आधिपत्य में हों, तो वह उनकी निंदा करके, उस स्थिति से कृत्रिम रूप से बाहर निकलने का प्रयास नहीं करता है।

श्रीचैतन्य महाप्रभु के महान् संगी श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी अत्यन्त धनी व्यक्ति के पुत्र थे, जिनकी सुन्दर पत्नी तथा अन्य सारे ऐश्वर्य थे। जब वे सर्वप्रथम कलकत्ता से लगभग चालीस मील दूर स्थित पाणिहाटि ग्राम में श्रीचैतन्य महाप्रभु से मिले, तो उन्होंने अपने भौतिक सम्बन्ध तोड़कर महाप्रभु का सहचर होने की अनुमति माँगी थी। महाप्रभु ने उनके इस प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए उन्हें आदेश दिया कि भावुकता के वशीभूत होकर अथवा कृत्रिम वैराग्यवश सांसारिक सम्बन्धों को त्यागना व्यर्थ है। मनुष्य को अपने हृदय में असली वस्तु धारण करनी चाहिए। यदि वह अपने आपको सांसारिक सम्बन्धों में उलझा हुआ पाता है, तो उसे बाह्य रूप से सांसारिक व्यक्ति की तरह आचरण करना चाहिए, किन्तु अन्त:करण से उसे आध्यात्मिक साक्षात्कार के प्रति निष्ठावान् बने रहना चाहिए। इससे उसे जीवन के प्रगति-पथ पर बढ़ने में सहायता मिलेगी। कोई भी व्यक्ति एक छलाँग लगाकर समुद्र को लाँघ नहीं सकता। भगवान् राम की कृपा से भक्त हनुमान के लिए जो सम्भव था, वह सामान्य व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं है। इसलिए माया के सागर को पार करने के लिए धैर्यपूर्वक भगवान् की भक्ति विकसित करनी चाहिए। इस तरह वह धीरे धीरे सागर के पार जा सकता है।

यद्यपि शुद्ध भक्त कभी इस बात को लेकर चिन्तित नहीं रहता कि अगली भौतिक स्थिति में उसका क्या होने जा रहा है, किन्तु वह अपने चरम उद्देश्य के प्रति सदैव सतर्क रहता है कि वह उसे भूल न जाए। इसीलिए राजा कुलशेखर प्रार्थना करते हैं कि वे किसी भी समय भगवान् के चरणकमलों को न भूलें।

भगवान् के साथ अपने सम्बन्ध को भूलना और इस प्रकार भौतिक लालसाओं से अभिभूत रहना, जीने का सर्वाधिक निन्दनीय तरीका है। यह एकदम पशुजीवन जैसा है। जब जीव निम्न पशु-योनियों में जन्म लेता है, तो भगवान् के साथ अपने सम्बन्ध को वह पूरी तरह से भूल जाता है। फलत:

वह सदैव खाने, सोने, भयभीत रहने तथा सम्भोग करने में व्यस्त रहता है। आधुनिक सभ्यता में खाने पीने इत्यादि के लिए आर्थिक सुविधाएँ जुटाने के लिए इस तरह के विस्मृति पूर्ण जीवन को बढ़ावा मिलता है। बहिरंगा शक्ति के विभिन्न अभिकर्ता (एजन्ट) दैवी चेतना के बीज का उन्मूलन करने के उद्देश्य से प्रचार करते रहते हैं, किन्तु ऐसा करना असम्भव है, क्योंकि भले ही कुछ काल के लिए जीव की दैवी चेतना अवरुद्ध हो जाए, किन्तु उसे समाप्त नहीं की जा सकती। जीव अपने मूल स्वरूप में अविनाशी है और उसके मूल आध्यात्मिक गुण भी इसी तरह हैं। कोई भी न तो आत्मा को, न ही आत्मा के आध्यात्मिक गुणों को मार सकता है। भगवान् का स्मरण करना तथा उनकी सेवा करने की इच्छा आत्मा के आध्यात्मिक गुण हैं। कृत्रिम साधनों से इन आध्यात्मिक गुणों पर अंकुश लगाया जा सकता है, किन्तु वे इस भौतिक जगत के दर्पण में विकृत रूप में प्रतिबिम्बित होंगे। दिव्य स्नेहवश भगवान् की सेवा करने का आध्यात्मिक गुण अपने विकृत रूप में सुरा, सुन्दरी तथा सम्पत्ति प्रेम के विविध रूपों में प्रतिबिम्बित होगा। तथाकथित भौतिक वस्तुओं के प्रति प्रेम—यहाँ तक कि देश, जाति, धर्म या परिवार के प्रति प्रेम—जिसे सभ्य मनुष्यों का श्रेष्ठ गुण माना जाता है, प्रत्येक आत्मा में सुप्त भगवत्प्रेम का उल्टा प्रतिबिम्ब है। अतः राजा कुलशेखर की स्थिति एक मुक्तात्मा की है, क्योंकि वे अपने असली भगवत्प्रेम को भौतिक वस्तुओं के प्रति तथाकथित प्रेम में परिणत होने देना नहीं चाहते।

यहाँ पर *भवे भवे* शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इनका अर्थ है "जन्म जन्मान्तर।" जहाँ ज्ञानीजन निर्विशेष ब्रह्म में तदाकार होने के लिए इच्छुक रहते हैं, जिससे वे जन्म-मृत्यु की प्रक्रिया को रोक सकें, वहीं शुद्ध भक्त इस 'जन्म-जन्मांतर' की प्रक्रिया से भयभीत नहीं होता। *भगवद्गीता* (४.९) में भगवान् कृष्ण कहते हैं कि उनका जन्म तथा उनके कर्म दिव्य हैं। उसी अध्याय (४.५) में भगवान् यह भी कहते हैं कि इसके पूर्व उनके तथा अर्जुन के कई जन्म हो चुके हैं और भगवान् को उन सबका स्मरण है, किन्तु अर्जुन को उनका स्मरण नहीं है। भगवान् के लिए भूत, वर्तमान तथा भविष्य में कोई अन्तर नहीं होता, किन्तु जीव के लिए, जिसने भगवान् को विस्मृत कर रखा है, अन्तर है क्योंकि वह भूत को भुला चुका होता है और भविष्य के बारे में

अनजान रहता है। किन्तु जो जीव सदैव भगवान् का स्मरण करता है और इस तरह से उनका निरन्तर संगी बना रहता है, वह स्वयं भगवान् की तरह दिव्य स्थिति को प्राप्त होता है। ऐसे भक्त के लिए जन्म तथा मृत्यु एक समान होते हैं, क्योंकि वह जानता है कि ऐसी घटनाएँ क्षणिक चमक हैं, जिनसे उनका आध्यात्मिक जीवन प्रभावित नहीं होता।

एक भक्त की मृत्यु तथा एक सामान्य व्यक्ति की मृत्यु के बीच के अन्तर को हम एक मोटे उदाहरण से समझ सकते हैं। बिल्ली अपने बच्चे को तथा अपने शिकार चूहा, दोनों ही को मुँह से पकड़ती है। ऐसी पकड़ एक सी प्रतीत हो सकती है, किन्तु दोनों में काफी अन्तर होता है। जब चूहा बिल्ली के मुँह में रहता है, तो चूहे की अनुभूति बिल्ली के बच्चे की अनुभूति से सर्वथा भिन्न होती है। चूहे के लिए वह कष्टप्रद मृत्यु का प्रहार होता है, जबकि बिल्ली के बच्चे के लिए वह आनन्ददायक लाड़-प्यार होता है।

इसी तरह सामान्य व्यक्ति की मृत्यु एक भक्त के भौतिक जगत के सक्रिय दृश्य से चले जाने से सर्वथा भिन्न होती है। सामान्य व्यक्ति की मृत्यु उसके विगत सत्कर्मों तथा दुष्कर्मों के आधार पर होती है, जिसके द्वारा उसका अगला जन्म निश्चित होता है, किन्तु भक्त का मामला सर्वथा भिन्न होता है। यदि भक्त अपनी भक्ति को पूरा न भी कर पाये, तो भी उसका जन्म एक अच्छे परिवार में होने की गारंटी रहती है—यह परिवार किसी विद्वान तथा भक्त ब्राह्मणों का या कि वैश्यों का समृद्ध परिवार होता है। जो व्यक्ति ऐसे परिवार में जन्म लेता है, उसे भक्ति करने तथा अपनी आध्यात्मिक स्थिति सुधारने का सुअवसर प्राप्त होता है।

दुर्भाग्यवश, इस लौह युग में समृद्ध परिवारों के सदस्य सामान्यतया अपनी सम्पत्ति का दुरुपयोग करते हैं। वे अपनी आध्यात्मिक स्थिति सुधारने के बजाय कुसंगति में पड़कर विषयासक्ति के शिकार हो जाते हैं। इस कुसंगति से बचने के लिए ही राजा कुलशेखर भगवान् से यह विनती करते हैं कि वे अपने किसी भावी जन्म में भगवान् के चरणकमलों को न भूलें। जो भक्त अपनी भक्ति को पूरा करता है, वह निश्चय ही भगवद्धाम वापस जाता है; अतः उसके लिए जन्म-मृत्यु का प्रश्न ही नहीं उठता। और जैसाकि पहले कहा जा चुका है, जो भक्त पूर्ण सिद्धि नहीं प्राप्त कर पाता, उसका जन्म किसी विद्वान तथा समृद्ध

परिवार में होना निश्चित है। किन्तु फिर भी यदि किसी भक्त को उत्तम कुल नहीं मिल पाता और यदि वह भगवान् के चरणकमलों का निरन्तर स्मरण करने का वरदान प्राप्त कर सकता है, तो यह किसी भी भौतिक सम्पत्ति से बढ़कर है। भगवान् के नाम, यश, गुण आदि का निरन्तर स्मरण सारे अपराधों के फलों को निरस्त करने वाला तथा भगवान् के आशीर्वादों का आवाहन करने वाला है। भगवान् के चरणकमलों का यह निरन्तर स्मरण तभी सम्भव है, जब कोई व्यक्ति उनकी सक्रिय सेवा में लग जाता है।

इसलिए शुद्ध भक्त कभी भी भगवान् के पास धन, अनुयायी या सुन्दर पत्नी की माँग नहीं करता। वह बिना किसी अवरोध के भगवान् की सेवा में लगे रहने के लिए प्रार्थना करता है। भक्ति के समस्त भावी जिज्ञासुओं के जीवन का यही लक्ष्य होना चाहिए।

श्लोक ४*

नाहं वन्दे तव चरणयोर्द्वन्द्वमद्वन्द्वहेतोः
कुम्भीपाकं गुरुमपि हरे नारकं नापनेतुम्।
रम्यारामामृदुतनुलता नन्दने नापि रन्तुं
भावे भावे हृदयभवने भावयेयं भवन्तम्॥ ४॥

न—नहीं; **अहम्**—मैं; **वन्दे**—प्रार्थना करता हूँ; **तव**—आपके; **चरणयोः**—चरणकमलों की; **द्वन्द्वम्**—युगल, दोनों; **अद्वन्द्व**—द्वैत से मुक्ति; **हेतोः**—के लिए; **कुम्भीपाकम्**—वह लोक जहाँ खौलता तेल है; **गुरुम्**—अत्यन्त प्रचण्ड; **अपि**—भी; **हरे**—हे हरि; **नारकम्**—नरक; **न**—नहीं; **अपनेतुम्**—बचने के लिए; **रम्या**—अत्यन्त सुन्दर; **रामा**—रमणी; **मृदु**—मृदु; **तनु-लता**—लता के समान शरीर वाली; **नन्दने**—स्वर्ग के रमणीय उद्यान में; **न अपि**—न तो; **रन्तुम्**—भोग करने के लिए; **भावे भावे**—विभिन्न पुनर्जन्मों में; **हृदय**—मेरे हृदय के; **भवने**—घर के भीतर; **भावयेयम्**—मैं एकाग्रता धारण कर सकूँ; **भवन्तम्**—आपमें।

अनुवाद

हे भगवान् हरि! मैं न तो भौतिक संसार के द्वैतों से, न ही कुम्भीपाक नरक के दारुण कष्टों से अपने आपको बचाये जाने के लिए आपके चरणकमलों की वन्दना कर रहा हूँ। न ही मेरा उद्देश्य नन्दनकानन में

निवास करने वाली कोमल त्वचा वाली सुन्दरियों का भोग करना है। मैं तो आपके चरणकमलों पर इसलिए प्रार्थना करता हूँ कि मैं जन्म-जन्मान्तर अपने हृदय के अन्तर्भाग में एकमात्र आपका स्मरण कर सकूँ।

तात्पर्य

मनुष्यों की दो श्रेणियाँ हैं—नास्तिक तथा आस्तिक। नास्तिकों को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में कोई श्रद्धा नहीं होती, जबकि आस्तिकों में भगवान् के लिए विभिन्न मात्राओं में श्रद्धा होती है।

नास्तिक अपने वर्तमान तथा भूतकाल के जन्मों में किये गये असंख्य दुष्कर्मों के कारण श्रद्धारहित होते हैं। उनकी चार कोटियाँ हैं—(१) नितान्त भौतिकतावादी (२) अनैतिक पापी (३) नितान्त मूर्ख; तथा (४) अपनी सांसारिक विद्वत्ता के बावजूद माया द्वारा भ्रमित। नास्तिक की इन चार कोटियों में से कोई भी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में कभी भी विश्वास नहीं करता, उनके चरणकमलों की वन्दना करना तो दूर की बात रही।

दूसरी ओर, आस्तिकों की भगवान् में श्रद्धा होती है और वे विभिन्न उद्देश्यों से उनकी स्तुति करते हैं। मनुष्य को ऐसा आस्तिक जीवन संयोगवश नहीं प्राप्त होता, प्रत्युत यह वर्तमान जीवन तथा विगत जीवन में अनेक पुण्यकर्मों को सम्पन्न करने का प्रतिफल होता है। ऐसे पुण्यात्मा भी चार कोटि के होते हैं—(१) जरूरतमन्द (२) विपदाग्रस्त (३) दिव्य विज्ञान के जिज्ञासु तथा (४) प्रामाणिक दार्शनिक। इनमें से अन्तिम दो, अर्थात् जिज्ञासु तथा दार्शनिक, अन्य दो कोटियों से श्रेष्ठतर हैं, किन्तु शुद्ध भक्त पुण्यात्माओं की इन चार कोटियों से भी कहीं ऊपर होता है, क्योंकि वह दिव्य पद पर स्थित होता है।

दीन पुण्यात्मा अच्छे जीवन-स्तर के लिए प्रार्थना करता है और विपदाग्रस्त पुण्यात्मा विपदा से उबरने के लिए प्रार्थना करता है। किन्तु जिज्ञासु तथा दार्शनिक व्यक्ति सांसारिक समस्याओं को सुधारने के लिए ईश्वर से प्रार्थना नहीं करते। वे उन्हें यथारूप में जानने की योग्यता पाने के लिए प्रार्थना करते हैं और वे विज्ञान तथा तर्क द्वारा उन तक पहुँचने का प्रयास करते हैं। ऐसे पुण्यात्मा सामान्यतया तत्त्वज्ञानी कहलाते हैं।

जरूरतमन्द पुण्यात्मा ईश्वर से अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए प्रार्थना करते हैं, क्योंकि उन्हें केवल इन्द्रियतृप्ति का ही ज्ञान रहता है, जबकि

विपदा में फँसे लोग नारकीय जीवन के कष्टों से अपने आपको मुक्त करने के लिए याचना करते हैं। ऐसे अज्ञानी व्यक्ति मनुष्य जीवन के मूल्य को नहीं जानते। यह जीवन ईश्वर के परम धाम वापस जाने की तैयारी करने के निमित्त है।

शुद्ध भक्त न तो जरूरतमन्द होता है, न ही विपदाग्रस्त, न प्रयोगवादी दार्शनिक, जो अपने अपूर्ण ज्ञान के बल पर ईश्वर को प्राप्त करने का प्रयास करता है। शुद्ध भक्त सही स्रोत से ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करता है। यह स्रोत है उन सिद्ध पुरुषों की शिष्य-परम्परा, जिन्होंने प्रामाणिक आध्यात्मिक गुरु के निर्देशन में भक्ति की परम्परागत विधि का निष्ठापूर्ण अनुसरण किया है। अपनी अपूर्ण इन्द्रियों की अनुभूति के द्वारा ईश्वर की दिव्य प्रकृति को समझ पाना सम्भव नहीं है, किन्तु ईश्वर भक्त द्वारा की गई सेवा के अनुपात में शुद्ध भक्त के समक्ष स्वयं को प्रकट करते हैं।

राजा कुलशेखर शुद्ध भक्त हैं; फलतः वे इस जगत के प्रयोगवादी दार्शनिकों, पीड़ित व्यक्तियों या सकाम कर्मियों के मानदण्डों द्वारा अपने आपको सुधारना नहीं चाहते। पुण्य कर्मों से संसारी प्राणी आध्यात्मिक साक्षात्कार के पथ पर अग्रसर हो सकता है, किन्तु भगवद्भक्ति के क्षेत्र में व्यावहारिक कर्म को पुण्यकर्मों के फलों की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है। शुद्ध भक्त निजी लाभ या हानि के सन्दर्भ में नहीं सोचता, क्योंकि वह पूर्णतया भगवान् का शरणागत होता है। उसे एकमात्र भगवान् की सेवा की चिन्ता रहती है और वह उसी सेवा में सदैव लगा रहता है और इस कारण उसका हृदय भगवान् का घर होता है। चूँकि भगवान् परम हैं, अतः उनमें और उनकी सेवा में कोई अन्तर नहीं है। एक शुद्ध भक्त का हृदय भगवान् की सेवा करने के विचारों से सदैव पूरित रहता है और यह भाव उसे गुरु के पारदर्शी माध्यम से प्राप्त होता है।

प्रामाणिक गुरु-शिष्य परंपरा से गुरु 'ईश्वर-पुत्र' हैं अथवा दूसरे शब्दों में वे भगवान् के प्रामाणिक प्रतिनिधि होते हैं। उनके प्रामाणिक होने का प्रमाण ईश्वर में उनकी अविचल श्रद्धा है, जो निर्विशेषवाद की विपत्ति से उनकी रक्षा करती है। निर्विशेषवादी कभी भी प्रामाणिक गुरु नहीं हो सकता, क्योंकि प्रामाणिक गुरु के जीवन का एकमात्र उद्देश्य भगवान् की सेवा करना होना

चाहिए। वह भगवान् द्वारा नियुक्त प्रतिनिधि की भाँति भगवान् के सन्देश का प्रचार करता है और इन्द्रियतृप्ति या निर्विशेषवादियों की संसारी 'तू तू, मैं मैं' से उसका कुछ भी लेना-देना नहीं रहता। कोई भी किसी निराकार सत्ता की भक्ति नहीं कर सकता, क्योंकि भक्ति में सेवक तथा स्वामी के मध्य पारस्परिक निजी सम्बन्ध निहित रहता है। निर्विशेषवाद की विचारधारा में तथाकथित भक्त से भगवान् के साथ तदाकार होने तथा अपने पृथक् अस्तित्व को समाप्त करने की अपेक्षा की जाती है।

राजा कुलशेखर जैसे शुद्ध भक्त ऐसी विधि से बचने के लिए विशेषतया सावधान रहते हैं, जो उन्हें कहीं भगवान् से एकाकार न कर दे—यह अवस्था *अद्वन्द्व*—अद्वैतता कहलाती है। यह तो मात्र आध्यात्मिक आत्महत्या हुई। भक्त के लिए मुक्ति के पाँच प्रकारों में से *अद्वन्द्व* सर्वाधिक गर्हित है। शुद्ध भक्त ऐसे तादात्म्य (एकाकार) को नरक जाने से भी बदतर समझकर उसकी भर्त्सना करता है।

सारे जीवात्मा भगवान् के पृथक् भिन्नांश होने से भगवान् के अंश हैं। भगवान् दिव्य लीलाओं का आनन्द लेने के लिए पूर्णांश व भिन्नांश में अपना विस्तार करते हैं और यदि जीव इन दिव्य आनन्दमयी लीलाओं में संलग्न रहने से इन्कार करता है, तो उसे ब्रह्म से तदाकार होने की छूट रहती है। यह तो वैसा ही है, जैसे कि कोई पुत्र अपने पिता द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार पिता के साथ न रहकर आत्महत्या कर ले। इस तरह आत्महत्या करने से वह पुत्र अपने पिता के साथ, पुत्रवत् सम्बन्ध से और पिता की सम्पत्ति के भोग से मिलने वाले आनन्द की आहुति दे देता है। शुद्ध भक्त ऐसी अपराधजनक नीति से लगातार बचता रहता है और राजा कुलशेखर ऐसे पतन से बचने के लिए हमें मार्ग दिखला रहे हैं।

राजा कुलशेखर यह भी कह रहे हैं कि वे ईश्वर की स्तुति कुम्भीपाक नरक से बचने के लिए नहीं कर रहे हैं। विशाल लोहे तथा इस्पात के कारखानों के श्रमिकों को कुम्भीपाक नरक जैसा कष्ट सहना होता है। *कुम्भी* का अर्थ "पात्र या बर्तन" है और *पाक* का अर्थ है "खौलता हुआ।" अतः यदि किसी व्यक्ति को तेल के पात्र में रखकर पात्र को गर्म करके खौलाया जाए, तो उसे कुम्भीपाक नरक की यातना का कुछ अनुमान लग सकेगा।

वर्तमान तथाकथित सभ्यता में असंख्य नारकीय कार्य हैं और भगवान् की मोहिनी शक्ति की दया से लोग इन नारकीय कार्यों को महान् वैभव मानते हैं। आधुनिकतम मशीनों से युक्त आज की औद्योगिक फैक्टरियाँ अनेक कुम्भीपाक नरकों के तुल्य हैं और इनके प्रबन्धक इन्हें आर्थिक कल्याण की प्रगति के लिए अपरिहार्य मानते हैं। इन प्रबन्धकों द्वारा शोषित श्रमिक इन फैक्टरियों की "कल्याणकारी" स्थितियों का प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं, किन्तु इनके प्रबन्धक यह नहीं जानते कि कर्म के नियम के अनुसार समय आने पर इन्हें ऐसे ही कुम्भीपाक नरकों में श्रमिक बनना पड़ेगा।

बुद्धिमान व्यक्ति निश्चित ही ऐसे कुम्भीपाक नरकों से बचना चाहते हैं और वे ईश्वर से यही आशीर्वाद चाहते हैं; किन्तु शुद्ध भक्त इस तरह से प्रार्थना नहीं करता। नारायण का शुद्ध भक्त स्वर्ग में भोगे जाने वाले सुख, भगवान् से तदाकार होने के दिव्य आनन्द एवं कुम्भीपाक नरक में अनुभव किये जाने वाले कष्टों को एकसमान मानता है। भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में लगे रहने के कारण उसका इनमें से किसी से कुछ सम्बन्ध नहीं होता। भगवत्कृपा से शुद्ध भक्त कुम्भीपाक नरक में भी परिस्थिति को अनुकूल बनाकर उसे वैकुण्ठ में बदल सकता है।

भगवद्गीता तथा अन्य सारे प्रामाणिक शास्त्रों का कथन है कि भगवान् अपने परमात्मा रूप में प्रत्येक जीव के साथ रहते हैं। इसलिए कुम्भीपाक नरक में जानेवाले जीव के साथ भी भगवान् उसके नित्य संगी बने रहते हैं; किन्तु अपनी अचिन्त्य शक्ति के कारण भगवान् इन नारकीय परिस्थितियों से पृथक् रहते हैं, जिस तरह से आकाश वायु से पृथक् रहता है, यद्यपि वह इससे मिला हुआ दिखाई देता है।

इसी तरह भगवान् का शुद्ध भक्त इस भौतिक जगत में कहीं भी नहीं रहता, यद्यपि वह संसारी प्राणियों के बीच रहता प्रतीत होता है। वस्तुतः भक्त तो वैकुण्ठ में रहता है। इस प्रकार भगवान् अपने शुद्ध भक्त को अचिन्त्य शक्ति प्रदान करते हैं, जिससे वह सारी भौतिक संसारी परिस्थितियों से पृथक् रहता है और आध्यात्मिक जगत में शाश्वत निवास करता है। भक्त, जाने या अनजाने, इस शक्ति को नहीं चाहता, किन्तु भगवान् अपने भक्त के लिए सदैव उसी तरह सचेत रहते हैं, जिस तरह माता अपने छोटे से बच्चे के प्रति सदैव सावधान

रहती है, जो पूरी तरह से माता पर आश्रित होता है।

राजा कुलशेखर जैसे शुद्ध भक्त सुन्दर सुकोमल त्वचा वाली स्त्रियों की संगति करने से इन्कार करते हैं। ब्रह्माण्ड के विभिन्न ग्रहों में स्त्रियों की भिन्न भिन्न कोटियाँ मिलती हैं; यहाँ तक कि पृथ्वी लोक में भी तरह तरह की स्त्रियाँ होती हैं, जो विभिन्न प्रकार के पुरुषों द्वारा भोगी जाती हैं। किन्तु उच्चतर लोकों में इस लोक की तुलना में करोड़ों गुना सुन्दर स्त्रियाँ हैं और वहाँ पर ऐसे रमण स्थल भी हैं, जहाँ उनका भोग किया जा सकता है। इनमें से सर्वश्रेष्ठ स्वर्गलोक का नन्दनकानन है। इस नन्दनकानन—एक 'एडन बगीचा' अर्थात् परामानव बाग में सुपात्र व्यक्ति नाना प्रकार की सुन्दरियों के साथ भोग कर सकते हैं, जिन्हें अप्सरा कहते हैं। सामान्यत: देवतागण इन अप्सराओं के साथ उसी तरह रमण करते हैं, जिस तरह लगभग प्रसिद्ध मुगल बादशाह तथा नवाब अपने अपने अन्त:पुरों में भोग करते थे। किन्तु ये राजा तथा नवाब स्वर्गलोक के देवताओं के सामने तुच्छ हैं; यह स्वर्गलोग इस ब्रह्माण्ड के तीसरे स्तर पर पाया जाता है।

रमण (भोग) करने की आन्तरिक प्रवृत्ति प्रत्येक जीव के हृदय में पाई जाती है। किन्तु भौतिक जीवन की रुग्ण अवस्था में जीव इस प्रवृत्ति का दुरुपयोग करता है। जीव अपनी इस रुग्ण, बद्ध अवस्था को जितनी बढ़ाता है, उतना ही वह अपने भौतिक अस्तित्व की अवधि को बढ़ाता जाता है। इसलिए शास्त्रों का उपदेश है कि जीव केवल उन्हीं इन्द्रियभोग की वस्तुओं को स्वीकार करे, जो भौतिक शरीर के पालन के लिए आवश्यक हों और उनको त्याग दे, जो मात्र इन्द्रियतृप्ति के लिए हों। इस तरह उसकी इन्द्रियभोग की प्रवृत्ति घटेगी। इस संयम को बलपूर्वक लागू नहीं किया जा सकता; इसे स्वैच्छिक होना चाहिए।

मनुष्य में ऐसा संयम भक्ति करते करते स्वत: विकसित होता है। अत: जो व्यक्ति पहले से भक्ति में लगा हो, उसे अपनी इन्द्रियों को कृत्रिम रूप से संयमित करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। इसलिए राजा कुलशेखर जैसे शुद्ध भक्त न तो इन्द्रियभोग की इच्छा करते हैं, न ही अपनी इन्द्रियों को संयमित करने का परिश्रम करते हैं, प्रत्युत वे बिना किसी विराम के भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में ही अपने आपको लगाये रखने का प्रयास करते हैं।

श्लोक ५*

नास्था धर्मे न वसुनिचये नैव कामोपभोगे
यद्भाव्यं तद्भवतु भगवन्पूर्वकर्मानुरूपम्।
एतत्प्रार्थ्यं मम बहु मतं जन्मजन्मान्तरेऽपि
त्वत्पादाम्भोरुहयुगगता निश्चला भक्तिरस्तु॥ ५॥

न—नहीं; **आस्था**—विशेष आदर; **धर्मे**—धर्म में; **न**—न ही; **वसु**—सम्पत्ति के; **निचये**—संग्रह हेतु; **न एव**—न ही; **काम-उपभोगे**—इन्द्रियभोग के लिए; **यत्**—जो भी; **भाव्यम्**—अपरिहार्य; **तत्**—वह; **भवतु**—घटित हो; **भगवन्**—हे भगवन्; **पूर्व**—विगत; **कर्म**—मेरे कर्म; **अनुरूपम्**—के अनुसार; **एतत्**—यह; **प्रार्थ्यम्**—प्रार्थनीय; **मम**—मेरे द्वारा; **बहु मतम्**—अत्यन्त वांछित; **जन्म-जन्म**—प्रत्येक जन्म; **अन्तरे**—में; **अपि**—भी; **त्वत्**—आपके; **पाद-आभोरुह**—चरणकमलों के; **युग**—दोनों; **गता**—शरण लेकर; **निश्चला**—अचल; **भक्तिः**—भक्ति; **अस्तु**—हो।

अनुवाद

हे प्रभु! मेरी अनुरक्ति न तो धर्म में है, न ही धन संचय करने में और न ही इन्द्रियतृप्ति में। ये सब मेरे विगत कर्मों के अनुसार अनिवार्यतः आते हैं, तो आएँ। किन्तु मैं इस अत्यन्त मनवांछित वरदान के लिए प्रार्थना करता हूँ कि जन्म-जन्मान्तर आप मुझे अपने दोनों चरणकमलों की अचल भक्ति सम्पन्न करने दें।

तात्पर्य

मानव प्राणी ईशभावनामृत की ओर तब अग्रसर होते हैं, जब वे खाने, सोने, स्वरक्षण करने तथा संभोग करने के स्थूल भौतिक जीवन से परे जाकर चारित्रिक तथा नैतिक सिद्धान्तों को विकसित करने का प्रारम्भ करते हैं। ये सिद्धान्त और आगे विकसित होकर धार्मिक चेतना में परिणत होते हैं, जिनसे सत्य की किसी व्यावहारिक अनुभूति के बिना, ईश्वर की काल्पनिक अनुभूति होती है। ईशभावनामृत की ये अवस्थाएँ धार्मिकता कहलाती हैं और यह धर्म विविध स्तरों की भौतिक सम्पन्नता का वचन देता है।

धार्मिकता की इस अवधारणा को विकसित करने वाले लोग अनेक यज्ञ करते हैं, दान देते हैं और नाना प्रकार की तपस्या करते हैं। इन सबका उद्देश्य

भौतिक सम्पन्नता का पारितोषिक प्राप्त करना होता है। ऐसे तथाकथित धार्मिक लोगों का चरम लक्ष्य तरह तरह से इन्द्रियतृप्ति करना रहता है। इन्द्रियतृप्ति के लिए भौतिक सम्पन्नता अनिवार्य है; इसलिए वे अनेक धार्मिक अनुष्ठान करते हैं, जिनका उद्देश्य भौतिक नाम, यश तथा लाभ का प्रतिफल पाना होता है।

किन्तु वास्तविक *धर्म* इससे सर्वथा भिन्न है। संस्कृत भाषा में ऐसे वास्तविक *धर्म* का अर्थ है "जीव का अनिवार्य गुण।" शास्त्र कहते हैं कि यह अनिवार्य गुण नित्य सेवा करने का है और इस सेवा का सही लक्ष्य परम सत्य, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण हैं। भगवान् की यह सनातन दिव्य सेवा भौतिक परिस्थितियों के अन्तर्गत गलत दिशा में लग जाती है और (१) ऊपर बताई धार्मिकता (२) आर्थिक विकास (३) इन्द्रियतृप्ति तथा (४) मोक्ष, का रूप धारण कर लेती है या हताशावश सारी भौतिक विविधता को नकारने का प्रयत्न रह जाती है।

तथापि असली धर्म न तो आर्थिक विकास, न इन्द्रियतृप्ति, न ही मोक्ष में समाप्त होता है। आत्मा की पूर्ण तुष्टि प्राप्त करना ही धर्म की पूर्णता है और इसे उन भगवान् की भक्ति करके प्राप्त किया जा सकता है, जो भौतिक इन्द्रिय अनुभूति से परे हैं। जीव जब अपने नित्य सेवा भाव को शाश्वत परम पुरुष की ओर मोड़ देता है, तो ऐसी सेवा किसी भी प्रकार के भौतिक अवरोध से बाधित नहीं हो सकती। ऐसी दिव्य सेवा मोक्ष से भी बढ़कर है; अतः इसका लक्ष्य नाम, यश या लाभ के रूप में किसी प्रकार का भौतिक पुरस्कार प्राप्त करना नहीं होता।

जो व्यक्ति परम पुरुष की दिव्य प्रेममयी सेवा में संलग्न रहता है, वह भौतिक नाम, यश तथा लाभ से स्वतः विरक्त हो जाता है। इनकी कामना वे ही करते हैं, जो यह नहीं जानते कि यह नाम, यश तथा लाभ वास्तविक वस्तु की छाया मात्र हैं। भौतिक नाम, यश तथा लाभ भगवान् के नाम, यश तथा ऐश्वर्य रूपी वास्तविक वस्तु के विकृत प्रतिबिम्ब मात्र हैं। इसलिए भगवान् वासुदेव का शुद्ध भक्त, दिव्य सेवाभाव से प्रबुद्ध होकर धर्म, अर्थ, काम या मोक्ष जैसी मिथ्या वस्तुओं के प्रति आकृष्ट नहीं होता, जो कि माया के अन्तिम पाश हैं।

असली धर्म पालन करने का प्रयोजन भगवद्धाम के संदेशों के श्रवण तथा

कीर्तन के प्रति आसक्ति प्राप्त करना है। भौतिकतावादी लोग आध्यात्मिक चेतना के अभाव के कारण सामान्य समाचारपत्रों के पढ़ने में आसक्त रहते हैं। असली धर्म से यह आध्यात्मिक चेतना और साथ ही साथ ईश-संदेशों के प्रति अनुरक्ति विकसित होती है, जिसके बिना सारे धार्मिक अनुष्ठानों की सम्पन्नता केवल शक्ति का अपव्यय है।

इसलिए मनुष्य को न तो अपने आर्थिक लाभ के उद्देश्य से धर्म का अनुसरण करना चाहिए, न ही अपनी सम्पत्ति का उपयोग इन्द्रियतृप्ति के लिए करना चाहिए और न ही इन्द्रियतृप्ति की योजनाओं से निराश होने पर मोक्ष के लिए अथवा भौतिक स्थितियों में मुक्ति पाने की कामना करनी चाहिए। मनुष्य को चाहिए कि वह अपने श्रम-फल के बल पर विभिन्न प्रकार की इन्द्रियतृप्ति में न लगकर, केवल अपने जीवन को चलाने जितना कर्म, जीवन के परम लक्ष्यों के बारे में जिज्ञासा करने के लिए करना चाहिए अर्थात् उसे परम सत्य के बारे में जिज्ञासा करनी चाहिए।

परम सत्य का साक्षात्कार तीन चरणों में किया जाता है—निर्विशेष ब्रह्म, अन्तर्यामी परमात्मा तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्। जिस व्यक्ति को आध्यात्मिक साक्षात्कार की सर्वोच्च अवस्था अर्थात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का साक्षात्कार हो जाता है, वह स्वत: उसी तरह प्रार्थना करता है, जिस तरह राजा कुलशेखर यहाँ पर कर रहे हैं।

जो मनुष्य भगवान् की भक्ति करता है, केवल वही भौतिक प्रकृति की मिथ्या तथा नश्वर सम्पत्तियों के प्रति ऐसी उदासीनता की दशा को प्राप्त कर सकता है। ऐसी भक्ति दुरात्मा व्यक्तियों का मनोरथ नहीं होता, अपितु ईश साक्षात्कार की वास्तविक विधि है, जो पूर्ण ज्ञान तथा विरक्ति से समन्वित है और वैदिक वाङ्मय पर आधारित होती है। तथाकथित भक्तिविधान जो श्रुति, स्मृति, पुराण तथा पंचरात्र जैसे वैदिक वाङ्मय में निर्धारित विधि-विधानों से बँधा नहीं होता, वह प्रामाणिक नहीं होता। स्वरूपसिद्ध महात्मा हमें ऐसे छद्म भक्ति विधानों का परित्याग करने का उपदेश देते हैं, जो आध्यात्मिक साक्षात्कार के मार्ग में विघ्न ही उत्पन्न करते हैं। शास्त्रानुमोदित भगवद्भक्ति में निष्ठापूर्वक संलग्न रहकर ही मनुष्य धीरे धीरे भगवान् का सुयोग्य भक्त बन सकता है, भले ही उसे इसके लिए कई जन्म क्यों न लेने पड़ें।

श्लोक ६*

दिवि वा भुवि वा ममास्तु वासो
नरके वा नरकान्तक प्रकामम्।
अवधीरितशारदारविन्दौ
चरणौ ते मरणेऽपि चिन्तयामि॥ ६॥

दिवि—देवताओं के लोक में; **वा**—अथवा; **भुवि**—पृथ्वी पर, जो कि मनुष्यों का आवास है; **वा**—अथवा; **मम**—मेरा; **अस्तु**—हो; **वासः**—आवास; **नरके**—नरक में; **वा**—अथवा; **नरक-अन्तक**—हे नरकासुर के वधकर्ता; **प्रकामम्**—आप जैसा चाहें; **अवधीरित**—जिन्होंने उल्लंघन किया है; **शारद**—शरद् ऋतु के; **अरविन्दौ**—कमल के फूल; **चरणौ**—दो पाँव; **ते**—आपके; **मरणे**—मृत्यु के समय; **अपि**—भी; **चिन्तयामि**—स्मरण कर सकूँ।

अनुवाद

नरकासुर का वध करने वाले हे प्रभु! आप जहाँ भी चाहें—देवलोक, मनुष्यलोक या नरक में—मुझे निवास दें। मेरी एकमात्र यही विनती है कि मृत्यु के समय मैं आपके उन युगल चरणकमलों का स्मरण कर सकूँ, जिनका सौन्दर्य शरत्कालीन कमल को चुनौती देने वाला है।

तात्पर्य

जैसाकि इसके पूर्व कहा जा चुका है, शुद्ध भगवद्भक्त को न तो संसारी धर्म, आर्थिक उन्नति, इन्द्रियतृप्ति या मोक्ष से कोई वास्ता रहता है, न ही उसे इसकी चिन्ता रहती है कि उसका भौतिक जीवन-स्तर उच्चतम है या निम्नतम। उसके लिए स्वर्ग तथा नरक एक समान हैं। वह भगवान् की सेवा करने के लिए नरक जाने से भी भयभीत नहीं होता और न ही भगवान् की सेवा के बिना वह स्वर्ग में रहने से प्रसन्न होता है। किसी भी परिस्थिति में उसकी चेतना भगवान् के उन चरणकमलों पर स्थिर रहती है, जिनका सौन्दर्य संसार के सुन्दरतम कमल पुष्प को भी मात देने वाला है।

यह चुनौती भगवान् के नाम, रूप, गुण, लीला इत्यादि की दिव्य स्थिति के कारण है। श्रुति मन्त्र घोषित करते हैं कि यद्यपि भगवान् के हाथ नहीं होते, किन्तु वे हमारे द्वारा भक्तिपूर्वक अर्पित की गई कोई भी वस्तु स्वीकार कर सकते हैं। यद्यपि उनके पाँव नहीं होते, किन्तु वे कहीं भी आ-जा सकते हैं।

यद्यपि उनके भौतिक नेत्र नहीं होते, किन्तु वे बिना किसी अवरोध के कहीं भी, कुछ भी देख सकते हैं। *ब्रह्मसंहिता* उनकी प्रत्येक इन्द्रिय को सर्वशक्तिमान बताती है। संसारी नेत्र देख सकते हैं किन्तु सुन नहीं सकते, किन्तु भगवान् के नेत्र देख सकते हैं, सुन सकते हैं, खा सकते हैं, सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं, आदि आदि। श्रुति मन्त्र कहते हैं कि वे भौतिक प्रकृति पर अपनी दृष्टि डालकर उसे जीव रूपी बीजों से गर्भित बना देते हैं। उन्हें माता प्रकृति के साथ किसी प्रकार का समागम करने की आवश्यकता नहीं पड़ती, जिससे कि जीव उसके गर्भ से उत्पन्न हों और वे उनके पिता बनें।

अत: अपने अनेक भक्तों के साथ भगवान् का कोई भी सम्बन्ध, चाहे वह पितृत्व का हो या पुत्रत्व का या अन्य कोई, रंच भर भी भौतिक नहीं होता। भगवान् शुद्ध आत्मा हैं और जब कोई जीव अपनी शुद्ध आध्यात्मिक स्थिति में होता है, तभी वह उनके साथ सभी प्रकार के सम्बन्ध रख सकता है। अल्पज्ञ दार्शनिक भगवान् तथा पूर्ण-आध्यात्मिक जीवों के मध्य के इन सकारात्मक आध्यात्मिक सम्बन्धों की कल्पना भी नहीं कर सकते और इस तरह वे केवल भौतिक सम्बन्धों का निषेध करने के रूप में ही सोचते हैं। इस तरह ऐसे दार्शनिक स्वभावत: निर्विशेषवाद की परिकल्पना को अपना लेते हैं।

इसके विपरीत, राजा कुलशेखर जैसे शुद्ध भक्त को पदार्थ तथा आत्मा दोनों का पूर्ण ज्ञान होता है। वे यह नहीं कहते कि प्रत्येक भौतिक वस्तु मिथ्या है, फिर भी उन्हें स्वर्ग से लेकर नरक तक की किसी भौतिक वस्तु से कुछ भी लेना देना नहीं रहता। वे *भगवद्गीता* के इस कथन को पूरी तरह समझते हैं कि ब्रह्माण्ड के निम्नतम लोकों से लेकर सर्वोच्च लोक, ब्रह्मलोक तक ऐसा कोई आध्यात्मिक आनन्द नहीं है, जिसके लिए जीव लालायित रहते हों। इसीलिए शुद्ध भक्त, आध्यात्मिक जीवन से पूरी तरह ज्ञात होते हुए, एक ही समय, भौतिक सम्बन्धों का परित्याग करता है और ईश्वर के साथ अपने आध्यात्मिक सम्बन्ध का अनुशीलन करता है। दूसरे शब्दों में, भक्त का आध्यात्मिक ज्ञान उससे न केवल भौतिक अस्तित्व का परित्याग कराता है, अपितु नित्य सकारात्मक आध्यात्मिक अस्तित्व की वास्तविकता का ज्ञान भी प्रदान करता है। इस प्रार्थना में राजा कुलशेखर इसी ज्ञान को व्यक्त कर रहे हैं।

श्लोक ७

चिन्तयामि हरिमेव सन्ततं
मन्दहासमुदिताननाम्बुजम्।
नन्दगोपतनयं परात्परं
नारदादिमुनिवृन्दवन्दितम् ॥ ७ ॥

चिन्तयामि—मैं सोचता हूँ; **हरिम्**—भगवान् हरि के विषय में; **एव**—निस्सन्देह; **सन्ततम्**—सदैव; **मन्द**—हल्की; **हास**—मुस्कान से; **मुदित**—प्रसन्न; **आनन-अम्बुजम्**—कमल के समान मुखवाले; **नन्द-गोप**—ग्वाला नन्द के; **तनयम्**—पुत्र को; **परात् परम्**—परम ब्रह्म; **नारद-आदि**—नारद इत्यादि; **मुनि-वृन्द**—समस्त मुनियों द्वारा; **वन्दितम्**—पूजित।

अनुवाद

मैं सदैव भगवान् हरि का चिन्तन करता हूँ, जिनके कमल समान प्रसन्न मुखमण्डल में मृदु मुस्कान बनी रहती है। यद्यपि वे नन्द गोप के पुत्र हैं, वे परम पूर्ण सत्य भी हैं, जो नारद जैसे महान् मुनियों द्वारा पूजित हैं।

तात्पर्य

ज्यों ज्यों राजा कुलशेखर भगवान् का चिन्तन करते हैं और उनकी प्रसन्नता का स्मरण करते हैं, त्यों त्यों राजा स्वयं भी प्रसन्न होते हैं। भगवान् कृष्ण नित्य प्रसन्न रहते हैं, किन्तु बद्धात्मा अधिकांशतया दुखी रहता है। जब हम अपनी आध्यात्मिक प्रकृति की विस्मृति में जीवन बिताते हैं, तो हमारा तथाकथित आनन्द भी भ्रम ही होता है, जो असंतोषजनक, क्षणिक सुख (*चपल सुख*) है। कवि गोविन्द दास अपने गीत *भज्जुं रे मन* में इसे इस प्रकार व्यक्त करते हैं "किसी के धन, युवावस्था, पुत्रों तथा पारिवारिक जनों पर क्या भरोसा? यह जीवन कमल की पंखड़ी पर इधर उधर हिलती डुलती जल की बूंद के समान है। इसलिए आपको सदैव भगवान् हरि के दिव्य चरणों की सेवा करनी चाहिए।"

एक अन्य वैष्णव कवि नरोत्तम दास ठाकुर ने परमेश्वर की प्रसन्नता का वर्णन श्रीचैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु को सम्बोधित एक गीत में इस

प्रकार किया है, *हा हा प्रभु नित्यानन्द प्रेमानन्द सुखी कृपावलोकन करो आमी बड़ो दुःखी*—"हे प्रिय नित्यान्द प्रभु, आप सदैव आध्यात्मिक आनन्द में प्रसन्न रहते हैं। चूँकि आप सदैव प्रसन्न प्रतीत होते हैं, इसलिए मैं आपके पास आया हूँ, क्योंकि मैं अति दुखी हूँ। यदि आप मुझ पर कृपा-दृष्टि डाल दें, तो मैं भी सुखी बन जाऊँ।"

इस स्तुति में राजा कुलशेखर अपने आपको ईश्वर की स्वयंस्फूर्त प्रेमावस्था में मानते हैं, जिसमें भक्त औपचारिक अनुष्ठान तथा स्तुतियों से ऊपर उठकर सदैव भगवान् हरि के बारे में चिन्तन करता है। भक्तिमय सेवा में सुख का यह असली मानदण्ड है। भगवान् का ऐसा अनवरत स्मरण उनके नाम के निरन्तर कीर्तन द्वारा ही सम्भव है। जैसाकि श्रीचैतन्य महाप्रभु अपने *शिक्षाष्टक* (३) में संस्तुति करते हैं—*कीर्तनीयः सदा हरिः*—"मनुष्य को सदैव भगवन्नाम का कीर्तन करना चाहिए।" इस तरह वह भगवान् कृष्ण के सुख में सदैव सुखी रहेगा। सदैव वर्धमान समुद्र (*आनन्दाम्बुधिवर्धनम्*) की भाँति भगवान् का सुख भी सदैव बढ़ता जाता है और जीव इस सागर में डुबकी लगाने के निमित्त बना है, क्योंकि उसका मूल स्वभाव भगवान् के सम्पर्क में रहकर सदैव आनन्दमग्न रहना है।

राजा कुलशेखर जब भगवान् कृष्ण का वर्णन नन्द गोप के पुत्र-रूप में करते हैं, तो वे कृष्णभावनामृत के असीम सुख का ही संकेत करते हैं। कृष्ण वैकुण्ठ के स्वामी हैं और वे चतुर्व्यूह के रूप में, पुरुष अवतारों के रूप में तथा अन्य अनेक रूपों में अपना विस्तार करते हैं, किन्तु उनका आदि रूप गोलोक वृन्दावन में ग्वालबाल का रूप है। वे इस जगत में, वृन्दावन धाम में यहाँ के अपने शुद्ध भक्तों से प्रेम का आदान-प्रदान करने आये, क्योंकि ये भक्त उनके मित्र, माता-पिता तथा प्रेमी बनने के अभिलाषी थे। वे अन्तरंग विधियों से भगवान् की सेवा करना चाहते थे और वे इसे "सभी पुण्यकर्म संचित करके" ही अन्ततः पूरा कर सके, जैसाकि श्रील प्रभुपाद ने 'कृष्ण' नामक ग्रन्थ में कहा है। दूसरे शब्दों में, जब उन्होंने अनेक जन्मों तक सेवा करके भगवान् के प्रति अपनी प्रेमाभक्ति पूर्ण कर ली, तो भगवान् उनके साथ उनके विशिष्ट रस का आदान-प्रदान करने के लिए स्वयं प्रकट हुए।

कृष्ण ने नन्द के पुत्र रूप में क्रीड़ा करते हुए आनन्द लिया। उदाहरणार्थ,

कृष्ण कभी कभी अपने सिर पर अपने पिता की खड़ाऊँ रखकर अपने माता-पिता को प्रमुदित करते थे, जिस तरह एक सामान्य बालक करता है। तथा कृष्ण ने द्वारका में भी अपनी भव्य लीलाओं का आनन्द उठाया, जहाँ वे १६,१०८ महलों में उतनी ही संख्या में रानियों के साथ अद्वितीय ऐश्वर्य में रहे। एक बार नारद मुनि द्वारका में भगवान् से भेंट करने गये, तो उन्होंने उन्हें अपने अनेक महलों में विविध लीलाओं में संलग्न देखा। उस समय नारद विस्मित हो गये और उन्हें समस्त ऐश्वर्यों के स्रोत कहकर उनका बखान किया।

वृन्दावन के सीधे-सादे ग्राम में भगवान् की मोहक मधुर लीलाओं तथा द्वारका में उनकी भव्य ऐश्वर्यमयी लीलाओं के मध्य कोई विरोधाभास नहीं है। उनकी समस्त लीलाएँ सुखों के सागर हैं और जो भी भक्त उनकी बहुविध लीलाओं में से किसी के बारे में सदैव चिन्तन कर सकता है, वह उसी सागर में डुबकी लगाता है, यहाँ तक कि यदि इस जगत में कोई व्यक्ति सदैव भगवान् का चिन्तन करे, तो वह समस्त भौतिक कष्टों को भूल जाएगा और आध्यात्मिक धाम में प्रवेश करेगा।

श्लोक ८

करचरणसरोजे कान्तिमन्नेत्रमीने
श्रममुषि भुजवीचिव्याकुलेऽगाधमार्गे।
हरिसरसि विगाह्यापीय तेजोजलौघं
भवमरुपरिखिन्नः क्लेशमद्य त्यजामि॥ ८॥

कर—हाथ; **चरण**—तथा पैर; **सरोजे**—कमल जैसे; **कान्ति-मत्**—चमकीली; **नेत्र**—आँखें; **मीने**—मछली जैसी; **श्रम**—थकान; **मुषि**—चोरी करके; **भुज**—भुजाओं की; **वीचि**—लहरों द्वारा; **व्याकुले**—विक्षुब्ध; **अगाध**—बहुत गहरी; **मार्गे**—गति वाली; **हरि**—भगवान् हरि की; **सरसि**—झील में; **विगाह्य**—गोता लगाकर; **आपीय**—पूरी तरह पीकर; **तेजः**—उनके तेज का; **जल**—जल की; **ओघम्**—बाढ़; **भव**—भौतिक संसार के; **मरु**—मरुस्थल में; **परिखिन्नः**—थका हुआ; **क्लेशम्**—कष्ट; **अद्य**—आज; **त्यजामि**—मैं त्याग दूँगा।

अनुवाद

भौतिक अस्तित्व रूपी मरुस्थल ने मुझे थका दिया है। किन्तु आज मैं भगवान् हरि रूपी झील में गोता लगाकर और उनके तेज रूपी अगाध

जल का मुक्त भाव से पान करके सारे कष्टों को एक ओर फेंक दूँगा। भगवान् के हाथ पाँव उस झील में खिले कमल हैं और उनकी चमकीली आँखें मछलियाँ हैं। उस झील का जल समस्त थकान को मिटाने वाला है और वह भगवान् के हाथों द्वारा उत्पन्न लहरों से उद्वेलित रहता है। उसकी धारा अथाह गहरी बहती है।

तात्पर्य

इस स्तुति में राजा कुलशेखर ने विस्तृत रूपक का प्रयोग किया है, जिसमें भगवान् के सर्वाकर्षक रूप की तुलना एक ऐसी झील से की गई है, जो नवयौवन प्रदान करने वाली है। यदि कोई भक्त इस झील में गोता लगाता है और इसके जल को पीता है, तो भौतिक जीवन से उत्पन्न उसकी सारी थकावट जाती रहेगी। हमें मात्र कृष्ण के विषय में श्रवण, उनके यश के कीर्तन तथा उनके स्मरण द्वारा भक्ति में गोता लगाना होता है। तो फिर हम सभी इसे क्यों नहीं करते? यह माया है, जो हमें यह सोचने को बाध्य करती है कि यहाँ पर कोई राहत नहीं है या कि झील मृगतृष्णा है। भौतिक कार्यों में मूर्खतावश लिप्त रहने से हम ऐसा सोच सकते हैं कि कृष्णभावनामृत रूपी आनन्द सागर में गोते लगाना उत्तरदायित्वपूर्ण नहीं है। हम सोचते हैं "कहाँ है ऐसा झील? यदि वह मिल जाए तो मैं उसमें प्रसन्नतापूर्वक कूद जाऊँगा। किन्तु वह तो काल्पनिक 'यौवन के झरने' के तुल्य लगता है।"

जब हम अभक्तों को भगवान् का रूप दिखलाते हैं और उन्हें उनकी सेवा करने के लिए बुलाते हैं, तो वे इन्कार कर देते हैं। वे सोचते हैं कि भगवान् कोई सामान्य पुरुष या कोई काल्पनिक व्यक्ति हैं। किन्तु यहाँ तो "भगवान् हरि की झील" है और उसमें जलचर खेलते रहते हैं—ये भगवान् के शुद्ध भक्त हैं जिन्हें न कोई चिन्ता रहती है, न भय, न क्रोध न लोभ। वे उस झील में गोता लगा चुके हैं और समस्त भौतिक थकावट से मुक्त हैं। हम शरीर, मन तथा इच्छा से थक जाते हैं, किन्तु इस झील का जल हमारी सारी थकान को दूर कर देता है।

वैदिक साहित्य में अन्यत्र भी झीलों का उल्लेख हुआ है—यथा 'बिन्दु-सरोवर' जहाँ देवहूति दीर्घ तपस्या के बाद पुनरुज्जीवित होकर सुन्दर बन गई

थीं। किन्तु भगवान् हरि की झील में निमग्न होने का प्रभाव युवावस्था को पुनः प्राप्त करना नहीं है, क्योंकि यह तो पुनः शीघ्र ही समाप्त हो जाएगी। इससे *संसार* से, अर्थात् जन्म-मृत्यु के चक्र से, शाश्वत मुक्ति मिल जाती है।

मन्दिर में अर्चाविग्रह की पूजा करने तथा शास्त्रों से भगवान् के रूप का वर्णन सुनकर, हम भगवान् के रूप के प्रति आकर्षण प्राप्त कर सकते हैं। यही नहीं, उनके नाम के कीर्तन तथा श्रवण से भी उनके उस रूप के प्रति आकर्षण उत्पन्न होता है, जिस रूप को अन्ततः भगवान् शुद्ध कीर्तन करने वाले के समक्ष प्रकट करते हैं। भगवान् के रूप के प्रति आकृष्ट होते ही हम अन्य रूपों में आनन्द लेने का प्रयास छोड़ देंगे, ऐसा प्रयास जो केवल थकावट उत्पन्न करने वाला होता है। तब हम जान सकेंगे कि एकमात्र कृष्ण ही हमें तुष्ट कर सकते हैं।

श्लोक ९

सरसिजनयने सशङ्खचक्रे
मुरभिदि मा विरमस्व चित्त रन्तुम्।
सुखतरमपरं न जातु जाने
हरिचरणस्मरणामृतेन तुल्यम्॥ ९॥

सरसिज—झील में उत्पन्न कमल के फूल के समान; **नयने**—नेत्रों वाले; **स**—सहित; **शङ्ख**—उनका शंख; **चक्रे**—तथा चक्र; **मुर-भिदि**—मुर राक्षस का संहार करने वाले; **मा विरमस्व**—कृपया कभी विराम न लें; **चित्त**—हे मन; **रन्तुम्**—भोग करने के लिए; **सुख-तरम्**—अत्यन्त आनन्ददायक; **अपरम्**—अन्य कोई वस्तु; **न**—नहीं; **जातु**—तनिक भी; **जाने**—जानता हूँ; **हरि-चरण**—भगवान् हरि के चरणों का; **स्मरण**—स्मरण; **अमृतेन**—अमृत; **तुल्यम्**—के समान।

अनुवाद

हे मन, तुम उन कमल सदृश नेत्रवाले तथा शंख एवं चक्र धारण करने वाले मुर राक्षस के संहारक के विषय में चिन्तन करने से मिलने वाले आनन्द को प्राप्त करने से कभी रुकना नहीं। वस्तुतः मुझे अन्य ऐसी कोई वस्तु ज्ञात नहीं है, जो भगवान् हरि के दैवी चरणों का ध्यान करने जैसा अगाध आनन्द देने वाली हो।

तात्पर्य

राजा कुलशेखर अपने निजी अनुभव से बता रहे हैं कि कृष्ण के बारे में चिन्तन करना कितना आनन्दप्रद है। यह चिन्तन उनके जीवन का सर्वोच्च आनन्द है। राजा के रूप में उन्हें सांसारिक आनन्द की अनेक वस्तुएँ सुलभ थीं, किन्तु भगवान् के चरणकमलों के ध्यान की तुलना में वे सारी वस्तुएँ तुच्छ थीं। यह कृष्ण-ध्यान सभी के लिए उपलब्ध है और परमेश्वर तथा उनके प्रतिनिधिगण चाहते हैं कि हर कोई इसका आनन्द ले। *भगवद्गीता* में भगवान् कृष्ण कहते हैं, "सदैव मेरा चिन्तन करो।" यह ध्यान केवल दार्शनिकों तथा कवियों के लिए नहीं है। यद्यपि अर्जुन एक योद्धा था, किन्तु भगवान् कृष्ण ने उसे उपदेश दिया, "मेरा स्मरण करते रहो और युद्ध करो।"

श्रील व्यासदेव द्वारा रचित वैदिक साहित्य भगवान् तथा उनके भक्तों की कथाओं से भरा हुआ है और यह हमें भगवान् को सदैव स्मरण करने में सहायता देने के निमित्त है। ये ग्रन्थ हमें शिक्षा देते हैं कि अपने मन को व्यापार, मनोरंजन, मनोकल्पना इत्यादि सामान्य विचारों से किस तरह मोड़कर उसे पुरुषोत्तम भगवान् के साकार रूप में स्थिर किया जाए, अन्यथा असंख्य संसारी विचार हमें अपने में डूबों देंगे। उदाहरणार्थ, टी.वी., रेडियो तथा समाचारपत्रों के माध्यम से राजनीति की खबरें हम पर लगातार बमबारी करती रहती हैं। यही नहीं, हमारे निजी आर्थिक मामले स्वयं में पूरी तरह लिप्त करने वाले हैं और हम इन चिन्ताओं से निपटने के लिए वीडियो, संगीत, नशा तथा यौन उद्दीपन जैसे बहकावों में भाग लेते हैं। संसारी विचारों में समय का अपव्यय कोई नई बात नहीं, किन्तु आज हमारे ध्यान को खींचने वाले बहकावों का वेग, विविधता तथा तीव्रता बढ़ गई हैं।

इस तरह यद्यपि ईश्वर पर ध्यान लगाना सदैव की तरह अत्यावश्यक है, किन्तु कोई इस निष्कर्ष पर पहुँच सकता है कि आजकल यह सम्भव नहीं है। किन्तु श्रील प्रभुपाद तथा उनके द्वारा प्रस्थापित कृष्णभावनामृत आन्दोलन से हम इस युग में भी अपने मन को भगवान् के विचारों में निमग्न कर सकते हैं। यदि कोई व्यक्ति किसी ऐसे शहर में रहता है, जिसमें इस्कॉन मन्दिर हो, तो वह जाकर भगवान् विष्णु के अर्चाविग्रह का सीधा दर्शन कर सकता है, जैसाकि राजा कुलशेखर ने किया। यहाँ तक कि वह कार्यालय जाते समय

क्षणभर रुककर मन्दिर में भगवान् का दर्शन करने के लिए समय निकाल सकता है। यदि वह मन्दिर से काफी दूर रहता है, तो भी वह श्रील प्रभुपाद द्वारा रचित पुस्तकें पढ़ सकता है; भक्तों से पत्रव्यवहार कर सकता है, भक्ति के ध्वनिमुद्रण सुन सकता है, कृष्णभावनाभावित प्रकाशनों का नियमित ग्राहक बन सकता है और निस्सन्देह, अकेले या मित्रों के साथ मिलकर हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन कर सकता है। इस तरह चाहने वालों के लिए, इनसे तथा अन्य विधियों से कृष्ण का ध्यान उपलब्ध हो सकता है।

यहाँ पर राजा कुलशेखर विशेष रूप से भगवान् के चरणों का ध्यान करने का उल्लेख करते हैं। ऐसे ध्यान से विनयशीलता (अकिंचनता) का बोध होता है और इससे प्रतीत होता है कि ध्यानकर्ता ईश्वर के संरक्षण में आश्रय लेना चाहता है। निस्सन्देह, भगवान् के चरणकमल उस शरण के प्रतीक स्वरूप हैं। वैदिक साहित्य में अन्यत्र वर्णन मिलता है कि भगवान् के चरणकमल उस छत्र के समान हैं, जो भक्तों को भौतिक जीवन से संरक्षण प्रदान करता है। अत: भक्त भगवान् के चरणों के ध्यान से संतुष्ट रहता है, यद्यपि कभी कभी वह भगवान् के शरीर के अन्य अंगों का भी ध्यान करता है। फिर भी हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि भले ही भगवान् के चरणकमल पूर्ण शरण के प्रतीक रूप हों, जो वे अपने भक्तों को प्रदान करते हैं, किन्तु उनके विषय में कुछ भी "प्रतीकात्मक" नहीं है—उन्हें सदैव साकार शाब्दिक रूप में मानना चाहिए।

एक बार कुछ हठयोगी विद्यार्थियों ने श्रील प्रभुपाद से पूछा कि क्या शास्त्रों में ऐसा निर्देश है, जो यह स्पष्ट रूप से बताता हो कि उन अध्यात्मवादियों का पतन होता है, जो परम सत्य को निर्विशेष मानते हैं। तब श्रील प्रभुपाद ने *श्रीमद्भागवत* का निम्नांकित श्लोक (१०.२.३२) उद्धृत किया—

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिन-
स्त्वय्यस्त भावादविशुद्धबुद्धय:।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं तत:
पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रय:॥

"हे कमलनयन प्रभु, सर्वोच्च पद प्राप्त करने के लिए कठिन तपस्या करने वाले अभक्तगण भले ही अपने आपको मुक्त मानें, किन्तु उनकी बुद्धि अशुद्ध रहती

है। वे अपनी कल्पित श्रेष्ठता के पद से नीचे गिर जाते हैं, क्योंकि उनमें आपके चरणकमलों के प्रति कोई आदरभाव नहीं होता।" इस श्लोक को उद्धृत करने के बाद श्रील प्रभुपाद ने कहा, *"अङ्घ्रय"* (चरण) जिसका अर्थ है 'पुरुष'।

अतः निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि हममें यह दृढ़ श्रद्धा होनी चाहिए कि परम सत्य परम पुरुष कृष्ण हैं और उनका शरीर सर्वथा आनन्दमय है और उनके चरण ध्यान करने योग्य हैं।

श्लोक १०

माभीर्मन्दमनो विचिन्त्य बहुधा यामीश्चिरं यातना
नैवामी प्रभवन्ति पापरिपवः स्वामी ननु श्रीधरः।
आलस्यं व्यपनीय भक्तिसुलभं ध्यायस्व नारायणं
लोकस्य व्यसनापनोदनकरो दासस्य किं न क्षमः॥ १०॥

मा भीः—मत डरो; **मन्द**—मूर्ख; **मनः**—हे मन; **विचिन्त्य**—सोचकर; **बहुधा**—बारम्बार; **यामीः**—मृत्यु के स्वामी यमराज द्वारा उत्पन्न; **चिरम्**—दीर्घकालीन; **यातनाः**—यातनाओं के विषय में; **न**—नहीं; **एव**—निस्सन्देह; **अमी**—ये; **प्रभवन्ति**—प्रभावशाली हैं; **पाप**—पापपूर्ण कृत्य; **रिपवः**—शत्रुगण; **स्वामी**—स्वामी; **ननु**—क्या वह नहीं है; **श्री-धरः**—श्री अर्थात् लक्ष्मी के पालनकर्ता; **आलस्यम्**—आलस्य; **व्यपनीय**—भगाकर; **भक्ति**—भक्ति द्वारा; **सु-लभम्**—सरलतापूर्वक प्राप्त हो सकने वाला; **ध्यायस्व**—ध्यान करो; **नारायणम्**—भगवान् नारायण का; **लोकस्य**—संसार के; **व्यसन**—कष्टों; **अपनोदन-करः**—दूर भगाने वाले; **दासस्य**—दास के; **किम्**—क्या; **न**—नहीं; **क्षमः**—समर्थ।

अनुवाद

अरे मूर्ख मन! तुम यमराज द्वारा दी जाने वाली यातनाओं के बारे में बार बार सोचना बन्द करो। तुम्हारे शत्रु, जो तुम्हारे द्वारा किये गये पापों के कर्मफल हैं, भला तुम्हें कैसे छू सकते हैं? क्या तुम्हारे स्वामी परमेश्वर नहीं हैं, जो लक्ष्मी देवी के पति हैं? तुम सारा संकोच दूर करके अपने विचारों को उन भगवान् नारायण पर एकाग्र करो, जिन्हें भक्तिमय सेवा द्वारा आसानी से प्राप्त किये जा सकते हैं। सम्पूर्ण संसार के कष्टों को दूर करने वाले भला अपने दास के लिए क्या नहीं कर सकते?

तात्पर्य

राजा कुलशेखर, अत्यन्त सकारात्मक दृष्टिकोण से हमें आगाह करते हैं कि जब तक हम सर्वशक्तिमान भगवान् के संरक्षण में हैं, तब तक हमें कोई क्षति नहीं पहुँच सकती, यहाँ तक कि वह हानि भी, जो हमारे पापपूर्ण कृत्य साधारणतया हम पर लाते हैं। भगवान् कृष्ण भी अर्जुन को *भगवद्गीता* (९.३१) में आदेश देते हैं, "निडर होकर घोषित कर दो कि मेरा भक्त कभी विनष्ट नहीं होगा।"

पापमय जीवन तथा इसके फल निश्चित रूप से गम्भीर प्रसंग हैं, जिन्हें यों ही टाला नहीं जा सकता। यमराज सारे पापी जीवों को नारकीय यातनाएँ देते हैं। किन्तु भक्ति की विधि इतनी शक्तिशाली है कि यह सारे पापफलों को दूर कर देती है, मानो वे बुरे स्वप्न में दिखने वाले शत्रु हों। आगे के श्लोक १५ में राजा कुलशेखर जन्म तथा मृत्यु के कष्टों से निवृत्ति पाने के लिए कृष्ण के पवित्र नाम-कीर्तन की सर्वश्रेष्ठ विधि के रूप में संस्तुति करते हैं। नामाचार्य हरिदास ठाकुर का भी यह मत है। वे घोषित करते हैं कि पवित्र नाम के शुद्ध जप की छाया (*नामाभास*) मात्र अनेकानेक जन्मों के संचित पाप कोषों को विनष्ट करती है और इस तरह मुक्ति प्रदान करती है।

जन्म तथा मृत्यु पर विजय पाने का भक्तों का दावा कोरी डींग नहीं है, किन्तु इसके लिए पूरी तरह भगवान् हरि की शरण में जाना होता है। भगवान् यह वर अपने दास के शुद्ध दास को प्रदान करते हैं, अन्यों को नहीं। जब तक मनुष्य धन तथा सांसारिक शक्ति के द्वारा अपनी रक्षा करने का प्रयास करता है, तब तक वह प्रबल माया का आसान शिकार बनता रहेगा। जो जीव अपने आपको संसार से मुक्त करने के प्रति गम्भीर रहता है, वह अपने पराक्रम के बल पर कर्म करने का ढोंग नहीं करता, अपितु भगवान् तथा उनके प्रतिनिधियों के प्रामाणिक निर्देशों का सदैव अनुसरण करता है। केवल भगवान् पर आश्रित ऐसा सेवक ही उनके पूर्ण संरक्षण में जन्म तथा मृत्यु पर विजय पाने के प्रति आश्वस्त रह सकता है।

इस स्तुति में राजा कुलशेखर यमराज को दीर्घकालीन क्लेशों का कारण बताते हैं। किन्तु ऐसा कष्ट भगवद्भक्तों के लिए नहीं है। एक बार स्वयं यमराज ने अपने सेवकों को, जिन्हें यमदूत कहा जाता है, आदेश दिया कि जो लोग

भगवान् के पवित्र नामों का उच्चारण करते हैं, वे यमराज के अधिकार क्षेत्र में नहीं आते। यमराज ने कहा, "सामान्यतया भक्तगण पापकर्म नहीं करते, किन्तु यदि गलती से अथवा मोह या भ्रमवश वे कभी पापकर्म करते हैं, तो वे पापफलों से बचा लिए जाते हैं, क्योंकि वे सदैव हरे कृष्ण मन्त्र का जप करते हैं।" *श्रीमद्भागवत* (६.३.२६) यमराज ने अपने अनुचरों से कहा कि वे भक्तों के निकट भी न जाएँ। वैष्णवजन सदैव भगवान् विष्णु की गदा द्वारा सुरक्षित रहते हैं। इस तरह न तो ब्रह्मा, न ही काल उन्हें प्रताड़ित कर सकता है।

श्रील प्रभुपाद ने कहा कि जब भक्त अपने गुरु से दीक्षा लेता है, तो वह अपने सारे कर्मफलों से मुक्त हो जाता है। दुख तथा सुख, जो निरन्तर कर्मफलों के समान प्रतीत होते हैं, भक्तिरहित कर्मों के शेष प्रभाव मात्र हैं, जो बिजली के पंखे के अन्तिम चक्करों के समान हैं, जो उसका प्लग निकाल देने पर चलता रहता है। किन्तु यह सब भक्ति के निष्ठापूर्ण सम्पन्न करने पर निर्भर करता है। जो व्यक्ति गुरु से दीक्षा लेने के बाद भी ईश्वर के नियमों का उल्लंघन करता रहता है, वह पुनः भौतिक प्रकृति के निर्दय व्यवहारों के अधीन आ जाता है।

श्लोक ११

भवजलधिगतानां द्वन्द्ववाताहतानां
सुतदुहितृकलत्रत्राणभारार्दितानाम्।
विषमविषयतोये मज्जतामप्लवानां
भवति शरणमेको विष्णुपोतो नराणाम्॥ ११॥

भव—भौतिक अस्तित्व रूपी; **जलधि**—सागर में; **गतानाम्**—उपस्थित; **द्वन्द्व**—भौतिक द्वैतों की; **वात**—तेज हवा से; **आहतानाम्**—प्रहार किये गये; **सुत**—पुत्र; **दुहितृ**—पुत्रियाँ; **कलत्र**—तथा पत्नियाँ; **त्राण**—रक्षा के; **भार**—भार से; **अर्दितानाम्**—सताये गये; **विषम**—संकटपूर्ण; **विषय**—इन्द्रियतृप्ति के; **तोये**—जल में; **मज्जताम्**—डूबते हुए; **अप्लवानाम्**—ले जाने के लिए कोई नाव न होने से; **भवति**—होता है; **शरणम्**—शरण; **एकः**—एकमात्र; **विष्णु-पोतः**—विष्णुरूपी नाव; **नराणाम्**—समस्त लोगों के लिए।

अनुवाद

जन्म-मृत्यु के इस विस्तृत सागर में भौतिक द्वन्द्वों के झोंके लोगों को

उड़ाये ले जा रहे हैं। जब वे इन्द्रियलिप्तता के विषम जल में थपेड़े खाते रहते हैं और उनकी सहायता के लिए कोई नाव नहीं रहती, तो वे अपने पुत्रों, पुत्रियों तथा पत्नियों को बचाने की आवश्यकता के कारण अत्यन्त दुःखी रहते हैं। उन्हें केवल विष्णु रूपी नाव ही बचा सकती है।

तात्पर्य

कभी-कभी भौतिकतावादी व्यक्ति दार्शनिक भाव से कहते हैं कि गर्मी तथा सर्दी ऐसे द्वन्द्व हैं, जिनसे जीवन में रुचिपूर्ण विविधता आती है अथवा चटपटापन आता है। किन्तु सत्य यह है कि भले ही हम इस द्वन्द्वयुक्त क्षणभंगुर संसार में जीवन के बारे में भावपूर्ण अभिव्यक्ति करें, किन्तु इसका प्रमुख गुण कष्ट है। प्रह्लाद महाराज ने इस जगत को ऐसा स्थान कहा है, जहाँ हमारा ऐसी वस्तुओं से सामना होता है, जिन्हें हम नहीं चाहते और जिन्हें हम चाहते हैं, उनसे विलग हुए जाते हैं। हम या तो अभावों की पूर्ति के लिए लालायित रहते हैं, या किसी मूल्यवान वस्तु के हाथ से निकल जाने पर पछताते हैं। जब भी हम मानवीय कार्यकलापों के समुद्र में आसानी से सन्तरण करते प्रतीत होते हैं, तो हम चेतन अवस्था में या तो परोक्ष रूप से यह जान जाते हैं कि चरम विनाशकर्ता काल (मृत्यु) हमारा पीछा कर रहा है।

अपने सुख का विस्तार करने के लिए हम जीवनसंगी चुनकर परिवार की वृद्धि करते हैं। कभी कभी हम अपने पारिवारिक जनों को भाग्य के थपेड़ों के विरुद्ध रक्षकों के रूप में देखते हैं किन्तु वे अन्ततः श्रील प्रभुपाद के शब्दों में, "चूकने वाले सिपाही" सिद्ध होते हैं! पारिवारिक जीवन के माध्यम से सुरक्षा तथा सुख की खोज हमारे संकट तथा पीड़ा को केवल बढ़ाने वाली होती है। जब राजा चित्रकेतु का पुत्र मरा, तो नारद मुनि ने राजा से कहा, 'हे राजन्, अब आप उस व्यक्ति के कष्ट का अनुभव कर रहे हैं, जिसको पुत्र-पुत्रियाँ हैं। हे राजन्, किसी की पत्नी, उसका घर, उसके राज्य-ऐश्वर्य तथा उसके अन्य ऐश्वर्य एवं इन्द्रिय भोग की वस्तुएँ—ये सभी नाशवान् होने के कारण एक सी हैं। उसका राज्य, सैनिक शक्ति, कोष, अनुचर, मन्त्री, मित्रगण तथा सम्बन्धीजन—ये सभी भय, मोह, पश्चाताप तथा क्लेश के कारण हैं। ये गन्धर्वनगर की तरह हैं, जिसका कोई अस्तित्व नहीं होता, किन्तु मनुष्य उसके जंगल में स्थित होने की कल्पना करता है। चूँकि ये सभी वस्तुएँ अस्थायी हैं,

अत: वे मोह, स्वप्न तथा मनोरथ के अलावा और कुछ भी नहीं हैं।" (*भागवत* ६.१५.२३)

जब दुख आ पड़ता है, तो शरण खोजना स्वाभाविक है और ऐसे अवसर पर पुण्यात्मा व्यक्ति, हम सबों के एकमात्र रक्षक, भगवान् की ओर मुड़ता है। जब हाथियों के राजा, गजेन्द्र पर जल के भीतर एक घड़ियाल ने आक्रमण किया, तो उसे यह तुरन्त अनुभूति हुई कि न तो उसकी कोई पत्नी, न ही उसके संगी हाथी उसे बचा सकते हैं। गजेन्द्र ने कहा, "वे कुछ भी नहीं कर सकते। भगवान् की इच्छा से मुझ पर इस घड़ियाल ने आक्रमण किया; अत: मैं उन्हीं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शरण में जाता हूँ, जो सदैव सबों के, यहाँ तक कि महापुरुषों तक के आश्रय हैं।" (*भागवत* ८.२.३२)

हममें से कोई नहीं चाहता कि विपत्तियाँ आएँ, किन्तु जब वे आती हैं, तो वे भगवान् कृष्ण की शरण में जाने के लिए प्रेरक का कार्य करती हैं। महारानी कुन्ती ने इस प्रकार प्रार्थना की है—

विपद: सन्तु ता: शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥

"मैं चाहती हूँ कि ये विपत्तियाँ बारम्बार आएँ, जिससे हम आपका पुन: पुन: दर्शन कर सकें, क्योंकि आपके दर्शन करने का अर्थ यह है कि हमें बारम्बार जन्म तथा मृत्यु को नहीं देखना पड़ेगा।"(*भागवत* १.८.२५)

श्लोक १२

भवजलधिमगाधं दुस्तरं निस्तरेयं
कथमहमिति चेतो मा स्म गाः कातरत्वम्।
सरसिजदृशि देवे तारकी भक्तिरेका
नरकभिदि निषण्णा तारयिष्यत्यवश्यम्॥ १२॥

भव—भौतिक अस्तित्व रूपी; **जलधिम्**—सागर; **अगाधम्**—बहुत गहरा; **दुस्तरम्**—जिसको पार करना असम्भव है; **निस्तरेयम्**—पार कर सकूँगा; **कथम्**—कैसे; **अहम्**—मैं; **इति**—इस प्रकार; **चेत:**—हे मेरे मन; **मा स्म गा:**—कृपया मत आओ; **कातरत्वम्**—कातरता; **सरसि-ज**—कमल के समान; **दृशि**—आँखों वाले; **देवे**—भगवान् को; **तारकी**—प्रदान करें; **भक्ति:**—साक्षात् भक्ति; **एका**—एकमात्र;

नरक—नरकासुर; **भिदि**—संहारकर्ता में; **निषण्णा**—निर्भर; **तारयिष्यति**—पार कर देगी; **अवश्यम्**—निश्चित रूप से।

अनुवाद

हे मन! तुम यह सोचकर मत व्यग्र हो कि मैं इस भौतिक अस्तित्व वाले संसार रूपी अगाध तथा दुर्लंघ्य सागर को कैसे पार कर सकूँगा? तुम्हें यदि कोई बचा सकता है, तो वह भक्ति है। यदि तुम इस भक्ति को नरकासुर के विनाशकर्ता कमलनयन भगवान् को अर्पित कर सको, तो यह भक्ति तुम्हें निश्चित रूप से समुद्र के उस पार ले जाएगी।

तात्पर्य

भक्त इस भौतिक अस्तित्व के कष्टों से भयभीत नहीं होता। उसे पूर्ण विश्वास रहता है कि कृष्ण उसकी रक्षा करेंगे। यद्यपि विनाशकारी शक्तियाँ किसी भी मर्त्य से अधिक शक्तिशाली होती हैं, किन्तु भक्त उस छोटे से पक्षी की तरह है, जिसकी रक्षा उसके माता-पिता करते हैं। भगवान् हमें आश्वस्त करते हैं, "हे अर्जुन, तुम निडर होकर घोषित कर दो कि मेरा भक्त कभी विनष्ट नहीं होता।" (*भगवद्गीता* ९.३१)

किन्तु यदि कोई व्यक्ति भक्ति के अतिरिक्त किसी अन्य साधन के द्वारा भगवान् से सुरक्षा की माँग करता है, तो उसे असफलता हाथ लगती है। कृष्ण भक्ति के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु से प्रभावित नहीं होते। उदाहरणार्थ, *भगवद्गीता* (९.२६) में वे भक्त को अपने साथ प्रेमपूर्ण सम्बन्ध बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करते हैं कि वह उन्हें भोज्य पदार्थ अर्पित करे—"यदि कोई व्यक्ति प्रेम तथा भक्तिपूर्वक मुझे एक पत्ती, फूल, फल या जल अर्पित करता है, तो मैं उसे स्वीकार करता हूँ।" पुरुषोत्तम भगवान् यह नहीं चाहते कि कोई खाद्यसामग्री या पुष्प उन पर अपने आप ही चढ़ जाँय, किन्तु जब कोई भक्त भक्तिपूर्वक इन्हें अर्पित करता है, तो वे अत्यधिक आकृष्ट होते हैं और अपने भक्त के प्रेम का प्रतिदान करने को उन्मुख हो जाते हैं।

जब तक भगवान् हमारी सेवा से प्रसन्न नहीं होते, तब तक वे स्वयं को प्रकट नहीं करते। (*नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः*) और जीवात्मा कितनी भी योग्यतावाला क्यों न हो, वह भगवान् के निजी हस्तक्षेप के बिना जन्म-मृत्यु के चक्र में भटकता रहता है। प्रह्लाद महाराज ने नृसिंह भगवान् की

अपनी स्तुति में पुष्टि की है कि एकमात्र भक्ति ही भगवान् को सन्तुष्ट कर सकती है, "मनुष्य के पास कितनी ही सम्पत्ति, राजसी परिवार, सौन्दर्य, तप, शिक्षा, कार्यकुशलता, कान्ति, प्रभाव, शारीरिक शक्ति, उद्यम, बुद्धि तथा योगशक्ति क्यों न हो, किन्तु मैं सोचता हूँ कि इन सारी योग्यताओं के होते हुए भी मनुष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को तुष्ट नहीं कर सकता। किन्तु वह भक्तिमय सेवा के द्वारा उन्हें प्रसन्न कर सकता है। गजेन्द्र ने ऐसा ही किया था और इस तरह भगवान् उससे प्रसन्न हुए।" (*भागवत* ७.९.९)

मनुष्य गुरु की सेवा करते हुए भी भक्ति की क्षमता के बारे में सन्देह कर सकता है। किन्तु राजा कुलशेखर अपने मन को विश्वास दिलाते हैं कि चिन्ता की कोई बात नहीं है। यदि हम भवसागर की अगाधता तथा दुर्लंघ्यता के बारे में सोचें अथवा यदि हम नरक की यातनाओं का हाल सुनकर भयभीत हो जाँय, तब तो हम पंगु बन जाएँगे और अपने सामान्य कार्यकलाप भी पूरे नहीं कर सकेंगे। किन्तु यदि कोई व्यक्ति निष्ठापूर्वक भक्तिमय सेवा में स्थित है, तो उसे इस तरह डरने की आवश्यकता नहीं है। जैसाकि अवन्ती देश के ब्राह्मण ने कहा है—

एतां स आस्थाय परात्मनिष्ठा-
मध्यासितां पूर्वतमैर्महर्षिभिः।
अहं तरिष्यामि दुरन्तपारं
तमो मुकुन्दाङ्घ्रिनिषेवयैव॥

"मैं भगवान् कृष्ण के चरणकमलों की सेवा में दृढ़ रहकर अज्ञान के दुर्लंघ्य सागर को पार कर जाऊँगा। इसको पूर्ववर्ती आचार्यों ने अनुमोदित किया है, जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की दृढ़भक्ति में स्थिर थे।" (*भागवत* ११.२३.५७)

श्लोक १३

तृष्णातोये मदनपवनोद्धूतमोहोर्मिमाले
दारावर्ते तनयसहजग्राहसङ्घाकुले च।
संसाराख्ये महति जलधौ मज्जतां नस्त्रिधामन्
पादाम्भोजे वरद भवतो भक्तिनावं प्रयच्छ॥ १३॥

तृष्णा—प्यास; **तोये**—जिसका जल; **मदन**—कामदेव रूपी; **पवन**—वायु से; **उद्धूत**—आलोड़ित; **मोह**—मोह रूपी; **ऊर्मि**—लहरों की; **माले**—पंक्तियाँ; **दार**—पत्नी रूप; **आवर्ते**—भँवर; **तनय**—पुत्रों; **सहज**—तथा भाइयों; **ग्राह**—शार्क; **सङ्घ**—समूहों के साथ; **आकुले**—पुंजित; **च**—तथा; **संसार-आख्ये**—संसार कहलाने वाला; **महति**—विशाल; **जलधौ**—सागर में; **मज्जताम्**—डूबते हुए; **नः**—हमको; **त्रि-धामन्**—तीन लोकों के स्वामी; **पाद**—पैरों को; **अम्भोजे**—कमल सदृश; **वरद**—हे वरदायक; **भवतः**—आपके; **भक्ति**—भक्ति की; **नावम्**—नाव; **प्रयच्छ**—कृपा करके प्रदान करें।

अनुवाद

हे तीनों लोकों के स्वामी! हम इस संसार रूपी अगाध सागर में डूब रहे हैं, जो भौतिक लालसाओं रूपी जल से भरा हुआ है, जिसमें मोह रूपी अनेक लहरें उठ रही हैं, जो वासना रूपी हवाओं के द्वारा विलोड़ित है। इस सागर में पत्नी रूपी भँवर हैं और हमारे पुत्र तथा भ्राता रूपी शार्कों तथा अन्य समुद्री दैत्यों के विशाल झुंड हैं। हे समस्त वरों के दाता! कृपा करके अपने चरणकमल रूपी भक्ति की नाव पर मुझे स्थान दें।

तात्पर्य

इस डरावने दृश्य में जीवन की सारी प्रिय तथा परिचित वस्तुएँ भयावह बन जाती हैं। किन्तु भौतिक वास्तविकता का यही यथार्थ मूल्यांकन है। राजा कुलशेखर ने सागर सम्बन्धी जिन रूपकों का प्रयोग किया है वे दिखावटी नहीं हैं, अपितु हमें दिखाते हैं कि वास्तविकता क्या है।

एक आम कहावत है कि डूब रहा व्यक्ति अपने समक्ष सम्पूर्ण जीवन को बीतते देखता है। किन्तु यह हम कभी नहीं सुनते कि मृत्यु के बाद उस व्यक्ति का क्या हुआ। नास्तिक व्यक्ति यह मान लेता है कि जब हम मरते हैं, तो सब कुछ समाप्त हो जाता है और हम शान्ति में विश्राम करते हैं। किन्तु वैदिक ज्ञान के अनुसार मृत्यु के बाद भी जीवन होता है। "जिसने जन्म लिया है, उसकी मृत्यु ध्रुव सत्य है और मृत्यु के बाद पुनः जन्म लेना भी निश्चित है।" (*भगवद्गीता* २.२७) यदि बद्धजीव मृत्यु के समय अपने समक्ष अपने जीवन को बीतते देखता है, तो सामान्यतया वह खेदपूर्वक ही ऐसा करता है। अपने जीवनभर के संगियों तथा पारिवारिक जनों के प्रति प्रबल आसक्ति, बहुत भारी बोझ बनकर उसे बारम्बार जन्म तथा मृत्यु के लिए घसीटती रहती है।

इसलिए किसी भी व्यक्ति के लिए यह श्रेयस्कर होगा कि वह भौतिक जीवन की भयावहता को देखे और अवसर रहते अपनी चेतना को सुधार ले। जब वह अनुभव करने लगता है कि जिस प्रकार वह अपना जीवन बिता रहा है, उसमें बहुत खतरा है, जिसमें अपने मित्रों तथा परिजनों के घेरे में वह मिथ्या रक्षाभाव पाल रहा है, तो उसे भगवान् की भक्तिमय सेवा स्वीकार करके इस स्थिति को सभी प्रकार से बदलने का प्रयास करना चाहिए। यदि वह भाग्यशाली है, तो वह अपने मित्रों तथा परिजनों को भी परिवर्तित करने तथा ईशभावनामृत में समर्पित जीवन बिताने के लिए आश्वस्त कर सकता है। किन्तु यदि वह उन्हें नहीं बदल सकता, तब उसे चाहिए कि कम से कम अपने आपको तो बचा ले। जैसाकि प्रह्लाद महाराज ने अपने असुर पिता हिरण्यकशिपु से कहा—

तत्साधु मन्येऽसुरवर्य देहिनां
सदा समुद्विग्नधियामसद्ग्रहात्।
हित्वात्मपातं गृहमन्धकूपं
वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत॥

"हे असुरों में श्रेष्ठ, मैंने अपने गुरु से यही सीखा है कि जिस किसी व्यक्ति ने नाशवान् देह तथा नश्वर गृहस्थ जीवन स्वीकार किया है, उसे निश्चित रूप से चिन्ताएँ सताती हैं, क्योंकि वह ऐसे अंधकूप में गिरा हुआ होता है, जहाँ जल नहीं होता, केवल कष्ट होते हैं। मनुष्य को चाहिए कि वह इस स्थिति को त्यागकर वन चला जाए। अधिक स्पष्ट करना चाहें तो उसे वृन्दावन चले जाना चाहिए, जहाँ एकमात्र कृष्णभावनामृत ही छाया हुआ है और इस तरह उसे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शरण ग्रहण करनी चाहिए।" (*भागवत* ७.५.५)

सामान्य जीवन की आत्मतुष्टि से जागृत होना आसान नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि यह जीवन कष्टमय है, किन्तु हम सोचते रहते हैं कि हमारे पारिवारिक जन तथा मित्रगण ही हमारी एकमात्र सान्त्वना हैं। किन्तु जैसाकि राजा कुलशेखर तथा अन्य वैदिक ऋषि-मुनि बताते हैं, भौतिकतावादी जीवन में हमारे पारिवारिक लोग हम पर आक्रमण करने वाले हिंसक पशुओं के समान हैं। इस कटु सत्य को बताने के लिए जड़भरत ने राजा रहूगण को भौतिक भोग रूपी जंगल का एक रूपक (अन्योक्ति) सुनाया। इस सन्दर्भ में

उन्होंने कहा, "हे राजन्, इस भौतिक जगत में पारिवारिक जन पत्नी तथा सन्तान के नाम से जाने जाते हैं, किन्तु वास्तव में वे बाघों तथा सियारों का सा व्यवहार करते हैं।"

मुकुन्दमाला स्तोत्र में कवि ने कई बार भौतिक जगत की उपमा सागर से और भगवान् (या उनके चरणकमलों) की उपमा हमें बचाने वाली नाव से दी है। यह रूपक अत्युत्तम है, क्योंकि कोई चाहे कितना ही कुशल तैराक क्यों न हो, वह अशान्त तथा विशाल सागर में अपने बल पर जीवित नहीं रह सकता। अतः अपने परिवार तथा मित्रों के प्रोत्साहन से अपने खुद के बल पर भवसागर में तैरना उसी प्रकार व्यर्थ है, जिस तरह समुद्र में एकाकी तैराक का प्रयास व्यर्थ होता है। हमें अपने एकमात्र रक्षक, भगवान् की ओर देखना चाहिए और सर्वाधिक निष्ठा के साथ उन्हें धन्यवाद देना चाहिए कि उन्होंने आकर हमें बचाया।

श्लोक १४

पृथ्वी रेणुरणुः पयांसि कणिकाः फल्गुः स्फुलिङ्गो लघु-
स्तेजो निःश्वसनं मरुत्तनुतरं रन्ध्रं सुसूक्ष्मं नभः।
क्षुद्रा रुद्रपितामहप्रभृतयः कीटाः समस्ताः सुरा
दृष्टे यत्र स तारको विजयते श्रीपादधूलीकणः॥ १४॥

पृथ्वी—पृथ्वी; **रेणुः**—धूलकण; **अणुः**—अतिसूक्ष्म; **पयांसि**—(समुद्रों के) जल; **कणिकाः**—बूँदें; **फल्गुः**—छोटी छोटी; **स्फुलिङ्गः**—चिनगारी; **लघुः**—तुच्छ; **तेजः**—अग्निरूप; **निः-श्वसनम्**—उच्छ्वास; **मरुत्**—वायु; **तनु-तरम्**—अत्यन्त धूमिल; **रन्ध्रम्**—छिद्र; **सु**—अत्यन्त; **सूक्ष्मम्**—छोटा; **नभः**—आकाश; **क्षुद्राः**—क्षुद्र; **रुद्र**—शिवजी; **पितामह**—ब्रह्माजी; **प्रभृतयः**—इत्यादि; **कीटाः**—कीड़े; **समस्ताः**—सारे; **सुराः**—देवतागण; **दृष्टे**—देखे जाकर; **यत्र**—जहाँ; **सः**—वे; **तारकः**—उद्धारक; **विजयते**—विजयी होता है; **श्री**—दैवी; **पाद**—चरणों की; **धूली**—धूल का; **कणः**—कण।

अनुवाद

एकबार अपने रक्षक के दर्शन पा लने के बाद सारी पृथ्वी धूलकण सदृश बन जाती है, समुद्र का सारा जल मात्र बूंदें बन जाता है, अग्नि क्षुद्र

चिनगारी बन जाती है, वायु हल्की आह बनकर रह जाती है और विस्तृत आकाश एक लघु छिद्र बन जाता है। रुद्र तथा पितामह ब्रह्मा जैसे महान् देवता तुच्छ बन जाते हैं और सारे देवता छोटे छोटे कीटों के समान लगने लगते हैं। निस्सन्देह, अपने प्रभु के चरणों की धूल का एक कण सभी को जीत लेता है।

तात्पर्य

भगवान् कृष्ण असीम हैं; न कोई उनसे बड़ा है, न कोई उनके समान। इसलिए यदि हम चाहें तो भी उनकी ठीक से तुलना किसी अन्य से करना असम्भव है। वे अद्वितीय हैं। सभी वस्तुएँ उन पर आश्रित हैं और वे ही एकमात्र प्रदाता है—(*एको बहूनां यो विदधाति कामान्*)। इसलिए यह कहना कि ईश्वर अन्य सबों से बढ़कर हैं, अपर्याप्त प्रशंसा होगी।

किन्तु हमारे संकुचित मन में (जो सदैव तुलना करने में जुटे रहते हैं) ईश्वर की वास्तविकता को स्पष्ट रूप से केन्द्रित करने के लिए राजा कुलशेखर यहाँ पर रूपकों का प्रयोग करते हैं, जो भगवान् की सर्वोच्चता पर बल देते हैं। वे परमेश्वर की तुलना ऐसे व्यक्तियों तथा वस्तुओं से करते हैं, जिन्हें हम अति महान् मान सकते हैं। जो लोग ईश्वर के साकार स्वरूप को नकारते हैं यथा सर्वेश्वरवादी, वे यह सोचते हैं कि पृथ्वी स्वयं ईश्वर है। कुछ निर्विशेषवादी लोग सोचते हैं कि आकाश महानतम प्राकट्य है; अतः वे उसे ही ईश्वर मानते हैं। देवताओं के पूजक रुद्र या ब्रह्मा को सर्वोच्च पुरुष मानते हैं या वे यह सोचते हैं कि सारे देवता समान हैं। इस तरह राजा कुलशेखर के रूपक इन सारी भ्रान्त धारणाओं को ध्वस्त करते हैं।

यह श्लोक राजा कुलशेखर द्वारा परमेश्वर की भव्य शक्ति तथा ऐश्वर्य का ध्यान करते समय उनके आश्चर्य तथा सम्मान भाव को व्यक्त करता है। अनेक शुद्ध भक्त ऐश्वर्य की इस प्रशंसा से भी आगे बढ़कर उनके साथ घनिष्ठ प्रेमपूर्ण आदान-प्रदान का आनन्द उठाते हैं। किन्तु किसी का भगवान् के साथ चाहे जो भी अन्तिम सम्बन्ध हो, जब वह अपना भक्तिमय जीवन प्रारम्भ करता है, तो उसे परमेश्वर की महानता की प्रशंसा करना सिखाया जाना चाहिए। इसीलिए *भगवद्गीता* (९.८) में कृष्ण अपने सखा अर्जुन को शिक्षा देते हैं, "यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मेरे अधीन है। मेरी इच्छानुसार ही यह बारम्बार प्रकट किया जाता है

और मेरी ही इच्छा से अन्त में इसका संहार कर दिया जाता है।"

चूँकि भगवान् की शक्तियाँ असीम हैं, इसलिए वे भी अचिन्त्य हैं। उदाहरणार्थ, कृष्ण समस्त योनियों को उत्पन्न करते हैं, फिर भी वे उनसे कोई सम्बन्ध नहीं रखते। जीवात्माओं को इसका कोई ज्ञान नहीं रहता कि यह ब्रह्माण्डीय घटनाक्रम किस तरह घटित हो रहा है; फिर भी भगवान् की इच्छा से उन्हें कभी कभी शरीर प्रदान किया जाता है, कुछ काल तक उन्हें अपना पालन पोषण करने दिया जाता है और तब उनकी जानकारी के बिना या उनके नियन्त्रण के बिना उनका नाश कर दिया जाता है। किन्तु जिन भगवान् की इच्छा से ये परिवर्तन होते हैं, वे इसमें शामिल नहीं रहते।

इस स्तुति में राजा कुलशेखर जिस तरह से भगवान् की महिमा का गान करते हैं, उससे हममें भगवान् की महानता के प्रति प्रशंसा का भाव जागृत होता है और हमें उनके तुच्छ दास के रूप में अपनी स्थिति समझने में सहायता मिलती है।

श्लोक १५

हे लोकाः शृणुत प्रसूतिमरणव्याधेश्चिकित्सामिमां
योगज्ञाः समुदाहरन्ति मुनयो यां याज्ञवल्क्यादयः।
अन्तर्ज्योतिरमेयमेकममृतं कृष्णाख्यमापीयतां
तत्पीतं परमौषधं वितनुते निर्वाणमात्यन्तिकम्॥ १५॥

हे लोकाः—हे संसार के लोगों; **शृणुत**—सुनो; **प्रसूति**—जन्म; **मरण**—तथा मृत्यु रूपी; **व्याधेः**—रोग के लिए; **चिकित्साम्**—चिकित्सा के बारे में; **इमाम्**—यह; **योग-ज्ञाः**—योग के ज्ञान में दक्ष लोग; **समुदाहरन्ति**—संस्तुति करते हैं; **मुनयः**—दूरदर्शी; **याम्**—जो; **याज्ञवल्क्य-आदयः**—जैसे कि याज्ञवल्क्य; **अन्तः**—आन्तरिक; **ज्योतिः**—प्रकाश; **अमेयम्**—अमाप्य; **एकम्**—एकमात्र; **अमृतम्**—अमर; **कृष्ण-आख्यम्**—कृष्ण का नाम; **आपीयताम्**—पियो; **तत्**—उस; **पीतम्**—पिया जा रहा; **परम**—परम; **औषधम्**—दवा; **वितनुते**—प्रदान करता है; **निर्वाणम्**—मोक्ष; **आत्यन्तिकम्**—परम।

अनुवाद

अरे लोगों! जन्म तथा मृत्यु के रोग के लिए यह उपचार सुनो! यह कृष्ण का नाम है। इसकी संस्तुति याज्ञवल्क्य तथा अन्य ज्ञानी पटु योगियों

ने की है। यह असीम नित्य आन्तरिक प्रकाश सर्वश्रेष्ठ औषधि है, क्योंकि पीने पर यह पूर्ण तथा चरम मोक्ष देने वाली है। जरा इसे पियो तो!

तात्पर्य

भक्तगण भगवन्नाम की महिमा घोषित करने वाले प्रामाणिक श्लोकों को सुनकर सदैव आनन्दित होते हैं। हमें अति भक्तिपूर्वक एवं ध्यान से पवित्र नामों का सदैव कीर्तन तथा स्मरण करने के लिए याद दिलाया जाना तथा प्रोत्साहित किया जाना पसन्द है।

कृष्ण के शुद्ध भक्त के रूप में राजा कुलशेखर स्वभावतः भगवन्नामों की पूजा करते हैं। यहाँ पर वे भगवन्नामों की तुलना संसार-रूपी रोग को ठीक करने की औषधि से करते हैं। समस्त भयावह व्याधियों में संसार रूपी व्याधि निकृष्टतम है, क्योंकि इसमें अन्य सारे रोग सम्मिलित हैं। जब तक हम इस भौतिक जगत में जन्म लेने के लिए बाध्य हैं, तब तक हम कैंसर, हृदय आघात, एड्स आदि रोगों के शिकार अवश्य होते रहेंगे। इस संसार के भीतर जितने भी उपचार हैं, वे क्षणिक हैं क्योंकि यदि हमारा एक रोग ठीक हो जाता है, तो अन्ततः हमें दूसरा रोग आ घेरता है, चाहे वह इस जीवन में हो या भविष्य के जीवन में। जिस तरह हमारे सुख के सारे प्रयास असफल होते हैं, उसी तरह स्वास्थ्य के सारे प्रयास कभी न कभी असफल होने ही हैं।

भारत में विगत युगों में अपराधी को एक कुर्सी में बाँध दिया जाता था और पानी में तब तक के लिए डुबो दिया जाता था, जब तक कि वह लगभग डूब न जाए। जब उसे बाहर निकाला जाता था, तो उसे बड़ी राहत का अनुभव होता था—किन्तु उसे सताने वाले उसे पुनः डुबो देते थे। इसी तरह, जब हम पीड़ा मुक्त तथा सुखी होते हैं, तो यह राहत के उन कतिपय क्षणों जैसे होते हैं, जो एक कैदी जल के भीतर से ऊपर लाये जाने पर अनुभव करता है। भौतिक जीवन का मूल सिद्धान्त कष्ट है।

इसलिए हमें उस औषधि को पाने के लिए अत्यन्त उत्सुक होना चाहिए, जो हमारे सारे रोगों को ठीक कर देगी। इस श्लोक में आया हुआ *निर्वाण* शब्द संसार के तथा इसके साथ जुड़े हुए कष्टों के स्थायी अन्त का सूचक है। बौद्ध धर्म की शिक्षाओं से निर्वाण शब्द प्रसिद्ध हो गया है, किन्तु बौद्ध धर्मावलम्बी जिस शून्यवादी मोक्ष की शिक्षा देते हैं, वह जीवात्मा के लिए अस्वाभाविक है

और यह क्षणभंगुर है। हमें वास्तविकता में पीड़ा (कष्ट) से स्थायी मुक्ति उस प्रकार के मोक्ष से मिल सकती है, जिसका उल्लेख यहाँ पर राजा कुलशेखर करते हैं—यह मोक्ष है पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सनातन सेवा में संलग्न भक्त का मोक्ष। जब हम भक्तिमय सेवा की विधि से समस्त भौतिक इच्छाओं से मुक्त हो जाते हैं और ईश्वर का शुद्ध प्रेम प्राप्त करते हैं, तो हमें वैकुण्ठलोक भेज दिया जाएगा, जहाँ न कोई चिन्ता है, न कष्ट।

श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के प्रारम्भ (१०.१.४) में राजा परीक्षित भी *औषधि* शब्द का प्रयोग करते हैं, जो कृष्णकथा के कीर्तन तथा श्रवण के संदर्भ में है। "भगवान् की कथाएँ अर्थात् भगवान् के वर्णन बारम्बार जन्म तथा मृत्यु भोगने वाले बद्ध आत्मा के लिए सही औषधि है।" निस्सन्देह, ऐसी कथाओं अर्थात् वर्णनों में भगवन्नाम के कीर्तन तथा श्रवण शामिल रहते हैं।

जैसाकि किसी प्रामाणिक औषधि के साथ होता है, मनुष्य को पवित्र नाम के अमृतमय घूँट को दक्ष लोगों, यथा मुनियों तथा गुरु के मार्गदर्शन में ही ग्रहण करना चाहिए। पुरुषोत्तम भगवान् के नाम तो अपने शुद्ध भक्तों के साथ सम्बन्धों तथा भगवान् की विविध लीलाओं के अनुसार बदलते रहते हैं। भगवान् माता यशोदा के पुत्र रूप में प्रकट हुए और माता देवकी के भी पुत्र रूप में और इसीलिए उनके नाम देवकीनन्दन तथा यशोदानन्दन हैं। मनुष्य को चाहिए कि गुरु-शिष्य परम्परा में गुरु से भगवान् के प्रामाणिक नाम प्राप्त करे।

शास्त्रों में इसकी संस्तुति की गई है कि हम किन नामों का जप करें। उदाहरणार्थ, *कलिसन्तरण उपनिषद्* में हरे कृष्ण महामन्त्र की संस्तुति की गई है, जो इस प्रकार है—*हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे। हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे।* हमें न तो किसी नाम की खोज करनी पड़ती है, न ही इसे गढ़ना पड़ता है। प्रत्युत भगवान् के पवित्र नामों का जप करने में हमें सन्त पुरुषों तथा शास्त्रों का अनुगमन करना चाहिए, जैसाकि श्रील प्रभुपाद *श्रीमद्भागवत* (८.१.१३) के तात्पर्य में संस्तुति करते हैं।

श्लोक १६

हे मर्त्याः परमं हितं शृणुत वो वक्ष्यामि सङ्क्षेपतः
संसारार्णवमापदूर्मिबहुलं सम्यक्प्रविश्य स्थिताः।

नानाज्ञानमपास्य चेतसि नमो नारायणायेत्यमुं
मन्त्रं सप्रणवं प्रणामसहितं प्रावर्तयध्वं मुहुः ॥ १६ ॥

हे मर्त्याः—अरे मरणशील व्यक्तियो; **परमम्**—परम, सर्वोच्च; **हितम्**—लाभ को; **शृणुत**—सुनो; **वः**—तुम लोगों को; **वक्ष्यामि**—बताऊँगा; **सङ्क्षेपतः**—संक्षेप में; **संसार**—भौतिक जगत रूपी चक्र का; **अर्णवम्**—सागर; **आपत्**—आपत्तियों का; **ऊर्मि**—लहरों से; **बहुलम्**—पूरित; **सम्यक्**—पूरी तरह; **प्रविश्य**—भीतर घुस कर; **स्थिताः**—स्थित; **नाना**—अनेक; **ज्ञानम्**—ज्ञान; **अपास्य**—त्याग कर; **चेतसि**—अपने हृदय में; **नमः**—नमस्कार; **नारायणाय**—भगवान् नारायण को; **इति**—इस प्रकार; **अमुम्**—इस; **मन्त्रम्**—मन्त्र को; **स-प्रणवम्**—ॐ अक्षर के साथ; **प्रणाम**—सिर झुकाकर; **सहितम्**—सहित; **प्रावर्तयध्वम्**—कृपया अभ्यास करें; **मुहुः**—लगातार।

अनुवाद

हे मरणशील मनुष्यों, तुम लोगों ने अपने आपको संसार-सागर में पूर्णतया डूबोकर रखा है, जो विपत्ति रूपी लहरों से पूरित है। कृपया सुनो, जैसे मैं तुम लोगों को संक्षेप में बतला रहा हूँ कि अपने परम लाभ को किस तरह प्राप्त किया जाये। तुम लोग ज्ञान प्राप्त करने के विविध प्रयासों को ताक में रखकर *ॐ नमो नारायणाय* मन्त्र का निरन्तर जप करना तथा भगवान् को सिर झुकाकर प्रणाम करना प्रारम्भ कर दो।

तात्पर्य

कोई कितना ही कुशल तैराक क्यों न हो, वह प्रशान्त महासागर जैसे समुद्र में दीर्घ काल तक जीवित नहीं रह सकता। इसी तरह कोई भौतिकतावादी, चाहे वह कर्मी हो, ज्ञानी हो या योगी, संसार की उछलती लहरों के बीच सदा के लिए जीवित नहीं रह सकता। प्रत्युत, सारे जीव एक जीवन से दूसरे में, एक योनि से दूसरी योनि में लगातार उछाले जा रहे हैं। अनेक दार्शनिकों ने ज्ञान के अनुशीलन द्वारा संसार से मुक्ति पाने का प्रयास किया है, किन्तु कितने ही मानसिक तर्क या वेदान्त-अध्ययन क्यों न किया जाये, उससे संसार-सागर के दूसरे किनारे पर नहीं जाया जा सकता। ज्ञानी अधिक से अधिक इतना ही जान सकता है कि सारा भौतिक जीवन कष्टमय है और आगे भी परिष्कृत होकर वह सारे जीवों की वास्तविक एकात्मकता को समझ सकता है। किन्तु इस समझ से भी परम मुक्ति नहीं मिल पाती। जन्म

तथा मृत्यु रूपी सागर से मुक्ति तो उन भगवान् के शरणागत होने पर ही मिल सकती है, जो भक्त को कष्ट से स्वयं मुक्त करते हैं। भगवान् कृष्ण कहते हैं, "मैं जन्म-मृत्यु के सागर से भक्तों का शीघ्रता से उद्धार करता हूँ।" (*भगवद्गीता* १२.७)

राजा कुलशेखर *संसार* से बाहर निकलने के लिए ईश्वर के नामों का निरन्तर जप करने की संस्तुति करते हैं। निस्सन्देह, जिसमें ईश्वर के प्रति स्वयंस्फूर्त प्रेम होता है, वही उनके पवित्र नामों का निरन्तर जप कर सकता है। यान्त्रिक जप दीर्घकाल तक नहीं चल सकता, किन्तु नवजिज्ञासुओं तक को, अधिक से अधिक मात्रा में, हरे कृष्ण का जप करने की सलाह दी जाती है, जिससे उनमें पवित्र नामों के प्रति रुचि उत्पन्न हो। उन्नत भक्त का लक्षण यह है कि उसमें *नामगाने सदा रुचिः* अर्थात् भगवान् के नामों के गायन या जप में सदैव आकर्षण बना रहता है।

वृन्दावन के छः गोस्वामियों को चौबीसों घंटे जप तथा श्रवण करते हुए पवित्र नामों के प्रति आकर्षण की पूर्ण अवस्था प्राप्त थी। श्रील प्रभुपाद लिखते हैं, "निस्सन्देह, हमें उनका (रूप गोस्वामी का) अनुकरण नहीं करना चाहिए, किन्तु कृष्णभावनामृत आन्दोलन के भक्तों को इतना तो सतर्क रहना ही चाहिए कि वे कम से कम सोलह माला का जप पूरा करें, जो उनके लिए न्यूनतम जप की संस्तुत संख्या है। *नाम-गाने सदा रुचिः*—हमें हरे कृष्ण का गान करने तथा जप करने के लिए रुचि को बढ़ाना होगा।" (*महारानी कुन्ती की शिक्षाएँ*, प्रकरण २०)

अत्यन्त रुचि के साथ पवित्र नाम का निरन्तर जप उन्नत भक्तों का विशेषाधिकार है, किन्तु जो अपराधसहित जप करता है, उसके लिए भी निरन्तर जप करने की संस्तुति की गई है। जैसाकि *पद्मपुराण* में कहा गया है, हो सकता है कोई प्रारम्भ में हरे कृष्ण मन्त्र का जप अपराध के साथ करे, किन्तु बारम्बार जप करके इन अपराधों से अपने आपको मुक्त किया जा सकता है। *पापक्षयश्च भवति स्मरतां तमहर्निशम्*—"भगवान् का रात दिन स्मरण करने से मनुष्य सारे पापकर्मों से मुक्त हो जाता है।"

मनुष्य मृत्यु के समय जो कुछ सोचता है, उसीसे उसका अगला जीवन निर्धारित होता है। भगवन्नाम का निरन्तर जप करने का यह दूसरा कारण है।

यदि हम मृत्यु की कठिन घड़ी में जप करते हैं, तो हमारा भगवद्धाम वापस जाना सुनिश्चित रहता है।

श्लोक १७

नाथे नः पुरुषोत्तमे त्रिजगतामेकाधिपे चेतसा
सेव्ये स्वस्य पदस्य दातरि परे नारायणे तिष्ठति।
यं कञ्चित्पुरुषाधमं कतिपयग्रामेशमल्पार्थदं
सेवायै मृगयामहे नरमहो मूढा वराका वयम्॥ १७॥

नाथे—स्वामी; **नः**—हमारे; **पुरुष-उत्तमे**—भगवान्; **त्रि**—तीन; **जगताम्**—जगतों के; **एक**—एक; **अधिपे**—स्वामी; **चेतसा**—मन से; **सेव्ये**—सेवा किये जाने योग्य; **स्वस्य**—अपने आपकी; **पदस्य**—स्थिति; **दातरि**—देने वाले; **परे**—परम; **नारायणे**—भगवान् नारायण में; **तिष्ठति**—जब वे विद्यमान रहते हैं; **यम् कञ्चित्**—कुछ; **पुरुष**—व्यक्ति; **अधमम्**—अधम, नीच; **कतिपय**—कुछ; **ग्राम**—गाँव; **ईशम्**—नियन्ता; **अल्प**—थोड़ा; **अर्थ**—लाभ; **दम्**—देने में समर्थ; **सेवायै**—सेवा के लिए; **मृगयामहे**—हम ढूँढ़ लेते हैं; **नरम्**—इस पुरुष को; **अहो**—आह; **मूढाः**—मोहग्रस्त; **वराकाः**—नीच मूर्ख; **वयम्**—हमें।

अनुवाद

हमारे स्वामी भगवान् नारायण, जो अकेले तीनों लोकों में शासन करते हैं, जिनकी सेवा ध्यान में की जा सकती है और जो अपने निजी धाम में प्रसन्नतापूर्वक सबों को स्थान देते हैं, वे हमारे समक्ष प्रकट हैं। फिर भी हम कुछ गाँवों के किसी छोटे स्वामी की, ऐसे निम्न पुरुष की, जो हमें छोटा पुरस्कार दे सकता है, सेवा करने की याचना करते हैं। हाय! हम कितने मूढ़ हैं!

तात्पर्य

जीव का सनातन धर्म है, सेवा करना। कोई इससे बच नहीं सकता। मूलतः हम प्रेमवश भगवान् की सेवा करने के निमित्त हैं, किन्तु बद्धावस्था में होने से हम सेवा के असली पात्र को भूल जाते हैं और स्वार्थवश हम अयोग्य स्वामियों की सेवा करना चाहते हैं। हम ऐसे व्यक्तियों की सेवा प्रेमवश नहीं, अपितु उनसे पुरस्कार पाने के उद्देश्य से करते हैं। यहाँ तक कि जब हम कोई

तथाकथित उपकार कर्म करते हैं, जैसे देश या मानवता के प्रति, तो ऐसी सेवा उदार या दयालु कहलाने की इच्छा से दूषित रहती है। अन्ततोगत्वा इस तरह भौतिकता से प्रेरित सेवा कई प्रकार से हताशाग्रस्त रहती है और वह न तो हमें, न ही हमारे स्वामियों को तुष्ट कर पाती है।

इसके विपरीत राजा कुलशेखर पुरुषोत्तम भगवान् का दास बनने के महान् लाभ की ओर इंगित करते हैं। भगवान् नारायण समस्त जगतों के शासक हैं (*सर्वलोकमहेश्वरम्*) किन्तु उनकी कीर्ति की विशेषता यह है कि यद्यपि वे असीम तेजस्वी तथा शक्तिमान हैं, तथापि वे सरलता से प्राप्य हैं, जिससे हम उनके नामों के जप, उनके रूप, गुण, लीलाओं तथा आदेशों का ध्यान करके कहीं भी सरलता से उनकी सेवा कर सकते हैं। ऐसी भक्ति किसी पुरस्कार पाने की इच्छा के बिना सम्पन्न की जानी चाहिए। किन्तु यदि बद्धात्मा की कोई निजी इच्छा हो भी, तो भी उसे भगवान् की सक्रिय सेवा करनी चाहिए। *श्रीमद्भागवतम्* (२.३.१०) में श्री शुकदेव गोस्वामी राजा परीक्षित से कहते हैं—

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्॥

"जिस व्यक्ति की बुद्धि उदार है, वह चाहे भौतिक इच्छा से पूरित (सकाम) हो अथवा भौतिक इच्छा से रहित (निष्काम) हो या कि मोक्ष की इच्छा रखने वाला हो, उसे सभी प्रकार से परम पूर्ण की अर्थात् परमेश्वर की पूजा करनी चाहिए।"

भगवान् नारायण की सेवा का अन्त सनातन वैकुण्ठलोक में उनके साथ पुनः मिलन में होता है। वहाँ पर भगवान् के दासों को उनके ऐश्वर्य में लगभग बराबर हिस्सा मिलता है। जैसाकि श्रील प्रभुपाद कहा करते थे, "महान् की सेवा करके महान् बनो।" किन्तु भगवान् नारायण की सेवा करने के अनेकानेक लाभ होते हुए भी हम अपनी सेवा को तुच्छ ढंग से गलत दिशा प्रदान कर देते हैं, जिसका वर्णन राजा कुलशेखर यहाँ कर रहे हैं।

कभी कभी व्यक्ति परम सत्य के विषय में निर्विशेष धारणा बना लेता है और यह सोचता है कि तपस्या करके तथा ज्ञान के अनुशीलन द्वारा वह अन्ततः सभी प्रकार से परमेश्वर के तुल्य बन जाएगा। वह सोचता है, "मैं सेवा करना

त्याग करके आत्मा बन जाऊँगा।" भक्ति के मार्ग का यह अवरोध, भगवान् के दास द्वारा भोगे जाने वाले दिव्य आनन्द को न जानने के कारण आता है। यदि हम वास्तव में यह जानते कि हम भगवान् के दास रूप में अपनी स्वाभाविक स्थिति में रहकर कर्म करके कितने सुखी होंगे, तो हम तुरन्त ही भक्ति ग्रहण कर लेते।

इस सन्दर्भ में श्रील प्रभुपाद उस व्यक्ति की कहानी बताते हैं, जिसकी तीव्र अभिलाषा सबसे बड़े व्यक्ति की सेवा करने की थी। वह व्यक्ति एक छोटे से गाँव में पैदा हुआ था, जहाँ वह गाँव के मुखिया की सेवा करने लगा। वह अपने इस सेवा कार्य से अति प्रसन्न था और मुखिया को कई तरह से प्रसन्न करने की चेष्टा करता था। किन्तु एक दिन उस गाँव में एक जिलाधीश आया, तो उसे समझ में आया कि उसका मुखिया तो उस जिलाधीश का सेवक था। तब उसने इस बड़े स्वामी की सेवा करने के लिए अपने स्थानान्तरण के लिए अनुरोध किया। जिलाधीश ने उसे नौकरी में लगा लिया और वह व्यक्ति इस नये स्वामी को तुष्ट रखने के लिए प्रयत्नशील रहने लगा। किन्तु तब उसने देखा कि यह जिलाधीश राजा को कर देता है और उसका अभिवादन करता है। अत: सबसे बड़े आदमी की सेवा करने के इच्छुक उस व्यक्ति ने अपना स्थानान्तरण राजा की सेवा करने के लिए करा लिया। अब वह पूरी तरह तुष्ट था और राजा उसे अपने प्रिय सेवक की तरह मानता था। किन्तु एक दिन उस व्यक्ति ने देखा कि वह राजा किसी तपस्वी की पूजा और सेवा करने के लिए अकेले ही जंगल चला गया। बाद में राजा का यह सेवक उस गुरु के पास पहुँचा और उनसे बोला, "आप पुरुषों में सबसे महान् होंगे, क्योंकि राजा तक आपकी सेवा करता है। कृपा करके मुझे अपना दास बना लीजिये।" उस तपस्वी ने उत्तर दिया कि, "मैं स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर कृष्ण का क्षुद्र दास हूँ।" तब उस सेवक ने पूछा कि वह कृष्ण को कहाँ पा सकेगा? उस गुरु ने उसे निकट के कृष्ण मन्दिर में भेज दिया। वह सेवक उत्कट इच्छा से मन्दिर गया और वहाँ उसने अर्चाविग्रह से प्रत्यक्ष संकेत प्राप्त किया कि उन्होंने उसे अपना दास बना लिया। अन्त में उस महानतम के सेवक को अपना लक्ष्य प्राप्त हो गया। यह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के दास का पद था।

परमेश्वर के साथ पाँच प्रकार के मुख्य *रस* या सम्बन्ध बताये गये हैं,

किन्तु इन सबों का मूलाधार सेवा है। जब महान् योगी दुर्वासा मुनि ने देखा कि भगवान् अपने शुद्ध भक्त अम्बरीष से अत्यधिक प्रसन्न हैं, तो उन्होंने प्रेममयी सेवा की सराहना की। दुर्वासा ने कहा, "जो लोग भगवान् के दास बन चुके हैं, उनके लिए अब प्राप्त करने को बचा ही क्या है?" और *स्तोत्र रत्न* (४३) में श्री यामुनाचार्य कहते हैं—

भवन्तमेवानुचरन्निरन्तरः
प्रशान्त-निःशेषमनोरथान्तरः।
कदाहमैकान्तिकनित्यकिङ्करः
प्रहर्षयिष्यामि सनाथजीवितम्॥

"आपकी निरन्तर सेवा करने से मनुष्य समस्त भौतिक इच्छाओं से मुक्त हो जाता है और पूर्णतया शान्त हो जाता है। वह समय कब आएगा, जब मैं आपका स्थायी नित्य सेवक बनूँगा और ऐसे पूर्ण स्वामी पाकर सदैव प्रसन्नता का अनुभव करूँगा?" (*चैतन्य चरितामृत, मध्य* १.२०६)

एक अन्य कारण जिससे मूर्ख जीव भगवान् की सेवा करने से कतरा सकता है, वह है सामाजिक दबाव। यदि हम भगवान् कृष्ण की सेवा करते हैं, तो अनेक लोग हम पर हँस सकते हैं, किन्तु यदि हम धन, प्रतिष्ठा तथा शक्ति के संसारी देवताओं की सेवा करें, तो हमें व्यापक मान्यता मिलेगी। कुछ लोग गुमनाम बने रहना चाहते हैं और भयभीत रहते हैं कि भगवद्भक्त बनने से वे अत्यधिक चर्चित बन जाएँगे। किन्तु असली भक्त अपने गुरु तथा कृष्ण की सेवा से इतनी अधिक तुष्टि प्राप्त करता है कि उसे दूसरे क्या सोचते हैं, इसकी परवाह नहीं रहती। जैसाकि *श्रीमद्भागवत* (११.२.४०) में कहा गया है—

एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या
जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति गाय-
त्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः॥

"भगवन्नाम का कीर्तन करने से मनुष्य भगवत्प्रेम की अवस्था पर पहुँच जाता है। तब भक्त भगवान् के नित्य दास के रूप में अपने संकल्प (व्रत) में स्थिर हो जाता है और वह धीरे धीरे भगवान् के किसी नाम विशेष तथा रूप विशेष

में अत्यधिक अनुरक्त हो जाता है। जब उसका हृदय भावमय प्रेम में द्रवित होता है, तो वह हँसता है या रोता और चिल्लाता है। कभी कभी वह पागल की तरह नाचता गाता है, क्योंकि उसे लोक चर्चा की परवाह नहीं रहती।"

कृष्णभावनामृत आन्दोलन के भक्तों को प्रारम्भ में हिचक हो सकती है, किन्तु शीघ्र ही वे खुलकर नाम कीर्तन करते तथा नाचते हुए अपनी बाधाओं को भूलना सीख जाते हैं। वे यह सब भगवान् की सेवा के रूप में, समस्त लोगों के कल्याण के लिए करते हैं और उन्हें इसमें आनन्द भी मिलता है। *पद्यावली* (७३) में श्रील रूप गोस्वामी ने सार्वभौम भट्टाचार्य द्वारा लिखित एक श्लोक उद्धृत किया है, जिसमें बताया गया है कि भावाविष्ट भक्ति कैसी हो सकती है और भावाविष्ट भक्त लोक चर्चा से कितना विरक्त रहता है, "बातूनी जनता चाहे जो कह ले, हम उस पर ध्यान नहीं देंगे। कृष्ण प्रेम के मादक पेय के आनन्द से उन्मत्त हुए हम इधर उधर दौड़ते, धरती पर लुढ़कते तथा भावातिरेक में नृत्य करते हुए जीवन का आनन्द लेंगे।"

श्लोक १८

बद्धेनाञ्जलिना नतेन शिरसा गात्रैः सरोमोद्गमैः
कण्ठेन स्वरगद्गदेन नयनेनोद्गीर्णबाष्पाम्बुना।
नित्यं त्वच्चरणारविन्दयुगलध्यानामृतास्वादिना-
मस्माकं सरसीरुहाक्ष सततं सम्पद्यतां जीवितम्॥ १८॥

बद्धेन—बँधी हुई; **अञ्जलिना**—अंजुली से; **नतेन**—झुके हुए; **शिरसा**—अपने सिर से; **गात्रैः**—शरीर के अंगों से; **स**—युक्त; **रोम**—उनके रोओं के; **उद्गमैः**—बाहर फूटने; **कण्ठेन**—कण्ठ या वाणी से; **स्वर**—ध्वनि; **गद्गदेन**—रुद्ध; **नयनेन**—आँखों से; **उद्गीर्ण**—बाहर निकलते; **बाष्प**—आँसुओं के; **अम्बुना**—जल से; **नित्यम्**—निरन्तर; **त्वत्**—आपके; **चरण**—चरण रूपी; **अरविन्द**—कमल; **युगल**—दोनों; **ध्यान**—ध्यान से; **अमृत**—अमृत; **आस्वादिनाम्**—चखने वाले; **अस्माकम्**—हमारे; **सरसी-रुह**—झील में खिले कमल के समान; **अक्ष**—आँखों वाले; **सततम्**—सदैव; **सम्-पद्यताम्**—कृपया आश्वासन दें; **जीवितम्**—हमारी जीविका का।

अनुवाद

हे कमलनयन भगवान्! कृपया हमारे जीवन का भरणपोषण करें,

क्योंकि हम आपके चरणकमलों के ध्यान रूपी अमृत का निरन्तर आस्वाद ले रहे हैं; हमारी हथेलियाँ स्तुति के लिए जुड़ी हुई हैं, हम नतमस्तक हैं, हर्ष में हमारे शरीर के सारे रोम खड़े हैं, भावुकता से हमारी वाणी रुद्ध है और हमारे नेत्रों से आँसू बह रहे हैं।

तात्पर्य

भक्त भगवान् के साकार रूप की प्रशंसा करते हुए उनकी सादर पूजा करने में पूर्ण संतोष प्राप्त करता है। भगवान् की पूजा में एकाग्र रहते समय वैष्णव अपने स्वयं के भरणपोषण के बारे में अधिक चिन्तित नहीं रहता। इसके विपरीत आधुनिक शहरों में, जीविकोपार्जन के लिए अतिशय उद्योग करना पड़ता है, जिसमें मनुष्य की पूरी शक्ति लग जाती है और विश्राम के दिन रविवार को छोड़कर ईश्वर के लिए कोई अन्य समय नहीं बचता है।

वैदिक दर्शन की शिक्षा है कि भगवान् के साथ अपने सम्बन्ध को फिर से जागृत करने को सर्वोच्च प्राथमिकता देनी चाहिए। इसलिए किसी भी विवेकशील व्यक्ति को कभी भी अपने आपको भौतिक कार्यों में इतना अधिक लिप्त नहीं कर देना चाहिए कि वे उसकी सारी शक्ति निचोड़ लें और कृष्ण की सेवा करने की इच्छा का अन्त कर दें। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने, जो महान् वैष्णव होने के साथ साथ भारत सरकार के एक जिम्मेदार न्यायाधीश थे, कहा है कि हमें भौतिक तथा आध्यात्मिक आवश्यकताओं के बीच सन्तुलन बनाना चाहिए, किन्तु साथ ही हमें आध्यात्मिकता पर बल देना चाहिए। दूसरे शब्दों में, हमें 'सादा जीवन उच्च विचार' की भावना के अनुसार अपना जीविकोपार्जन करना चाहिए।

श्रीमद्भागवत (७.१४.६) में नारद मुनि ने ऐसे ही जीवन की संस्तुति महाराज युधिष्ठिर के लिए की—"मानव समाज में बुद्धिमान मनुष्य को अपना कार्यक्रम अत्यन्त सरल बनाना चाहिए। यदि मित्रों, बच्चों, माता-पिता, भाइयों या अन्य किसी के सुझाव आएँ तो उसे यह कहकर कि, "हाँ, सब ठीक है" ऊपरी सहमति जतानी चाहिए और भीतर से ऐसा उबाऊ जीवन न बनने देने का दृढ़-संकल्प रहना चाहिए, जिससे जीवन का उद्देश्य ही पूरा न हो पाये।"

गृहस्थ के लिए आदर्श सेवा अर्चाविग्रह की पूजा है, चाहे वह घर पर की जाये या किसी मन्दिर में। उसे वेदी बुहारते, भोजन पकाते या अर्चाविग्रह

को वस्त्र पहनाते हुए भगवान् के चरणकमलों के ध्यान रूपी अमृत का आस्वादन करना चाहिए, जैसाकि राजा कुलशेखर ने इस स्तुति में कहा है। प्रभावी बने रहने के लिए उसे समय बचाने के भाव में पूजा नहीं करनी चाहिए। कभी कभी मायावादी लोग वैष्णवों की तरह अर्चाविग्रहों की पूजा करते प्रतीत होते हैं, किन्तु उनमें काफी अन्तर रहता है, क्योंकि मायावादी यह नहीं सोचते कि अर्चाविग्रह-पूजा भक्ति का शाश्वत लक्ष्य है। प्रत्युत वे सोचते हैं कि अर्चाविग्रह की पूजा से ध्यानपरक भाव उत्पन्न करने में सहायक हो सकता है, जिससे मनुष्य अन्ततः अनुभव करने लगेगा कि भगवान् स्वयं माया हैं। तब पूजा करने वाला निर्विशेष ब्रह्म के साथ तदाकार हो जाता है। न तो परम भगवान्, न ही उनके शुद्ध भक्त इस प्रकार की कुछ समय तक रहने वाली भक्ति को स्वीकार करते हैं।

श्रीमद्भागवत तथा गुरु-शिष्य परम्परा में आनेवाले सभी गुरुजन हमें आगाह करते हैं कि अर्चाविग्रह पूजा को कभी भी मूर्ति पूजा न समझें। अर्चाविग्रह सांकेतिक सृष्टि नहीं अपितु साक्षात् कृष्ण हैं, जो धातु, पत्थर, लकड़ी आदि के रूप में प्रकट होते हैं, जिससे उनके भक्तों के साथ भक्तिमय आदान-प्रदान में सुविधा हो।

अर्चाविग्रह-पूजा का सबसे बड़ा गुण यह है कि वह हमें ध्यान करने के लिए ठोस आकृति प्रदान करती है। इस तरह अर्चाविग्रह-पूजा, *श्रीमद्भागवत* जैसे प्रामाणिक शास्त्रों में प्राप्त भगवान् के विवरणों के साथ मिलकर, भक्त को अपना मन भगवान् के स्वरूप में लीन करने में समर्थ बनाती है। यहाँ पर *भागवत* में प्राप्त भगवान् के स्वरूप के अनेक विवरणों में से केवल दो ही दिये जा रहे हैं :

"भगवान् के चरणकमल महान् योगियों के कमल जैसे हृदयों के गुच्छों पर रखे हुए हैं। उनके वक्षस्थल पर कौस्तुभमणि है, जिस पर सुन्दर बछड़े का चित्र खुदा है और उनके कन्धों पर अन्य मणियाँ हैं। उनके दिव्य शरीर पर ताजे फूलों की माला पड़ी है।" (*भागवत* २.२.१०)

"कृष्ण का मुखमण्डल आभूषणों से, जैसे कि मकर की आकृतिवाले कुण्डलों से अलंकृत है। उनके कान सुन्दर हैं, कपोल चमकीले हैं और उनका हास्ययुक्त मुख हर एक के लिए आकर्षक है। जो कोई भी कृष्ण को देखता

है, वह मानो उत्सव देख रहा हो। उनके मुख तथा शरीर देखने पर हर एक को तृप्त करने वाले हैं, किन्तु भक्तगण स्रष्टा से इसलिए अप्रसन्न हैं, क्योंकि उनकी आँखों के झपकने से बाधा उत्पन्न होती है।" (*भागवत* ९.२४.६५)

श्लोक १९

यत्कृष्णप्रणिपातधूलिधवलं तद्वर्ष्म तद्वै शिर-
स्ते नेत्रे तमसोज्झिते सुरुचिरे याभ्यां हरिर्दृश्यते।
सा बुद्धिर्विमलेन्दुशङ्खधवला या माधवध्यायिनी
साजिह्वामृतवर्षिणी प्रतिपदं या स्तौति नारायणम्॥ १९॥

यत्—जो; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण को; **प्रणिपात**—शीश झुकाने से; **धूलि**—धूल से; **धवलम्**—सफेद रंगवाले; **तत्**—वह; **वर्ष्म**—सर्वोच्च; **तत्**—वह; **वै**—निस्सन्देह; **शिरः**—सिर; **ते**—वे दोनों; **नेत्रे**—आँखें; **तमसा**—अंधकार से; **उज्झिते**—परित्यक्त; **सु**—अत्यन्त; **रुचिरे**—आकर्षक; **याभ्याम्**—जिससे; **हरिः**—भगवान् हरि; **दृश्यते**—देखे जाते हैं; **सा**—वह; **बुद्धिः**—बुद्धि; **विमला**—विमल, स्वच्छ; **इन्दु**—चन्द्रमा सदृश; **शङ्ख**—या शंख सदृश; **धवला**—श्वेत चमकवाली; **या**—जो; **माधव-ध्यायिनी**—भगवान् माधव का ध्यान करने वाली; **सा**—वह; **जिह्वा**—जीभ; **अमृत**—अमृत; **वर्षिणी**—वर्षा करने वाली; **प्रति-पदम्**—पग पग पर; **या**—जो; **स्तौति**—प्रशंसा करती है; **नारायणम्**—भगवान् नारायण की।

अनुवाद

जो सिर भगवान् कृष्ण के सामने झुकने से लगी धूल से धवल है, वही सर्वोच्च है। वे आँखें सर्वाधिक सुन्दर हैं, जिन्होंने भगवान् हरि का दर्शन करने के बाद अन्धकार को त्याग दिया है। वह बुद्धि जो भगवान् माधव पर एकाग्र रहती है, वह उसी तरह विमल है, जिस तरह चन्द्रमा या शंख का उज्ज्वल तेज होता है। और वह जीभ अमृत वर्षा करती है, जो निरन्तर भगवान् नारायण की महिमा का गान करती है।

तात्पर्य

भगवान् कृष्ण की भक्तिमय सेवा मनुष्य की सारी इन्द्रियों को क्रमशः आध्यात्मिक तथा सुन्दर बनाती है। सामान्य लोग यह नहीं देख पाते कि किस तरह वैष्णव में परिवर्तन हो रहे हैं, क्योंकि केवल भक्त ही अन्य भक्तों के

वास्तविक सौन्दर्य की सराहना कर सकता है। इसलिए श्रील रूप गोस्वामी ने अपने *उपदेशामृत* (५) में हमें चेतावनी दी है कि भक्त का मूल्यांकन बाह्यतः न किया जाये। "मनुष्य को चाहिए कि भक्त के निम्नकुल में जन्म लेने, कुरूप मुख वाला होने, विकलांग शरीर वाला होने या रुग्ण अथवा क्षीण शरीर वाला होने जैसी बातों की अनदेखी कर दे। सामान्य दृष्टि में ऐसी अपूर्णताएँ शुद्ध भक्त के शरीर में प्रतीत हो सकती हैं, किन्तु ऐसे दोषों के बावजूद शुद्ध भक्त का शरीर कभी भी दूषित नहीं हो सकता। वह तो उस गंगाजल के समान होता है, जिसमें वर्षा के समय अनेक बुलबुले, झाग तथा मिट्टी रहती है, किन्तु फिर भी वह शुद्ध रहता है और उसमें स्नान करने वालों को शुद्ध करने में सक्षम होता है।"

किन्तु प्रायः भक्तिमय सेवा की रूपान्तरकारी शक्ति नाटकीय होती है। श्रील प्रभुपाद कभी कभी बताते थे कि पहले पहल जब वे अपने अनेक भावी शिष्यों से मिले, तो वे किस तरह गन्दे, उद्विग्न हिप्पी थे। किन्तु ज्योंही उन्होंने कृष्णभावनामृत को अंगीकार किया, वे वैकुण्ठ से आये तेजस्वी देवदूत जैसे बन गये।

भगवान् अपनी लीलाओं के दौरान कभी कभी स्वयं अपने भक्तों के शरीर में नाटकीय परिवर्तन उत्पन्न करते हैं। जब भगवान् कृष्ण मथुरा नगरी में प्रविष्ट हुए, तो उनको एक कुबड़ी युवती मिली, जिसने उन्हें वह चन्दन का लेप लगाया जो राजा कंस के लिए तैयार किया गया था और भगवान् ने उसकी इस सेवा के बदले उसके कुबड़े शरीर को सीधा कर दिया और उसे एक सुन्दर युवती बना दिया। इसी तरह श्रीचैतन्य महाप्रभु ने वासुदेव कोढ़ी को तुरन्त स्वस्थ कर दिया था। अन्तिम शारीरिक परिवर्तन तब आता है, जब भक्त अपना *स्वरूप* अर्थात् आध्यात्मिक शरीर प्राप्त कर लेता है और वैकुण्ठ में भगवान् की पूजा करने के लिए आध्यात्मिक जगत में प्रवेश करता है।

भगवान् को नमस्कार करते समय भक्त धूल में अपने आपको विनीत करके सुन्दर बनता है। इसके विपरीत घमंडी व्यक्ति, जो अपनी तथाकथित सुन्दरता से विपरीत लिंग को प्रभावित करने का प्रयास करता है, वह धूल में झुकने से झिझकता है। किन्तु राजा कुलशेखर इसे एक प्रकार का सौन्दर्य-उपचार बताते हैं। असली सौन्दर्य का अर्थ है, वह जो भगवान् कृष्ण को अच्छा

लगे।

भक्त की आँखें भगवान् कृष्ण के सर्वाधिक सुन्दर रूप को देखकर सुन्दर बनती हैं। भगवान् कृष्ण के तेज का प्रतिबिम्ब भक्ति में लगे योगियों की आँखों में चमकता है। जिन लोगों ने श्रील प्रभुपाद को देखा है, उन्होंने उनकी आँखों में यह तेज देखा है।

यहाँ पर जिस विमल बुद्धि का उल्लेख हुआ है, वह समस्त सन्देहों से परिष्कृत भगवान् की शुद्ध श्रद्धा से पूरित होती है। जिस किसी ने भी ऐसी शुद्ध आध्यात्मिक बुद्धि पा ली है, वह शान्त होता है और वह अपनी तथा अन्यों की सारी समस्याओं को हल कर सकता है। इसलिए भक्तों की बुद्धि की तुलना चन्द्रमा से की गई है, जिसकी शीतल तापहर सुन्दरता को संसार भर में प्रत्येक व्यक्ति द्वारा देखा और सराहा जाता है। इसी तरह जो व्यक्ति भगवान् को महिमामंडित करता है, उसकी जीभ से चाँदनी जैसे अमृत की वर्षा होती है, जो सबों को चांदनी की तरह बिना किसी भेदभाव के उपलब्ध होती है।

श्लोक २०

जिह्वे कीर्तय केशवं मुररिपुं चेतो भज श्रीधरं
पाणिद्वन्द्व समर्चयाच्युतकथाः श्रोत्रद्वय त्वं शृणु।
कृष्णं लोकय लोचनद्वय हरेर्गच्छाङ्घ्रियुग्मालयं
जिघ्र घ्राण मुकुन्दपादतुलसीं मूर्धन्नमाधोक्षजम्॥ २०॥

जिह्वे—हे जीभ; **कीर्तय**—कीर्तन करो; **केशवम्**—भगवान् केशव का; **मुर-रिपुम्**—मुर के शत्रु; **चेतः**—हे मन; **भज**—भजन करो; **श्री-धरम्**—श्री (लक्ष्मी) के स्वामी; **पाणि-द्वन्द्व**—अरे दोनों हाथों; **समर्चय**—सेवा करो; **अच्युत-कथाः**—भगवान् अच्युत की कथाएँ; **श्रोत्र-द्वय**—हे दोनों कानों; **त्वम्**—तुम; **शृणु**—सुनो; **कृष्णम्**—कृष्ण को; **लोकय**—देखो; **लोचन-द्वय**—हे दोनों नेत्रों; **हरेः**—भगवान् हरि के; **गच्छ**—जाओ; **अङ्घ्रि-युग्म**—अरे दोनों पाँवों; **आलयम्**—वासस्थान को; **जिघ्र**—सूँघो; **घ्राण**—अरी नाक; **मुकुन्द**—भगवान् मुकुन्द के; **पाद**—पाँवों पर; **तुलसीम्**—तुलसी की मंजरियाँ; **मूर्धन्**—हे सिर; **नम**—नमस्कार करो; **अधोक्षजम्**—भगवान् अधोक्षज को।

अनुवाद

हे जीभ, तुम भगवान् केशव के यश का गुणगान करो। हे मन, तुम मुर के शत्रु की पूजा करो। हे हाथो, तुम श्रीपति की सेवा करो। हे कानो, तुम भगवान् अच्युत की कथाएँ सुनो। हे आँखो, तुम श्रीकृष्ण को निहारो। हे पाँवो, तुम भगवान् हरि के मन्दिर जाओ। हे नाक, तुम भगवान् मुकुन्द के चरणों पर चढ़ी तुलसी-मंजरियों को सूँघो। हे सिर, तुम भगवान् अधोक्षज को नमन करो।

तात्पर्य

यहाँ पर कवि अपनी प्रत्येक इन्द्रिय से भगवान् की सेवा करने में सहयोग करने का आदेश देते हैं। आत्मा इन्द्रियों से बढ़कर है, अतः यह उचित ही है कि वह उन्हें आदेश दे :

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥

"कर्मेन्द्रियाँ जड़ पदार्थ से श्रेष्ठ हैं, मन इन्द्रियों से बढ़कर है, बुद्धि मन से भी अधिक उच्च है और वह आत्मा तो बुद्धि से भी बढ़कर है।" (*भगवद्गीता* ३.४२)

मुकुन्दमाला स्तोत्र के श्लोक १९ तथा २० से *श्रीमद्भागवत* (२.३.२०-२४) में शौनक ऋषि द्वारा कहे गये अनेक श्लोक स्मरण हो आते हैं, "जिसने पुरुषोत्तम भगवान् के शौर्य और अद्भुत कार्यों की कथाएँ नहीं सुनी हैं तथा जिसने भगवान् विषयक गीतों को गाया या उनका उच्च स्वर से उच्चारण नहीं किया है, उसके श्रवण रंध्र मानो साँप के बिल हैं और जीभ मानों मेंढक की जीभ है। शरीर का ऊपरी भाग भले ही रेशमी पगड़ी से सज्जित क्यों न हो, किन्तु यदि मुक्ति के दाता भगवान् हरि के समक्ष वह सिर झुकाया नहीं जाता, तो वह भार के तुल्य है। इसी प्रकार चमचमाती चूड़ियों से अलंकृत होने पर भी यदि हाथ पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा में नहीं लगे रहते हैं, तो वे मृत व्यक्ति के हाथों के तुल्य हैं। जो आँखें भगवान् विष्णु की प्रतीकात्मक अभिव्यक्तियों (उनके अर्चाविग्रह रूप) को नहीं देखतीं, वे मोर के पंख में अंकित आँखों के समान हैं और जो पाँव तीर्थस्थानों की यात्रा नहीं करते (जहाँ भगवान् का

स्मरण किया जाता है) वे वृक्ष के तनों, ठूँठ, जैसे माने जाते हैं। जिस व्यक्ति ने कभी भी अपने मस्तक पर भगवान् के शुद्ध भक्त की चरणधूलि धारण नहीं की, वह निश्चित रूप से शव तुल्य है तथा जिस व्यक्ति ने भगवान् के चरणकमलों पर चढ़ी तुलसी-मंजरियों की सुगन्धि का अनुभव न किया हो, वह श्वास लेते हुए भी मृतक तुल्य है। निश्चय ही वह हृदय फौलाद का बना है, जो एकाग्र होकर भगवान् के पवित्र नाम का उच्चारण करने पर भी नहीं बदलता और हर्षित नहीं होता है, यद्यपि ऐसी अवस्था में आँखों में आँसू भर आते हैं और शरीर का रोम रोम खड़ा हो जाता है।"

हमारी प्रत्येक इन्द्रिय, भक्ति में हमारा सहयोग कर सकती है या अवरोध उत्पन्न कर सकती है। यदि हम किसी भी एक इन्द्रिय को खुली छूट दे देते हैं, तो वह बुरी तरह से मन को विपथ कर सकती है, बिल्कुल उसी तरह जिस तरह सागर में वायु का झोंका बिना लंगर वाले जहाज को बहा ले जा सकता है। जिस तरह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को इन्द्रियाँ हैं, उसी तरह हमारी भी हैं और हमारी पूर्णता अपनी सारी इन्द्रियों से हृषीकेश (इन्द्रियों के स्वामी) की सेवा करने में निहित है। हम अपनी इन्द्रियों को चाहे कृष्ण की सेवा में लगाएँ या माया की सेवा में, इसका चुनाव कुलशेखर तथा शौनक ऋषि द्वारा कहे गये श्लोकों में पूरी तरह स्पष्ट है।

उदाहरणार्थ, हमारा निष्ठापूर्ण कीर्तन परमेश्वर को प्रसन्न कर सकता है और उनकी कृपा को जागृत कर सकता है, या हमारे भौतिकतावादी गीत मेंढक के टर्राने के समान हो सकते हैं, जिससे भक्षी सर्प अर्थात् मृत्यु आकृष्ट होता है। इसी तरह से हम अपने सिर को भगवान् के समक्ष झुकाकर अपने आपको विभूषित कर सकते हैं या आभूषणों तथा दर्प से लदा हुआ वही सिर हमें घसीटकर जन्म-मृत्यु के सागर में डाल सकता है। उच्च सामाजिक पद पर स्थित व्यक्ति प्राय: गर्व के कारण मन्दिर में अर्चाविग्रह के समक्ष नतमस्तक नहीं होना चाहता। उस दशा में वह अपने ही दर्प के द्वारा नीचे खींचा जायेगा, जिस तरह समुद्र में गिरने पर मनुष्य अपने ही भारी वस्त्रों तथा शिरोभूषा के भार से नीचे चला जाता है। श्रीचैतन्य महाप्रभु के जीवनकाल में राजा प्रतापरुद्र ने भगवान् जगन्नाथ के रथ के समक्ष मार्ग को बुहारने की निम्न सेवा सम्पन्न करके आदर्श जगनायक का उदाहरण प्रस्तुत किया। इस तरह उन्होंने

सर्वशक्तिमान के प्रति अपनी अधीनता प्रदर्शित की।

मनुष्य भगवान् के भक्तों की सेवा करके भगवान् की इन्द्रियों की सर्वोत्तम सेवा कर सकता है। श्रील प्रभुपाद कहते हैं, "कृष्ण अपने शुद्ध तथा मुक्त भक्तों की सम्पत्ति हैं, अतः केवल भक्तगण ही अन्य भक्त को कृष्ण अर्पण कर सकते हैं। कृष्ण कभी भी प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त नहीं होते।" (*भागवत* २.३.२३ तात्पर्य) अतः शिष्य को चाहिए कि अपने गुरु की प्रसन्नता के लिए सभी प्रकार की सेवा करने में अपनी इन्द्रियों का उपयोग करे।

हमें न केवल अपनी इन्द्रियों को अपितु अपने मन को भी भगवान् की सेवा में लगाना चाहिए। कुछ भी हो, मन ही शरीर के सारे अंगों को कर्म करने के लिए प्रोत्साहित करता है। अतः कृष्ण का चिन्तन ही सारी भक्ति का आधार है। *भगवद्गीता* (९.३४) में भगवान् आदेश देते हैं—*मन्मना भव मद्भक्तः*—"मेरे बारे में चिन्तन करो और मेरे भक्त बनो।" कृष्ण के कीर्तन तथा स्मरण में स्थिर मन हृदय को परिवर्तित करेगा, जो बद्धात्मा को शुद्ध भक्त में बदल देगा। इसलिए शुद्ध भक्त वह है, जिसके तन, मन तथा वाणी सभी कृष्ण भक्ति में लीन हों, जिससे माया के लिए कोई स्थान न रह जाये।

श्लोक २१

आम्नायाभ्यसनान्यरण्यरुदितं वेदव्रतान्यन्वहं
मेदश्छेदफलानि पूर्तविधयः सर्वं हुतं भस्मनि।
तीर्थानामवगाहनानि च गजस्नानं विना यत्पद-
द्वन्द्वाम्भोरुहसंस्मृतिं विजयते देवः स नारायणः॥ २१॥

आम्नाय—प्रामाणिक शास्त्रों के; **अभ्यसनानि**—अध्ययन; **अरण्य**—जंगल में; **रुदितम्**—रोदन, विलाप; **वेद**—वैदिक; **व्रतानि**—तप के व्रत; **अनु-अहम्**—नित्यप्रति; **मेदः**—चर्बी का; **छेद**—विलगाव; **फलानि**—जिसका परिणाम; **पूर्त-विधयः**—संस्तुत पुण्यकर्म; **सर्वम्**—समस्त; **हुतम्**—आहुतियाँ; **भस्मनि**—राख में; **तीर्थानाम्**—तीर्थस्थलों पर; **अवगाहनानि**—स्नान के कार्य; **च**—तथा; **गज**—हाथी का; **स्नानम्**—स्नान; **विना**—बिना, रहित; **यत्**—जिसका; **पद**—पैर; **द्वन्द्व**—जोड़ी; **अम्बोरुह**—कमल; **संस्मृतिम्**—स्मरण; **विजयते**—विजयी हों; **देवः**—भगवान्; **सः**—वे; **नारायणः**—नारायण।

तपस्या करने से क्या लाभ? यदि कोई यह समझ सकता है कि भगवान् हरि सर्वव्यापक हैं, तो फिर कठोर तपस्या करने से क्या लाभ? और यदि कोई यह नहीं समझ सकता कि भगवान् सर्वव्यापक हैं, तो भी कठिन तपस्या का क्या लाभ?"

सफल भक्त भगवान् के विषय में प्रत्येक सम्भाव्य परिस्थिति में सोचने में सक्षम होता है। कृष्ण का चिन्तन करना ऐसी वस्तु नहीं है, जिसे केवल अपने नित्यप्रति के कार्य से निवृत्त होकर ही करना चाहिए, जैसाकि एकान्त ध्यान में होता है। प्रत्युत भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को आदेश दिया, "मेरा स्मरण करो और युद्ध करो।" दूसरे शब्दों में, हमें अपना नैत्यिक कर्म करने के साथ ही साथ कृष्ण का चिन्तन करना चाहिए। श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा कृष्ण के नामों का सदैव कीर्तन करने का दिया गया आदेश भी वही आदेश है, जो इस तरह दिया गया है कि हम प्रसन्नतापूर्वक तथा आसानी से उसका अनुसरण कर सकें। उन्नत अवस्था में भक्त स्वयंस्फूर्त प्रेमवश सहज ही कृष्ण का स्मरण करता है। प्रारम्भिक तथा बीच की अवस्थाओं में भी मनुष्य भगवान् के शुद्ध भक्त के निर्देशन में नाम कीर्तन करके तथा अपने कार्यों को उनकी सेवा की ओर मोड़कर कृष्ण के विषय में अहर्निश चिन्तन कर सकता है।

श्लोक २२

मदन परिहर स्थितिं मदीये
मनसि मुकुन्दपदारविन्दधाम्नि।
हरनयनकृशानुना कृशोऽसि
स्मरसि न चक्रपराक्रमं मुरारेः॥ २२॥

मदन—हे कामदेव; **परिहर**—छोड़ दो; **स्थितिम्**—अपना आवास; **मदीये**—मेरे; **मनसि**—मन में; **मुकुन्द**—भगवान् मुकुन्द; **पद-अरविन्द**—चरणकमलों के; **धाम्नि**—धाम में; **हर**—शिवजी के; **नयन**—नेत्र से; **कृशानुना**—अग्नि से; **कृशः**—भस्मीभूत; **असि**—हो गये हो; **स्मरसि न**—स्मरण नहीं करते हो; **चक्र**—चक्र की; **पराक्रमम्**—प्रबल क्षमता; **मुरा-अरेः**—मुर के शत्रु के।

अनुवाद

हे कामदेव, तुम मेरे मन में बने अपने आवास को छोड़ दो, क्योंकि

अनुवाद

भगवान् नारायण की जय हो! उनके चरणकमलों के स्मरण के बिना शास्त्रों का पाठ यों ही अरण्यरोदन जैसा है, वेदों द्वारा आदिष्ट कठिन व्रतों का नियमित रूप से पालन करना शरीर का मोटापा कम करने की विधि के अलावा और कुछ नहीं है। निर्दिष्ट पुण्य कर्मों को सम्पन्न करना मानो राख में आहुतियाँ डालना है और विभिन्न पवित्र स्थानों में स्नान करना गजस्नान के समान है।

तात्पर्य

समस्त आध्यात्मिक विधियों का लक्ष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का स्मरण करना है। भगवान् कृष्ण का क्षणभर का स्मरण सबसे बड़ी सम्पदा है और क्षणभर का उनका विस्मरण सबसे बड़ी क्षति है। अत: इस श्लोक में जिन महत्त्वपूर्ण धार्मिक कर्तव्यों का उल्लेख हुआ है, वे भी व्यर्थ हो जाते हैं यदि उनसे कृष्ण का स्मरण नहीं हो पाता। शास्त्रों का अध्ययन, मन्दिरों में जाना, व्रत रखना—इनमें से भक्तों के लिए कोई भी न तो आवश्यक है, नहीं छोड़ने लायक है। इसलिए, यदि वे धर्म के नाम पर ठीक से सम्पन्न नहीं किये जाते, तो राजा कुलशेखर उनकी भर्त्सना करते हैं। उदाहरणार्थ, परम सत्य के साकार आध्यात्मिक रूप का उपहास करने वाले निर्विशेषवादियों के अध्ययन तथा ध्यान व्यर्थ हैं। अन्य व्यर्थ के कार्यों में राजनैतिक उद्देश्य से सम्पन्न की जानेवाली तपस्या या भौतिक वरदान प्राप्त करने के उद्देश्य से की गई देवपूजा सम्मिलित है। त्यागी सूखकर काँटा हो सकता है, किन्तु वह भगवान् को प्रसन्न नहीं कर पाता; अत: वह स्वयं भी मन में प्रसन्न नहीं हो पाएगा। तो फिर उसकी तपस्या का क्या लाभ? जैसाकि *नारद पञ्चरात्र* में कहा गया है—

आराधितो यदि हरिस्तपसा तत: किम्
नाराधितो यदि हरिस्तपसा तत: किम्।
अन्तर्बहिर्यदि हरिस्तपसा तत: किम्
नान्तर्बहिर्यदि हरिस्तपसा तत: किम्॥

"यदि कोई भगवान् हरि की पूजा करता है, तो फिर कठोर तपस्या करने से क्या लाभ? और यदि कोई भगवान् हरि की पूजा नहीं कर रहा, तो फिर कठोर

तपस्या करने से क्या लाभ? यदि कोई यह समझ सकता है कि भगवान् हरि सर्वव्यापक हैं, तो फिर कठोर तपस्या करने से क्या लाभ? और यदि कोई यह नहीं समझ सकता कि भगवान् सर्वव्यापक हैं, तो भी कठिन तपस्या का क्या लाभ?"

सफल भक्त भगवान् के विषय में प्रत्येक सम्भाव्य परिस्थिति में सोचने में सक्षम होता है। कृष्ण का चिन्तन करना ऐसी वस्तु नहीं है, जिसे केवल अपने नित्यप्रति के कार्य से निवृत्त होकर ही करना चाहिए, जैसाकि एकान्त ध्यान में होता है। प्रत्युत भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को आदेश दिया, "मेरा स्मरण करो और युद्ध करो।" दूसरे शब्दों में, हमें अपना नैत्यिक कर्म करने के साथ ही साथ कृष्ण का चिन्तन करना चाहिए। श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा कृष्ण के नामों का सदैव कीर्तन करने का दिया गया आदेश भी वही आदेश है, जो इस तरह दिया गया है कि हम प्रसन्नतापूर्वक तथा आसानी से उसका अनुसरण कर सकें। उन्नत अवस्था में भक्त स्वयंस्फूर्त प्रेमवश सहज ही कृष्ण का स्मरण करता है। प्रारम्भिक तथा बीच की अवस्थाओं में भी मनुष्य भगवान् के शुद्ध भक्त के निर्देशन में नाम कीर्तन करके तथा अपने कार्यों को उनकी सेवा की ओर मोड़कर कृष्ण के विषय में अहर्निश चिन्तन कर सकता है।

श्लोक २२

मदन परिहर स्थितिं मदीये
मनसि मुकुन्दपदारविन्दधाम्नि।
हरनयनकृशानुना कृशोऽसि
स्मरसि न चक्रपराक्रमं मुरारेः॥ २२॥

मदन—हे कामदेव; **परिहर**—छोड़ दो; **स्थितिम्**—अपना आवास; **मदीये**—मेरे; **मनसि**—मन में; **मुकुन्द**—भगवान् मुकुन्द; **पद-अरविन्द**—चरणकमलों के; **धाम्नि**—धाम में; **हर**—शिवजी के; **नयन**—नेत्र से; **कृशानुना**—अग्नि से; **कृशः**—भस्मीभूत; **असि**—हो गये हो; **स्मरसि न**—स्मरण नहीं करते हो; **चक्र**—चक्र की; **पराक्रमम्**—प्रबल क्षमता; **मुरा-अरेः**—मुर के शत्रु के।

अनुवाद

हे कामदेव, तुम मेरे मन में बने अपने आवास को छोड़ दो, क्योंकि

अब वह भगवान् मुकुन्द के चरणकमलों का निवास स्थान है। तुम पहले ही शिव की प्रचण्ड चितवन से भस्म किये जा चुके हो, तो फिर तुम भगवान् मुरारी के चक्र की शक्ति को क्यों भूल गये?

तात्पर्य

यह उस कामदेव को साहसिक चुनौती है, जो महत्त्वाकांक्षी अध्यात्मवादियों समेत हर एक को पराजित करने वाला है। जैसाकि भगवान् कपिल ने अपनी माता से कहा था, "आप स्त्री रूप में मेरी माया की प्रबल शक्ति को समझने का प्रयास करें—जो अपनी भृकुटि के संचलन से ही बड़े से बड़े विश्व-विजेताओं को अपनी पकड़ में रखती है।" (*भागवत* ३.३१.३८)

भक्त इस चुनौती के भाव से कामदेव को ललकार सकता है, क्योंकि भक्त निरन्तर उन भगवान् कृष्ण का ध्यान करता रहता है, जो कामदेव के प्रभाव को नष्ट कर देते हैं। यहाँ पर राजा कुलशेखर कामदेव को चेतावनी दे रहे हैं कि वह उनके मन से चला जाये या फिर दूसरी बार अपने विनाश का संकट मोल ले। यहाँ पर उस घटना का सन्दर्भ दिया गया है, जिसमें कामदेव ने शिवजी के मन में कामवासना उत्पन्न करने के लिए तीर चलाना चाहा था। शिवजी ने अपनी चितवन से प्रतिघात करके कामदेव को भस्म कर दिया। कामदेव को इस घटना से सीख लेनी चाहिए। यदि नहीं, तो राजा कुलशेखर उसे आगाह करते हैं कि भगवान् कृष्ण को अपने चक्र से कामदेव को नष्ट करने में तथा अपने भक्त के मन को कामवासना से मुक्त करने में कोई कष्ट नहीं होगा।

कामदेव का एक नाम *मदन* भी है, जिसका अर्थ है, "आकृष्ट करने वाला।" किन्तु भगवान् कृष्ण *मदनमोहन* अर्थात् "कामदेव को मोहित करने वाले" कहलाते हैं। दूसरे शब्दों में, कृष्ण दिव्य रूप से इतने आकर्षक हैं कि जो भी उन पर अपने मन को लीन करता है, उसे कामवासना नहीं सताती। यही नहीं, भगवान् कृष्ण की प्रिया श्रीमती राधारानी *मदनमोहन मोहिनी* कहलाती है, क्योंकि वही अकेली कृष्ण को भी मोहित कर सकती हैं।

विश्व के सभी धर्मों में तपस्वियों ने त्याग का अभ्यास किया है और कामदेव सदा ही उनकी परीक्षा लेकर उन्हें कष्ट पहुँचाता रहा है। प्रायः शुद्धि के सारे प्रयासों के बावजूद, मनुष्य मृत्यु के समय स्त्री का (अथवा स्त्री पुरुष का) चिन्तन करता है। तब उसे जन्म-मृत्यु के चक्र में पड़कर पुनः आकृष्ट

होकर, भौतिक जीवन के कष्टों को पुनः सहन करना पड़ता है। यहाँ तक कि शक्तिशाली योगी विश्वामित्र ने मेनका के सौन्दर्य पर मोहित होकर, उससे समागम करके शकुन्तला को जन्म दिया।

किन्तु भक्तों ने कामदेव से बचने के लिए अच्युत शरण खोज ली है—कृष्ण के सौन्दर्य में लीन होना। जो व्यक्ति कृष्ण के सौन्दर्य पर मोहित है, उसे कामवासना नहीं सता पाती। श्री यामुनाचार्य का गीत है—

यदवधि मम चेतः कृष्णपादारविन्दे
नवनवरसधामन्युद्यतं रन्तुमासीत्।
तदवधि बत नारीसङ्गमे स्मर्यमाने
भवति मुखविकारः सुष्ठु निष्ठीवनं च॥

"चूँकि मेरा मन भगवान् कृष्ण के चरणकमलों की सेवा में संलग्न हो चुका है और मुझे इस सेवा में नित्य नवीन दिव्य आनन्द मिलता रहता है, अतः जब भी मैं किसी स्त्री के साथ संभोग के बारे में सोचता हूँ, तो मेरा मन उधर से तुरन्त मुड़ जाता है और मैं इस विचार पर थू-थू करता हूँ।"

श्लोक २३

नाथे धातरि भोगिभोगशयने नारायणे माधवे
देवे देवकिनन्दने सुरवरे चक्रायुधे शार्ङ्गिणि।
लीलाशेषजगत्प्रपञ्चजठरे विश्वेश्वरे श्रीधरे
गोविन्दे कुरु चित्तवृत्तिमचलामन्यैस्तु किं वर्तनैः॥ २३॥

नाथे—तुम्हारे स्वामी; **धातरि**—तथा पालक पर; **भोगि**—सर्प (अनन्त शेष) के; **भोग**—शरीर पर; **शयने**—शयन करने वाले; **नारायणे माधवे**—नारायण तथा माधव नाम से विख्यात; **देवे**—भगवान्; **देवकि-नन्दने**—देवकी के लाड़ले पुत्र; **सुर-वरे**—देवताओं के नायक; **चक्र-आयुधे**—चक्र धारण करने वाले; **शार्ङ्ग-गिणि**—शार्ङ्ग धनुष के स्वामी; **लीला**—लीला के रूप में; **अशेष**—असीम; **जगत्**—ब्रह्माण्ड; **प्रपञ्च**—प्राकट्य; **जठरे**—उदर में; **विश्व**—ब्रह्माण्डों के; **ईश्वरे**—नियन्ता; **श्रीधरे**—श्री के स्वामी; **गोविन्दे**—भगवान् गोविन्द में; **कुरु**—रखो; **चित्त**—मन के; **वृत्तिम्**—व्यापार; **अचलाम्**—विचलित हुए बिना; **अन्यैः**—अन्य; **तु**—इसके विपरीत; **किम्**—क्या लाभ है; **वर्तनैः**—व्यापारों से।

अनुवाद

हे मनुष्यो, अपने एकमात्र स्वामी तथा पालनकर्ता भगवान् का चिन्तन करो, जो नारायण तथा माधव कहलाते हैं और जो अनन्त नाग के शरीर पर शयन करते हैं। वे देवकी के लाड़ले पुत्र, देवताओं के नायक तथा गौवों के स्वामी हैं। वे शंख तथा शार्ङ्ग धनुष धारण करते हैं। वे लक्ष्मी के पति हैं तथा उन समस्त ब्रह्माण्डों के नियन्ता हैं, जिन्हें लीला के रूप में वे अपने उदर से प्रकट करते हैं। तुम उनके अतिरिक्त अन्य किसी के बारे में सोचकर क्या पाओगे?

तात्पर्य

पिछले श्लोकों में राजा कुलशेखर ने अपने मन को कृष्ण के चरणकमलों में स्थिर रहने का निर्देश दिया है और अब वे अपने पाठकों को निर्देश देते हैं कि वे भी अपने मन को उन पर लगाएँ। वे भगवान् के असंख्य नामों में से कुछ का उल्लेख करते हैं, जो उनके गुणों तथा लीलाओं को बताने वाले हैं। भक्तगण अपने विशिष्ट *रस* अर्थात् भगवान् के साथ प्रेममय सम्बन्ध के अनुसार भगवान् के विशिष्ट रूप की सेवा करने के प्रति आकृष्ट होते हैं। मनुष्य चाहे तो ईश्वर के किसी भी प्रामाणिक रूप की सेवा कर सकता है और भगवद्धाम जाने के वैसे ही लाभ को प्राप्त कर सकता है। भीष्म पितामह ने इस संसार से प्रयाण करते समय भगवान् के साथ वीररस वाले पक्ष का स्मरण करके स्तुति की। यह स्तुति करके कि उनका मन कृष्ण के पास जाएगा, उन्होंने मन में कृष्ण की वीरतापूर्ण लीलाओं की समीक्षा की, "पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण, जो मोक्षदाता हैं, मेरे परम गन्तव्य हों। युद्धक्षेत्र में उन्होंने मुझ पर आक्रमण किया, मानो मेरे तीक्ष्ण बाणों से हुए घावों के कारण क्रुद्ध हों। उनकी ढाल तितर-बितर हो गई और उनका शरीर घावों के रक्त से सन गया था।" (*भागवत* १.९.३८)

इस श्लोक में राजा कुलशेखर हमें *समाधि* प्राप्त करने अथवा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का एकाग्र चिन्तन करने का आदेश देते हैं। योगीजन अष्टांग योग विधि में सिद्ध होकर समाधि प्राप्त करने का प्रयास करते हैं, किन्तु यह अत्यन्त कठिन है। जब कृष्ण ने अर्जुन को इस विधि की संस्तुति की, तो उसने

उत्तर दिया, "हे मधुसूदन, आपने जिस योग पद्धति का संक्षिप्त वर्णन किया है, वह मुझे अत्यन्त अव्यावहारिक तथा असाध्य प्रतीत होती है, क्योंकि मन चंचल तथा अस्थिर है... (मन को वश में करना) वायु को वश में करने से अधिक कठिन है।" (*भगवद्गीता* ६.३३-३४)

इसके विपरीत, भक्तियोग इतना आसान है कि कोई भी व्यक्ति इसका सफल अभ्यास कर सकता है। जो निष्ठावान् व्यक्ति कृष्ण के नामों का कीर्तन और श्रवण करता है और स्वरूपसिद्ध भक्तों द्वारा सुनाई गई उनकी लीलाओं तथा गुणों को भी सुनता है, वह एकाग्रता की चरम अवस्था तक इतनी आसानी से पहुँच सकता है, जो अन्य योग विधियों के अनुयायियों को अज्ञात है।

तो राजा कुलशेखर कृष्ण पर मन को स्थिर करने के अतिरिक्त अन्य सारे कार्यों को व्यर्थ क्यों मानते हैं? क्योंकि अन्य सारे कार्य तथा विचार क्षणिक हैं, जिनसे भौतिक कष्टों का चिरस्थायी बन्धन प्राप्त होता है। श्रील प्रभुपाद ने भगवद्गीता के अपने भाष्य में लिखा है, "यदि कोई व्यक्ति कृष्णभावनामृत में नहीं है, तो उसके मन के लिए कोई अन्तिम लक्ष्य नहीं हो सकता।" भाग्य के फेर से तथा कर्म के निर्दयतापूर्ण व्यवहार से जो क्षण शुभ व प्रसन्नता का दिखायी देता है, वह अगले पल दुखद घटना में बदल सकता है। परमेश्वर की ही तरह आत्मा *सच्चिदानन्द* (शाश्वत, आनन्द तथा ज्ञान से पूर्ण) है; फलतः उसे तभी पूरी तरह तुष्ट किया जा सकता है, जब वह भक्ति में भगवान् से युक्त हो। हमें भीष्मदेव के साथ मिलकर प्रार्थना करनी चाहिए, "उनके चरणकमल सदा-सदा मेरे आकर्षण के लक्ष्य बने रहें।"

श्लोक २४

मा द्राक्षं क्षीणपुण्यान्क्षणमपि भवतो भक्तिहीनान्पदाब्जे
मा श्रौषं श्राव्यबन्धं तव चरितमपास्यान्यदाख्यानजातम्।
मा स्मार्षं माधव त्वामपि भुवनपते चेतसापह्नवानान्
मा भूवं त्वत्सपर्याव्यतिकररहितो जन्मजन्मान्तरेऽपि॥ २४॥

मा द्राक्षम्—मैं न देखूँ; **क्षीण**—विहीन; **पुण्यान्**—पुण्यों से; **क्षणम्**—एक क्षण; **अपि**—भी; **भवतः**—आपकी; **भक्ति**—भक्ति; **हीनान्**—से रहित; **पद-अब्जे**—

चरणकमल में; **मा श्रौषम्**—सुनूँ नहीं; **श्राव्य**—सुनने योग्य; **बन्धम्**—लेख, रचनाएँ; **तव**—आपकी; **चरितम्**—लीलाएँ; **अपास्य**—एक ओर रखकर; **अन्यत्**—दूसरी; **आख्यान**—कहानियों का; **जातम्**—कथाएँ; **मा स्मार्षम्**—स्मरण नहीं करूँ; **माधव**—हे माधव; **त्वाम्**—आपको; **अपि**—निस्सन्देह; **भुवन**—संसार के; **पते**—हे स्वामी; **चेतसा**—मन से; **अपह्नवानान्**—जो लोग बचना चाहते हैं; **मा भूवम्**—मैं नहीं; **त्वत्**—आपके; **सपर्या**—निजी सेवा के लिए; **व्यतिकर**—अवसर; **रहितः**—से रहित; **जन्म-जन्म-अन्तरे**—बार बार जन्मों में; **अपि**—भी।

अनुवाद

हे माधव, आप उन लोगों पर मेरी दृष्टि भी न जाने दें, जिनके पुण्यकर्म इतने क्षीण हो चुके हैं कि उन्हें आपके चरणकमलों में कोई अनुरक्ति नहीं है। कृपया आप मुझे अपनी लीलाओं के बारे में सुनने से ध्यान न हटाने दें, जिससे कि मैं अन्य कथाओं में रुचि लेने लगूँ। हे ब्रह्माण्ड के स्वामी! मैं उन लोगों पर ध्यान न दूँ, जो आपके विषय में चिन्तन करने से दूर रहना चाहते हैं और आप मुझे कभी भी जन्म-जन्मान्तर अपनी तुच्छ से भी तुच्छ सेवा करने में असमर्थ न बनने दें।

तात्पर्य

राजा कुलशेखर की प्रार्थनाएँ अन्य वैष्णवों की भाँति अनन्य तीव्रता से विशेषित हैं। कोई आलोचक कह सकता है कि उनकी प्रवृत्ति ग्रीक वाङ्मय में प्रशंसित "स्वर्णिम माध्य" अर्थात् "दो विरूद्ध बाहरी छोर के बीच की राह" को समन्वित नहीं करती। आलोचक यह पूछ सकता है, "इसमें क्या बुराई है कि कभी कृष्ण की सेवा की जाये और कभी कभी इन्द्रियतृप्ति हेतु स्वयं आनन्द उठाया जाये? क्यों इतना कट्टर हुआ जाये कि किसी अपवित्र व्यक्ति पर दृष्टिपात करने से भी बचा जाये? और केवल भगवान् विष्णु के अर्चाविग्रह पर ही ध्यान क्यों केन्द्रित किया जाये?" ऐसे प्रश्नों का उत्तर केवल तर्क द्वारा नहीं दिया जा सकता। भक्त की एकान्तिक तीव्रता प्रेम से निर्देशित होती है। किसी प्रेमी से अपनी प्रेमिका के स्थान पर अन्य किसी में रुचि लेने के लिए कहना अनुचित होगा।

किन्तु कृष्ण-भक्ति कोई सामान्य प्रेमी की उन्मत्तता नहीं है। श्रीकृष्ण परम सत्य हैं, वे सर्वोपरि विद्या के स्रोत हैं, फलतः भगवद्गीता में वे अपनी अनन्य

भक्ति की शिक्षा देते हुए कहते हैं—

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप॥

"हे अर्जुन, केवल अनन्य भक्ति द्वारा मुझे उस रूप में समझा जा सकता है, जिस रूप में मैं तुम्हारे समक्ष खड़ा हूँ और इसी प्रकार मेरा साक्षात् दर्शन भी किया जा सकता है। केवल इसी विधि से तुम मुझे समझने के रहस्य को पा सकते हो।" (*भगवद्गीता* ११.५४) यही नहीं, सामान्य भौतिकतावादी 'प्रेम' के विपरीत कृष्ण की अनन्य भक्ति प्रेमी के अतिरिक्त अन्य हर एक के प्रति उदासीनता नहीं उत्पन्न करती। जहाँ इस श्लोक में राजा कुलशेखर अभक्तों की संगति से बचने की अपनी वैध इच्छा प्रकट करते हैं, वहीं एक शुद्ध भक्त, दयावश प्रचार करने के हेतु अभक्तों पर भी दृष्टि डालेगा और उन पर ध्यान देगा। जब भक्त पूरी तरह से कृष्ण में लीन हो जाता है, तो वह सारे विश्व को भगवान् की सृष्टि के रूप में और हर वस्तु को उनकी शक्तियों के अंश-रूप में देखता है। भगवान् की एकान्तिक भक्ति से भक्त *महात्मा* बन जाता है, जो सारे जीवों को कृष्ण से उनके सम्बन्ध का स्मरण कराते हुए उनके लाभ के लिए कर्म करता है।

राजा कुलशेखर कृष्णभावनामृत की जिस अवस्था की कामना करते हैं, वह कृत्रिम नहीं, अपितु जीव की मूल अवस्था है। इसलिए वे भगवान् से अपनी कृपा प्रदान करने के लिए पुकार लगा रहे हैं, जिससे वे समाधि की अपनी मूल, अविचलित, आनन्दमय अवस्था को पुनः प्राप्त कर सकें। बद्ध-अवस्था में जीवात्मा आवश्यकताओं, कष्टों तथा भोगों के नाम पर असंख्य बाधाओं से मोहग्रस्त रहते हैं, इसीलिए भक्त इन बाधाओं को दूर करने के लिए प्रार्थना करता है। विपथ हुए भौतिकतावादी को भक्ति की भाषा कठोर लग सकती है, किन्तु यह वस्तुतः ज्ञान और संतुलन प्राप्त करने के लिए प्रार्थना है, परम स्वामी के नित्य दास द्वारा नित्य सेवाभाव में वापसी के लिए प्रार्थना है।

श्लोक २५

मज्जन्मनः फलमिदं मधुकैटभारे
मत्प्रार्थनीयमदनुग्रह एष एव।

त्वद्भृत्यभृत्यपरिचारकभृत्यभृत्य-
भृत्यस्य भृत्य इति मां स्मर लोकनाथ ॥ २५ ॥

मत्—मेरे; **जन्मनः**—जन्म का; **फलम्**—फल; **इदम्**—यहाँ; **मधु-कैटभ-अरे**—हे मधु तथा कैटभ के शत्रु; **मत्**—मेरे द्वारा; **प्रार्थनीय**—प्रार्थना किया गया; **मत्**—मुझ पर; **अनुग्रहः**—दया; **एषः**—यह; **एव**—निश्चय ही; **त्वत्**—आपका; **भृत्य-भृत्य**—दास के दास का; **परिचारक**—दास का; **भृत्य-भृत्य-भृत्यस्य**—दास के दास के दास का; **भृत्यः**—दास; **इति**—इस प्रकार; **माम्**—मुझको; **स्मर**—चिन्तन करो; **लोक**—संसार के; **नाथ**—हे स्वामी।

अनुवाद

हे मधु तथा कैटभ के शत्रु, हे ब्रह्माण्ड के स्वामी, मेरे जीवन की पूर्णता तथा मुझ पर आप जो सर्वाधिक अभिलषित दया दिखा सकते हैं, वह यही होगी कि आप मुझे अपने दास के दास के दास के दास के दास के दास का दास मानें।

तात्पर्य

इस श्लोक में भृत्य शब्द का सात बार आना आश्चर्यजनक है। कुलशेखर भगवान् के जितने दासों की सेवा करना चाहते हैं, लगभग उन सबका चित्रण हम कर सकते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण के प्रत्यक्ष दासों में श्रीमती राधारानी या भगवान् बलराम तथा अन्य समस्त गोपियाँ तथा गोपगण हैं। कुछ गोपियाँ तथा गोप प्रत्यक्ष दासों के सहचर हैं। इन सहचरियों में मंजरियाँ सम्मिलित हैं, जो कृष्ण सेवा में राधारानी की सहायता करती हैं और जो, राधारानी के अनुसार, अपने से अधिक आनन्दित होती हैं। वैष्णव गुरुजन, विशेषतया माधुर्यरस में स्थित गोपियों की सेवा करते हैं और इनमें से प्रत्येक गुरु की सेवा उनके शिष्यों द्वारा की जाती है। आधुनिक युग में भगवान् कृष्ण श्रीचैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट हुए, जिनकी प्रत्यक्ष सेवा वृन्दावन के छः गोस्वामियों द्वारा की गई और इन गोस्वामियों ने भी शिष्य बनाये—यथा कृष्णदास कविराज जिन्होंने भी शिष्य बनाये। श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद श्रीचैतन्य सम्प्रदाय की ग्यारहवीं पीढ़ी में हुए। अतः *त्वद् भृत्यभृत्य परिचारक-भृत्य-भृत्य-भृत्यस्य भृत्यः* वाक्य न केवल मनोहर पद्य है, अपितु *परम्परा* का सही-सही विवरण भी है : प्रत्येक भक्त अपने पूर्ववर्ती भगवद्भक्त की सेवा कर रहा है।

अपने आपको समस्त वैष्णवों का दास मानना और उनकी चरणरज मस्तक में धारण करना अपना मूल्य घटाना नहीं है; यह तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण को प्रसन्न करने की सर्वोत्तम विधि है। प्रह्लाद महाराज ने अपने पिता से कहा था कि जब तक कोई विनीत होकर वैष्णवों की सेवा नहीं करता तथा उनके चरणरज से 'स्नान' नहीं कर जाता, तब तक वह कृष्ण-भक्ति कभी प्राप्त नहीं कर सकता।

राजा कुलशेखर कहते हैं कि यदि भगवान् उनकी यह प्रार्थना स्वीकार करते हैं, तो यह उनकी सर्वाधिक प्रेम-कृपा का प्रदर्शन होगा। लेकिन वे *इतनी* बार प्रत्यक्ष सेवा से हटाए जाने के लिए क्यों याचना करते हैं? वे क्यों नहीं सहज ही भगवान् की सीधी सेवा की याचना करते? इसका एक कारण यह है कि भगवान् अपने दासों की सेवा के बिना प्रत्यक्ष सेवा स्वीकार नहीं करते। *आदि पुराण* में कृष्ण कहते हैं—

ये मे भक्तजनाः पार्थ न मे भक्ताश्च ते जनाः।
मद्भक्तानां च ये भक्तास्ते मे भक्ततमाः मताः॥

"हे पार्थ, जो यह कहते हैं कि वे मेरे भक्त हैं, वे मेरे भक्त नहीं हैं, परन्तु जो अपने आपको मेरे भक्तों का भक्त कहते हैं, वे ही वास्तव में मेरे भक्त हैं।"

शुद्ध भक्त का मुख्य उद्देश्य अपने आराध्य भगवान् को प्रसन्न करना है और बुद्धिमान वैष्णव जानता है कि भगवान् को जो कर्म सर्वाधिक प्रसन्न करने वाला है—वह है भगवान् के प्रामाणिक दासों के दास का भी दास होना। चूँकि भगवान् को अपने दास अति प्रिय हैं, इसलिए कोई व्यक्ति उन दासों को प्रसन्न करके ही उन्हें सबसे अधिक प्रसन्न कर सकता है। श्रील प्रभुपाद ने इस विधि की तुलना किसी सामान्य व्यक्ति द्वारा किसी महान् व्यक्ति को प्रसन्न करने के प्रयास से की है। सामान्यतया एक सामान्य व्यक्ति महान् व्यक्ति के पास भी पहुँच नहीं सकता, किन्तु यदि सौभाग्यवश वह उस महापुरुष के पालतू कुत्ते को प्रसन्न कर लेता है, तब वह तुरन्त उस विख्यात व्यक्ति की कृपा प्राप्त कर सकता है।

जिस दूसरे कारण से भक्त अन्य भक्तों के माध्यम से सेवा करना चाहता है, वह उसका विनीत स्वभाव है। वह अपने आपको आगे न धकेलकर निम्न स्थान ग्रहण करना चाहता है। वह सभी भक्तों की सेवा करना चाहता है, यहाँ

तक कि वह उस स्थान की पूजा करना चाहता है, जहाँ जहाँ वे जा चुके हैं। शुद्ध भक्त जल्दबाजी में यह कभी नहीं मान लेता कि वह भगवान् के अन्तरंगियों में से एक है। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने हमें सलाह दी है कि यदि हम सचमुच भगवन्नाम का निरन्तर कीर्तन करना चाहते हैं, तो हमें स्वयं को "मार्ग के तिनके से भी तुच्छ, झूठी प्रतिष्ठा की इच्छा से रहित तथा अन्यों को आदर देने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए।" हमें न केवल मान्य भक्तों की अपितु समस्त जीवों की सेवा उन्हें कृष्णभावनामृत प्रदान करके करनी चाहिए।

श्लोक २६

तत्त्वं ब्रुवाणानि परं परस्तान्
मधु क्षरन्तीव मुदावहानि।
प्रावर्तय प्राञ्जलिरस्मि जिह्वे
नामानि नारायणगोचराणि॥ २६॥

तत्त्वम्—सत्य को; **ब्रुवाणानि**—बोलते हैं; **परम्**—परम; **परस्तात्**—प्रत्येक श्रेष्ठ वस्तु से परे; **मधु**—शहद; **क्षरन्ति**—टपकाते हैं; **इव**—मानो; **मुदा**—प्रसन्नता; **अवहानि**—लाते हैं; **प्रावर्तय**—गाकर सुनाओ; **प्राञ्जलिः**—हाथ जोड़कर; **अस्मि**—मैं हूँ; **जिह्वे**—हे जीभ; **नामानि**—नामों को; **नारायण-गोचराणि**—भगवान् नारायण सूचक।

अनुवाद

मेरी प्रिय जीभ, मैं हाथ जोड़कर तुम्हारे समक्ष खड़ा हूँ और तुम से भगवान् नारायण के नाम गाकर सुनाने के लिए प्रार्थना करता हूँ। परम पूर्ण सत्य का बखान करने वाले ये नाम अति आनन्द प्रदान करते हैं, मानो उनसे शहद टपक रहा हो।

तात्पर्य

शुरू शुरू में हमारी जीभ भगवान् के नामों का कीर्तन करने में अनिच्छुक हो सकती है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर नवजिज्ञासु जपकर्ता का वर्णन करते हुए कहते हैं, "कुछ केवल भार वहन करते हैं, बाकी अन्य वस्तुओं के असली महत्त्व को समझ पाते हैं।" श्रील रूप गोस्वामी भी नौसिखिये की स्थिति को

समझते हैं और उसे कीर्तन करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं, भले ही यह शुष्क तथा अरुचिकर लगे : "कृष्ण का पवित्र नाम, चरित्र, लीलाएँ तथा कार्यकलाप मिश्री के समान दिव्य रूप से मधुर हैं। यद्यपि मनुष्य की जीभ अविद्या रूपी पीलिया से ग्रस्त किसी भी मधुर वस्तु का स्वाद नहीं ले पाती, किन्तु यह आश्चर्य की बात है कि यदि कोई व्यक्ति प्रतिदिन सावधान होकर इन मधुर नामों का केवल कीर्तन करता है, तो उसकी जीभ में एक स्वाभाविक स्वाद जागृत हो जाता है और उसका रोग धीरे धीरे समूल नष्ट हो जाता है।" (*उपदेशामृत* ७)

हम नामाचार्य हरिदास ठाकुर के दृष्टान्त को हृदयंगम कर सकते हैं। यद्यपि वे मुसलमान परिवार में जन्मे थे, किन्तु उन्हें पवित्र नाम की कृपा प्राप्त हुई और वे निरन्तर हरे कृष्ण मन्त्र का जप करने लगे। इस तरह उन्होंने भगवत्प्रेम की सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त की। निस्सन्देह, वे इतनी उच्चकोटि के भक्त थे कि स्वयं श्रीचैतन्य महाप्रभु ने उनकी प्रशंसा की, "मानो वे पाँच मुखों से बोल रहे हों।" हम हरिदास ठाकुर का अनुकरण तो नहीं कर सकते, किन्तु यह जानना प्रेरणाप्रद है कि कोई भले ही निम्न कुल में जन्मा क्यों न हो, वह पवित्र नाम की कृपा से सारे अवरोधों पर विजय प्राप्त कर सकता है। यही नहीं, हरिदास ठाकुर सदैव अत्यन्त विनीत बने रहे और अपनी भौतिक अयोग्यताओं से सदैव अवगत रहना चाहते थे। इसलिए वे श्रीचैतन्य महाप्रभु की निकट की संगति में नहीं रहना चाहते थे और उन्होंने जगन्नाथ पुरी के मन्दिर में भी प्रवेश करने की चेष्टा नहीं की। जो कोई भी पवित्र नाम का अमृतपान करना और निरन्तर जप करना चाहता है, उसके लिए हरिदास ठाकुर की भाँति विनीत भाव का अनुशीलन करना नितान्त आवश्यक है।

पवित्र नाम के भीतर का मधु कृष्ण का स्मरण है। इसीलिए नाम जप से आनन्द प्राप्त होता है। जैसाकि श्रील प्रभुपाद ने लिखा है, "जो व्यक्ति कृष्ण नामों का जितना अधिक जप करता है, वह उतना ही अधिक अनुरक्त होता है।" अत: कृष्ण का श्रवण तथा कीर्तन सेवा का शुभारम्भ है। अगली विधि है स्मरण—हमेशा कृष्ण को याद रखना। जब व्यक्ति श्रवण तथा कीर्तन में सिद्ध हो जाता है, तो वह कृष्ण का सदैव स्मरण करने लगेगा। इस तृतीय अवस्था में वह महानतम योगी बन जाता है। (कृष्णभक्ति की अनुपम भेंट;

प्रकरण ७) चाहे हम अभी भक्ति की प्रारम्भिक अवस्था में हों, अविद्या से ग्रस्त हों, या कि हम 'वस्तुओं के वास्तविक मूल्य' को समझना प्रारम्भ कर रहे हों, हमें चाहिए कि हम भगवन्नाम का जप करते रहें और उन प्रामाणिक भक्तों के पद्यों का आनन्द लेते रहें, जो हमें पवित्र नाम में समाहित मधु के बारे में बताते हैं, जैसाकि श्रील सनातन गोस्वामी के एक श्लोक में मिलता है—

जयति जयति नामानन्दरूपं मुरारे-
र्विरमितनिजधर्मध्यानपूजादियत्नम्।
कथमपि सकृदात्तं मुक्तिदं प्राणिनां यत्
परम मृतमेकं जीवनं भूषणं मे॥

"श्रीकृष्ण के सर्व-आनन्दमय पवित्र नाम की जय हो, जो भक्त से सारे पारम्परिक धार्मिक कार्यों, ध्यान और पूजा को छुड़वा देता है। यदि कोई जीव येनकेनप्रकारेण एक बार भी नामोच्चार करता है, तो पवित्र नाम उसे मुक्ति प्रदान करता है। कृष्ण का पवित्र नाम सर्वोत्कृष्ट अमृत है। यह तो मेरा जीवन और मेरा एक मात्र धन है।" (*बृहद्भागवतामृत* १.९)

श्लोक २७

नमामि नारायणपादपङ्कजं
करोमि नारायणपूजनं सदा।
वदामि नारायणनामनिर्मलं
स्मरामि नारायणतत्त्वमव्ययम्॥ २७॥

नमामि—मैं नमस्कार करता हूँ; **नारायण**—भगवान् नारायण के; **पाद-पङ्कजम्**—चरणकमलों को; **करोमि**—मैं करता हूँ; **नारायण**—भगवान् नारायण की; **पूजनम्**—पूजा; **सदा**—सदैव; **वदामि**—मैं बोलता हूँ; **नारायण**—भगवान् नारायण का; **नाम**—नाम; **निर्मलम्**—दूषण रहित; **स्मरामि**—मैं स्मरण करता हूँ; **नारायण**—भगवान् नारायण का; **तत्त्वम्**—सत्य; **अव्ययम्**—अच्युत, न चुकने वाला।

अनुवाद

मैं प्रतिक्षण शीश झुकाकर नारायण के चरणकमलों को नमस्कार करता हूँ, नारायण की पूजा करता हूँ। मैं नारायण के शुद्ध नाम का

उच्चारण करता हूँ और नारायण के अचूक सत्य का ध्यान करता हूँ।

तात्पर्य

कोई आश्चर्य कर सकता है कि कहीं यह अतिशयोक्ति या काल्पनिक अभिव्यक्ति तो नहीं है? इसका उत्तर है, नहीं। यह श्लोक शुद्ध भक्त राजा कुलशेखर के व्यावहारिक अनुभव को बताता है। यही नहीं, भगवान् की विविध सेवाओं में ऐसी तल्लीनता केवल राजा कुलशेखर के लिए ही नहीं, अपितु समस्त निष्ठावान् भक्तों के लिए सम्भव है। भगवान् की सेवा में इस तरह चौबीसों घंटे की संलग्नता तुरन्त सम्भव नहीं होती, किन्तु हम *भगवद्गीता* (१२.९) में भगवान् कृष्ण के इन शब्दों से प्रोत्साहन प्राप्त कर सकते हैं, "यदि तुम अविचल भाव से अपने मन को मुझ पर स्थिर नहीं कर सकते, तो फिर भक्तियोग के विधि-विधानों का पालन करो। इस तरह तुममें मुझे प्राप्त करने की चाह उत्पन्न होगी।"

सर्वप्रथम राजा कुलशेखर *नमामि* कहते हैं, जिसका अर्थ है, "मैं नमस्कार करता हूँ।" इससे शारीरिक तथा मानसिक रूप से भगवान् के सामने नतमस्तक होना सूचित होता है। इस तरह चैतन्य महाप्रभु के शब्दों में अपने सम्पूर्ण शरीर को, "भगवान् के चरणकमलों पर परमाणु-तुल्य" चढ़ाकर उनकी प्रार्थना करना है। हम भगवान् को इसीलिए नमस्कार करते हैं, क्योंकि हम उनकी अचिन्त्य महानता को पहचानते हैं और हम अपनी तुच्छता तथा उन पर निर्भरता की जागृति के लिए प्रार्थना करते हैं। हमें भक्ति के विधि-विधानों का पालन करने के अलावा धार्मिक कार्यों की यान्त्रिकता से परे, अपने परिवार के साथ तथा अपने धार्मिक संस्थान में निभाये जाने वाले कार्यों से परे जाने का अवसर निकालने और यह स्मरण करने का प्रयत्न करना चाहिए कि हम पुरुषोत्तम भगवान् के तथा सारे जीवों के वास्तव में नित्य दास हैं।

कृष्णभावनामृत के प्रचारक को चाहिए कि वह अपने सन्देश ग्रहणकर्ताओं को मन ही मन नमस्कार करे। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने अपने अनुयायियों को सलाह दी थी—*यारे देख तारे कह 'कृष्ण' उपदेश*—तुम जिससे भी मिलो, उसे कृष्ण का उपदेश दो। (*चैतन्य चरितामृत मध्य* ७.१२८) इस आदेश का पालन करके हम समस्त जीवों के भीतर स्थित भगवान् को अपना विनम्र नमस्कार करते हैं।

राजा कुलशेखर कहते हैं कि वे प्रत्येक क्षण नारायण नाम का उच्चारण करते रहते हैं। श्रील प्रभुपाद ने भी अपने शिष्यों को ऐसा ही करने को कहा, "हम अपने कृष्णभावनामृत आन्दोलन में अपने अनुयायियों को जपमाला पर हरे कृष्ण मन्त्र का निरन्तर जप करने की शिक्षा दे रहे हैं। यहाँ तक कि जो ऐसा करने के अभ्यस्त नहीं हैं, उन्हें कम से कम सोलह माला जप करने की सलाह दी जाती है, जिससे वे प्रशिक्षित हो सकें... *सदा* का अर्थ है 'सदैव'। हरिदास ठाकुर कहते हैं *निरन्तर नाम लेओ*—हरे कृष्ण मन्त्र का अनवरत जप करो।" (*चैतन्य-चरितामृत अन्त्य* ३.१३९ तात्पर्य)

हर समय जप करने के लिए मनुष्य को श्रीचैतन्य महाप्रभु के इस उपदेश को मानना होता है—"अपने आपको सड़क के तिनके से भी तुच्छ समझो और दूसरों का आदर करो।" इस तरह से भगवन्नाम का उच्चारण तथा नमस्कार एकसाथ किया जा सकता है। जो व्यक्ति ईश्वर तथा उनके सारे जीवों को नमस्कार नहीं करता, जो अपनी भौतिक उपलब्धियों पर गर्वित रहता है, वह निष्ठापूर्वक भगवान् को पुकार नहीं सकता। यदि कदाचित् वह भगवन्नाम का जप करता भी है, तो वह ऐसा आत्म-संतुष्टि से करता है। जो भक्त कृष्ण पर आश्रित होने की अपनी वास्तविक स्थिति को समझता है, वह कृष्ण के नाम को उसी तरह पुकारता है, जिस तरह बालक अपनी माता को पुकारता है। जैसाकि पिछले श्लोकों में कहा गया है, ऐसा जपकर्ता पवित्र नाम में अद्वितीय अमृत का आस्वाद पाता है।

राजा कुलशेखर नारायण के अव्यय सत्य को भी व्यक्त करते हैं। भगवतत्त्व का *सिद्धान्त* शास्त्रों से, गुरु से तथा प्रामाणिक साधुओं से प्राप्त होता है। मनुष्य को चाहिए कि वह नियमित रूप से *श्रीमद्भागवत, भगवद्गीता, चैतन्यचरितामृत* तथा ऐसे ही अन्य वैष्णव ग्रन्थों को पढ़े और सुने और स्वरूपसिद्ध भक्तों के मुख से उनकी व्याख्याओं को भी सुने। जो व्यक्ति ऐसा करता है, वह सारी घटनाओं को अन्ततः कृष्णभावनाभावित दृष्टि से देख सकेगा। यह *शास्त्रचक्षुर्* अर्थात् शास्त्रीय ज्ञान से प्राप्त दृष्टि द्वारा जगत को देखना कहलाता है।

इस प्रकार राजा कुलशेखर ऐसे चार क्रियाकलाप बतला रहे हैं, जिनमें विचलित हुए बिना हमारा सारा समय लगना चाहिए। ये हैं—भगवान् को

नमस्कार करना, उनकी पूजा करना, उनके पवित्र नामों का जप करना तथा उनसे सम्बद्ध अन्तिम सत्यों के बारे में चिन्तन करना। प्रह्लाद महाराज ने *श्रीमद्भागवत* के सातवें स्कंध (७.५.२३) में भक्ति की जिन नौ विधियों का वर्णन किया है, उनमें ये चारों क्रियायें सम्मिलित हैं। इसलिए कोई चाहे यहाँ पर राजा कुलशेखर द्वारा वर्णित क्रियाओं को सम्पन्न करे या उनमें प्रह्लाद महाराज द्वारा संस्तुत विधियों को भी मिला ले—यथा प्रार्थना करना, अर्चाविग्रह पूजन, भगवान् का सखा बनना इत्यादि—तो वह इस तरह एक विधि से दूसरी में, एक विचार से दूसरे विचार में जा सकता है, फिर भी वह भगवान् नारायण की अन्तरंगा शक्ति में स्थित रह सकता है। इस तरह का पूर्ण कृष्णभावनाभावित व्यक्ति मृत्यु के समय आध्यात्मिक लोक को चला जाएगा, जहाँ वह इसके बाद भगवान् तथा उनके अन्तरंग संगियों की आनन्दमयी संगति में और अधिक सेवा करेगा।

श्लोक २८-२९

श्रीनाथ नारायण वासुदेव
श्रीकृष्ण भक्तप्रिय चक्रपाणे।
श्रीपद्मनाभाच्युत कैटभारे
श्रीराम पद्माक्ष हरे मुरारे॥ २८॥

अनन्त वैकुण्ठ मुकुन्द कृष्ण
गोविन्द दामोदर माधवेति।
वक्तुं समर्थोऽपि न वक्ति कश्चिद्
अहो जनानां व्यसनाभिमुख्यम्॥ २९॥

श्रीनाथ—हे लक्ष्मीपति; **नारायण**—हे समस्त जीवों के आश्रय; **वासुदेव**—हे परम स्वामी; **श्रीकृष्ण**—हे देवकी-पुत्र कृष्ण; **भक्त**—अपने भक्तों पर; **प्रिय**—अत्यधिक कृपालु; **चक्र**—चक्र को; **पाणे**—हाथ में धारण करने वाले; **श्री**—दैवी; **पद्म-नाभ**—जिसकी नाभि से कमल निकला हुआ है, ऐसे आप; **अच्युत**—हे अच्युत भगवान्; **कैटभ-अरे**—हे कैटभ दैत्य के शत्रु; **श्री-राम**—हे श्रीराम; **पद्म-अक्ष**—कमल सदृश नेत्रों वाले; **हरे**—हे संकट को हरने वाले; **मुर-अरे**—हे मुर दैत्य के शत्रु;

अनन्त—असीम; **वैकुण्ठ**—हे वैकुण्ठाधिपति; **मुकुन्द**—हे मोक्षदाता; **कृष्ण**—हे कृष्ण; **गोविन्द**—हे गोविन्द, हे गौवों के स्वामी; **दामोदर**—अपनी माता द्वारा रस्सी से बाँधे जाकर दण्डित किये जाने वाले; **माधव**—हे परम देवी के स्वामी; **इस**—इस प्रकार; **वक्तुम्**—कह पाने में; **समर्थः**—सक्षम; **अपि**—यद्यपि; **न वक्ति**—कोई नहीं कहता; **कश्चित्**—कुछ भी; **अहो**—आह; **जनानाम्**—लोगों के; **व्यसन**—संकट के प्रति; **अभिमुख्यम्**—उन्मुख।

अनुवाद

हे श्रीनाथ, नारायण, वासुदेव, दिव्य कृष्ण! हे अपने भक्तों के दयालु मित्र! हे चक्रपाणि, पद्मनाभ, अच्युत, कैटभारि, राम, पद्माक्ष, हरि, मुरारी! हे अनन्त, वैकुण्ठ, मुकुन्द, कृष्ण, गोविन्द, दामोदर, माधव! यद्यपि सारे लोग आपको (यों) पुकार सकते हैं किन्तु वे चुप रहते हैं। देखो न, वे अपने ही संकट के लिए कैसे उत्सुक हैं!

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् असंख्य अचिन्त्य गुण प्रकट करने वाले हैं और उनके भक्त इन गुणों को स्मरण करने तथा उनका गुणानुवाद करने के लिए उन्हें असंख्य नामों से पुकारते हैं। ये नाम भगवान् की शक्ति से पूर्णतया समन्वित होते हैं। जैसाकि श्रीचैतन्य महाप्रभु ने उनके *शिक्षाष्टक* (२) में कहा है—*नम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्तिस्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः*—"हे प्रभु, हे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्! आपके पवित्र नाम में जीव के लिए सारा सौभाग्य है, इसलिए आपके कई नाम हैं यथा कृष्ण, गोविन्द आदि जिनके द्वारा आप अपना विस्तार करते हैं। आपने इन नामों में अपनी सारी शक्तियाँ समा रखी हैं और उन नामों का जप करने के लिए कोई कठोर नियम नहीं हैं।"

श्रीयामुनाचार्य, जो राजा कुलशेखर के ही सम्प्रदाय में प्रकट हुए थे, एक स्वरचित श्लोक में पश्चाताप करते हैं कि यद्यपि भगवान् अपने अनेक नामों तथा गुणों से पूर्णतया प्राप्य हैं, किन्तु अभक्तगण उनके पास तक नहीं जाते और इस तरह वे अपना विनाश स्वयं बुलाते है। *भगवद्गीता* (७.१५) में भगवान् उन अनेक तरह के लोगों को संक्षेप में बताते हैं, जो उनकी शरण में नहीं जाते—

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः॥

"जो निपट मूर्ख हैं, जो मनुष्यों में अधम हैं, जिनका ज्ञान मोह द्वारा हर लिया गया है तथा जो असुरों की नास्तिक प्रकृति को धारण करने वाले हैं, ऐसे दुर्जन मेरी शरण ग्रहण नहीं करते।"

कृष्णकृपामूर्ति श्रील प्रभुपाद ने कृष्णभावनामृत आन्दोलन का प्रसार करने के लिए अपने विश्वव्यापी भ्रमण के समय देखा कि अधिकांश लोग दिव्य ज्ञान का—'क' 'ख' 'ग'—भी नहीं समझ सकते हैं। आध्यात्मिक ज्ञान का पहला पाठ यह है कि मनुष्य शरीर नहीं, अपितु आत्मा है; अतः आत्मा ही वास्तव में महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। किन्तु पाश्चात्य देशों में विद्वानों के बीच भी लोग आत्मा के स्वभाव को नहीं समझते हैं; अतएव वे मनुष्य जीवन के असली उद्देश्य को समझ नहीं पाते, जो कि ईश्वर को समझना है। जो व्यक्ति आत्मा को नहीं समझ सकता, वह ईश्वर को भी नहीं समझ सकता, क्योंकि आत्मा ईश्वर का ही सूक्ष्म कण है। यदि वह इस कण को नहीं समझ सकता, तो वह सम्पूर्ण को नहीं समझ सकता। अधिकांश लोग आत्मा को समझने का प्रयास करने के बजाय उसकी उपेक्षा करते हैं, या इससे भी बुरा यह है कि वे उसके अस्तित्व को ही पूरी तरह नकार देते हैं। और ईशविहीन (नास्तिक) वैज्ञानिक यह सिद्धान्त प्रतिपादित करके लोगों की अज्ञानता को प्रोत्साहित करते हैं कि जीवन की उत्पत्ति पदार्थ से होती है। श्रील प्रभुपाद ने इस नास्तिक सिद्धान्त की निन्दा की है और इस तथ्य को सामने रखा कि इसे सिद्ध नहीं किया जा सकता। इस तरह उन्होंने कहा कि सभ्य देश, विशेषतया पश्चिम के देश, मूर्खों के स्वर्ग में रह रहे हैं।

राजा कुलशेखर की टिप्पणी है कि हम ईश्वर तथा उनके अनेक नामों एवं कार्यों की उपेक्षा करके अपने आपको संकट में डालते हैं। यह संकट न केवल व्यक्तिगत है अपितु सामूहिक है। भौतिकतावादी लोग प्रौद्योगिकी के स्वर्ग में रहने का प्रयास करते हैं, किन्तु जब युद्ध छिड़ता है या अन्य विपत्तियाँ आ जाती हैं, तो यह स्वर्ग छिन जाता है। यद्यपि प्रभुपाद ने इस पर गौर किया था कि मूर्खों को मूर्ख कहने पर वे नाराज होते हैं, किन्तु उन्होंने कभी भी अपनी पुस्तकों तथा व्याख्यानों में इन मूर्ख भौतिकतावादियों की निर्भीक होकर

आलोचना करने में झिझक नहीं दिखाई। उन्होंने केवल आलोचना भर नहीं की, अपितु शिक्षाएँ दीं और दृष्टान्त पेश किये, जिनसे सम्पूर्ण जगत को राहत मिल सके। उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के सदस्यों को इस तरह रहने की शिक्षा दी, जिसमें आध्यात्मिक प्रगति के लिए पर्याप्त समय बचे। यह संघ सम्पूर्ण संसार के समक्ष दृष्टान्त प्रस्तुत करने के लिए है। यह ऐसा समुदाय है, जिसके सदस्यों की समस्याएँ घट चुकी हैं और जो ईश-केन्द्रित जीवन बिताने में अभिरुचि रखते हैं।

श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में शरणागत न होने वाले चार प्रकार के लोगों का उल्लेख किया है, जो उनकी शरण में जाना नहीं चाहते, किन्तु भक्तगण अपने अपने प्रयास जारी रखते हैं और अपने गुरु द्वारा कहे गये आदर्श प्रस्तुत करके संतुष्ट रहते हैं और जहाँ कहीं भी हो सके, बद्धजीवों की सहायता करते हैं।

श्लोक ३०

भक्तापायभुजाङ्गगारुडमणिस्त्रैलोक्यरक्षामणि-
र्गोपीलोचनचातकाम्बुदमणिः सौन्दर्यमुद्रामणिः।
यः कान्तामणिरुक्मिणीघनकुचद्वन्द्वैकभूषामणिः
श्रेयो देवशिखामणिर्दिशतु नो गोपालचूडामणिः॥ ३०॥

भक्त—उनके भक्तगण; **अपाय**—हरण करके; **भुज-अङ्ग**—जिनकी भुजाएँ; **गारुड़**—गरुड़ पक्षी पर आसीन; **मणिः**—मणि; **त्रै-लोक्य**—तीनों लोकों के; **रक्षा**—रक्षार्थ; **मणिः**—मणि; **गोपी**—गोपियों के; **लोचन**—नेत्रों के; **चातक**—चातक पक्षियों हेतु; **अम्बुद**—बादलों के; **मणिः**—मणि; **सौन्दर्य**—सुन्दरता दिखलाते; **मुद्रा**—हावभाव के; **मणिः**—मणि; **यः**—जो; **कान्ता**—प्रेमिकाओं का; **मणि**—मणिरूप; **रुक्मिणी**—रुक्मिणी का; **घन**—पूर्ण; **कुच-द्वन्द्व**—दोनों स्तनों का; **एक**—एक; **भूषा**—आभूषण; **मणिः**—मणि; **श्रेयः**—परम लाभ; **देव**—देवताओं का; **शिखा-मणिः**—मुकुटमणि; **दिशतु**—वे प्रदान करें; **नः**—हम सबों को; **गोपाल**—गोपों के; **चूड़ा-मणिः**—चूड़ामणि।

अनुवाद

अपने पंखों पर भगवद्भक्तों को ले जाने वाले गरुड़ की पीठ पर सवार वे (कृष्ण) मणि हैं। वे वह चमत्कारी मणि हैं, जो तीनों लोकों

की रक्षा करने वाला है। वे मणि सदृश बादल हैं, जो गोपियों के चातक (पपीहा) सदृश नेत्रों को आकृष्ट करने वाले हैं और वे उन सबों के बीच मणितुल्य हैं, जो बहुत ही भद्रतापूर्वक भावभंगिमा दिखाते हैं। वे उन महारानी रक्मिणी के विपुल स्तनों पर एकमात्र मणिजटित आभूषण हैं, जो स्वयं ही प्रेयसियों की मणिरूपा हैं। समस्त देवताओं के चूड़ामणि स्वरूप, गोपों में सर्वश्रेष्ठ, वे हमें परम आशीष प्रदान करें।

तात्पर्य

यहाँ पर राजा कुलशेखर हमारे समक्ष भगवान् कृष्ण की विविध लीलाओं में से कुछ की झाँकी प्रस्तुत करते हैं। प्रत्येक उदाहरण में भगवान् को *मणि* कहा गया है। वे मणि की तरह स्वयं तेजवान्, अत्यन्त सुन्दर तथा अत्यधिक मूल्यवान हैं।

जिस तरह मणि के बिना अँगूठी रिक्त जान पड़ती है, उसी तरह कृष्ण के बिना गरुड़ की अद्वितीय महत्ता नहीं जान पड़ती, यद्यपि गरुड़ एक विशाल तथा शक्तिशाली पक्षी है। कृष्ण के बिना गोपियों के नेत्रों को न तो ठहरने का कोई स्थान मिलता है, न ही कुछ देखने को, जिस तरह चातक पक्षी तब तक अशान्त बना रहता है, जब तक वह वर्षा करने वाले तथा जीवनदायी बादल को नहीं देख लेता। जैसाकि श्रीचैतन्य महाप्रभु गोपी-भाव में कहते हैं, "सारा संसार आपके बिना शून्य लगता है।" कृष्ण की अनुपस्थिति में देवतागण मुकुटमणि विहीन होते और उनका खुद का सम्मान भी घट गया होता। इस प्रकार भगवान् कृष्ण आध्यात्मिक जगत में अपनी लीला में तथा भौतिक जगत के समस्त संचालनों में परम आवश्यक पुरुष हैं। जैसाकि *भगवद्गीता* (७.७) में वे कहते हैं—"हर वस्तु मुझ पर टिकी है, जिस तरह मोती एक धागे में पिरोये रहते हैं।"

जब कोई जीवात्मा अपनी स्वतन्त्रता का दुरुपयोग करता है, तो वह सृष्टि का केन्द्र बनने का प्रयास करता है और सोचता है कि कृष्ण के बिना उसका काम चल सकता है। इस भूल को सत्राजित की कथा के द्वारा चित्रित किया गया है, जिसके पास स्यमन्तक नामक एक अद्भुत मणि थी, जिसे वह अपने गले में धारण करता था। जब सत्राजित द्वारका में प्रविष्ट हुआ, तो कृष्ण ने उससे उस मणि को राजा उग्रसेन को हस्तान्तरित करने के लिए कहा। किन्तु

सत्राजित ने वह मणि राजा को न देकर उसे एक मन्दिर में स्थापित कर दिया और वह उसकी पूजा करने लगा और प्रतिदिन १७० पौंड सोना प्राप्त करने लगा। चूँकि उसका दावा था कि यह मणि कृष्ण की नहीं है, अतः सत्राजित तथा उसके परिवार को अनेक प्रकार के कष्ट सहने पड़े। उस राजा को तभी शान्ति मिल सकी, जब उसे यह बोध हुआ कि उस स्यमन्तक मणि को परम मणि-स्वरूप कृष्ण को प्रदान कर देना चाहिए। अतः उसने वह मणि तथा अपनी पुत्री सत्यभामा दोनों को भगवान् को समर्पित कर दिया।

श्लोक ३१

शत्रुच्छेदैकमन्त्रं सकलमुपनिषद्वाक्यसम्पूज्यमन्त्रं
संसारोच्छेदमन्त्रं समुचिततमसः सङ्घनिर्याणमन्त्रम्।
सर्वैश्वर्यैकमन्त्रं व्यसनभुजगसन्दष्टसन्त्राणमन्त्रं
जिह्वे श्रीकृष्णमन्त्रं जप जप सततं जन्मसाफल्यमन्त्रम्॥ ३१॥

शत्रु—शत्रुओं के; **छेद**—विनाश के लिए; **एक**—एकमात्र; **मन्त्रम्**—योगिक मन्त्र; **सकलम्**—सारे; **उपनिषत्**—उपनिषदों के; **वाक्य**—शब्दों से; **सम्पूज्य**—पूजित; **मन्त्रम्**—मन्त्र; **संसार**—जन्म-मृत्यु का चक्र; **उच्छेद**—समूल नष्ट करने वाला; **मन्त्रम्**—मन्त्र; **समुचित**—पुंजीकृत; **तमसः**—अंधकार के; **सङ्घ**—समूह को; **निर्याण**—भगाने के लिए; **मन्त्रम्**—मन्त्र; **सर्व**—समस्त; **ऐश्वर्य**—ऐश्वर्य के लिए; **एक**—एकमात्र; **मन्त्रम्**—मन्त्र का; **व्यसन**—भौतिक क्लेश रूपी; **भुजग**—सर्प द्वारा; **सन्दष्ट**—डसे गये; **सन्त्राण**—रक्षा करने वाला; **मन्त्रम्**—मन्त्र; **जिह्वे**—हे मेरी जीभ; **श्री-कृष्ण**—श्रीकृष्ण के; **मन्त्रम्**—मन्त्र का; **जप जप**—बारम्बार जप कर; **सततम्**—सदैव; **जन्म**—जन्म के; **साफल्य**—सफलता के लिए; **मन्त्रम्**—मन्त्र।

अनुवाद

हे जीभ, तुम कृपया श्रीकृष्ण के नामों से रचे गये मन्त्र का निरन्तर जप करो। यह समस्त शत्रुओं का विनाश करने के लिए एकमात्र मन्त्र है। यह मन्त्र उपनिषदों के प्रत्येक शब्द द्वारा पूजित है, यह मन्त्र संसार को समूल नष्ट करता है, यह मन्त्र अज्ञान के सारे अन्धकार को भगाता है। यह अनन्त ऐश्वर्य प्राप्त करने, सांसारिक क्लेश रूपी विषैले साँप द्वारा डसे गये लोगों को अच्छा करने और इस संसार में जन्म को सफल बनाने वाला मन्त्र है।

तात्पर्य

मन्त्र वह ध्वनिकम्पन है, जो मन को मोह से उबारता है। जब कोई व्यक्ति भगवान् के नामों वाले मन्त्र का जप करता है, तो उसका मन क्लेश से मुक्त हो जाता है और उसे इस ईशभावनामृत में दिव्य शान्ति की अवस्था प्राप्त होती है। किन्तु ऐसे समस्त मन्त्रों में से राजा कुलशेखर जिस एक मन्त्र की संस्तुति करते हैं, वह *कृष्ण मन्त्र* अर्थात् कृष्ण के नामों से युक्त मन्त्र है। इनमें से एक 'हरे कृष्ण महामन्त्र' है, जिसका जप श्रीचैतन्य महाप्रभु सदा किया करते थे और जिसे उपनिषदों ने कलियुग के लिए सर्वश्रेष्ठ मन्त्र घोषित किया है—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥
इति षोडशकं नाम्नां कलिकल्मषनाशनम्।
नातः परतरोपायः सर्ववेदेषु दृश्यते॥

"हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे। हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे॥ बत्तीस अक्षरों से रचित ये सोलह नाम कलियुग के दुष्प्रभावों को दूर करने के लिए एकमात्र साधन है। समस्त वैदिक साहित्य को छान डालने के बाद भी इस युग के लिए ऐसी धर्म-विधि नहीं मिलेगी, जो हरे कृष्ण मन्त्र के जप जैसी उदात्त हो।' (*कलिसन्तरण उपनिषद्*)

राजा कुलशेखर घोषणा करते हैं कि कृष्णमन्त्र शत्रुओं का विनाश करने वाला है। हमें इसकी एक परि-पुष्टि अजामिल की कथा में मिलती है। उसने नारायण नाम का उच्चारण किया और वह यमदूतों के चंगुल से बच गया। अन्यत्र, *श्रीमद्भागवत* में कहा गया है—

आपन्नः संसृतिं घोरां यन्नाम विवशो गृणन्।
ततः सद्यो विमुच्येत यद्बिभेति स्वयं भयम्॥

"जन्म तथा मृत्यु के जटिल फन्दे में फँसे जीव यदि अचेतन भाव में भी कृष्णनाम का उच्चारण करते हैं, तो वे तुरन्त ही मुक्त किये जा सकते हैं, क्योंकि कृष्ण से साक्षात् काल भी भयभीत रहता है।" (*भागवत* १.१.१४) यही नहीं, कृष्णनाम का जप छह मानसिक शत्रुओं—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद तथा ईर्ष्या को नष्ट कर देता है।

इसके आगे राजा कुलशेखर कहते हैं कि कृष्णमन्त्र सारे उपनिषदों द्वारा

पूजित है। उपनिषदों में अधिकांश, अप्रत्यक्ष रूप से भगवान् के साकार रूप का वर्णन है, फिर भी वे कृष्ण की ओर संकेत करने वाले हैं। श्रील रूप गोस्वामी ने अपने *नामाष्टक* (१) में उपनिषदों के गुह्य अर्थ को व्यक्त किया है—

निखिलश्रुतिमौलिरत्नमाला
द्युतिनीराजितपादपङ्कजान्त।
अयि मुक्तकुलैरुपास्यमानं
परितस्त्वां हरिनाम संश्रयामि॥

"हे हरिनाम! आपके चरणकमलों के अँगूठों के अग्रभागों की पूजा वेदों के मुकुट मणि, उपनिषद् के रत्नों की लड़ी से निकलने वाले तेज द्वारा की जाती है। नारद तथा शुकदेव जैसे मुक्तात्मा नित्य आपकी अर्चना करते हैं। हे हरिनाम! मैं पूरी तरह से आपकी शरण ग्रहण करता हूँ।"

कृष्णमन्त्र *संसार* का भी उच्छेदन करता है। इसकी पुष्टि श्रीचैतन्य महाप्रभु ने अपने *शिक्षाष्टक* (१) में की है, जिसमें वे कहते हैं, *भवमहादावाग्नि निर्वापणम्*—"हरे कृष्ण मन्त्र का सामूहिक कीर्तन बारम्बार होने वाले जन्म तथा मृत्यु रूपी दहकती अग्नि को बुझाता है।" कृष्ण मन्त्र अज्ञान के अंधकार को भगाने के लिए भी सर्वाधिक प्रभावशाली है। उसी श्लोक में श्रीचैतन्य महाप्रभु कहते हैं—*विद्यावधूजीवनम्*—"हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन दिव्य ज्ञान का जीवन-प्राण है।" चैतन्य चरितामृत के द्वितीय श्लोक में कृष्ण मन्त्र का जप करने वाले अग्रणी प्रचारक श्रीचैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु की तुलना सूर्य तथा चन्द्रमा से की गई है, "वे एक ही साथ गौड़ (बंगाल) के क्षितिज में अज्ञान के अंधकार को भगाने तथा सबों को वर देने के लिए उदित हुए हैं।" इसकी व्याख्या करते हुए श्रील कृष्णदास कविराज हमें सूचित करते हैं कि भौतिक सूर्य तथा चन्द्र तो बाह्य जगत के अंधकार को ही दूर करने में सक्षम हैं, "किन्तु ये दोनों भ्राता (श्रीचैतन्य तथा श्रीनित्यानन्द) हृदय के भीतरी अंधकार को दूर करते हैं और दो प्रकार के *भागवतों* (परमेश्वर से सम्बन्धित लोगों या वस्तुओं) से मिलने में सहायता करते हैं।" (*चैतन्य चरितामृत आदि* १.९८)

राजा कुलशेखर कृष्णमन्त्र की बड़ाई अनन्त ऐश्वर्य दाता के रूप में करते

हैं। इस संसार में सर्वाधिक मूल्यवान, यहाँ तक कि इस संसार की चिन्तामणि से भी बढ़कर वस्तु ईशप्रेम है। "अपराधरहित होकर हरे कृष्ण महामन्त्र का जप सारे पापकर्मों को नष्ट करता है। इस तरह शुद्ध भक्ति प्रकट होती है, जो ईशप्रेम का कारण है। (*चैतन्य चरितामृत आदि* ८.२६)

राजा कुलशेखर कृष्णमन्त्र का महिमागान एक ऐसी औषधि के रूप में करते हैं, जो भौतिक क्लेश रूपी सर्प द्वारा डसे गये व्यक्तियों को कष्ट से छुटकारा दिलाती है। श्रील भक्ति विनोद ठाकुर के 'अरुणोदय कीर्तन' में श्रीचैतन्य महाप्रभु इस संसार के लोगों से कहते हैं, "मैं माया के मोह को नष्ट करने की औषधि लाया हूँ। अब इस *हरिनाम महामन्त्र* के लिए प्रार्थना करो और इसे प्राप्त करो।"

श्लोक ३२

व्यामोहप्रशमौषधं मुनिमनोवृत्तिप्रवृत्त्यौषधं
दैत्येन्द्रार्तिकरौषधं त्रिभुवने सञ्जीवनैकौषधम्।
भक्तात्यन्तहितौषधं भवभयप्रध्वंसनैकौषधं
श्रेयःप्राप्तिकरौषधं पिब मनः श्रीकृष्णदिव्यौषधम्॥ ३२॥

व्यामोह—नितान्त मोह; **प्रशम**—शमन करने के लिए; **औषधम्**—औषधि (जड़ीबूटी); **मुनि**—मुनियों के; **मनः**—मनों की; **वृत्ति**—कार्यप्रणाली; **प्रवृत्ति**—प्रारम्भ करने वाली; **औषधम्**—दवा; **दैत्य**—दिति की आसुरी संतानों का; **इन्द्र**—नायकों की; **आर्ति**—क्लेश; **कर**—करने वाली; **औषधम्**—दवा; **त्रि-भुवने**—तीनों लोकों में; **सञ्जीवन**—मृतक को पुनः जीवित करने के लिए; **एक**—एकमात्र; **औषधम्**—दवा; **भक्त**—भगवद्भक्तों के; **अत्यन्त**—परम; **हित**—लाभ के लिए; **औषधम्**—दवा; **भव**—भौतिक जगत का; **भय**—डर; **प्रध्वंसन**—नष्ट करने के लिए; **एक**—एकमात्र; **औषधम्**—दवा; **श्रेयः**—सर्वोपरि हित की; **प्राप्ति**—प्राप्ति, लाभ; **कर**—करने वाली; **औषधम्**—दवा; **पिब**—पियो; **मनः**—हे मन; **श्रीकृष्ण**—श्रीकृष्ण की; **दिव्य**—दिव्य; **औषधम्**—औषधिक जड़ीबूटी।

अनुवाद

मेरे मन! तुम कृपया श्रीकृष्ण की महिमा रूपी दिव्य औषधि का पान करो। यह मोह रूपी रोग को ठीक करने, मुनियों को अपने मन को ध्यान में लीन करने के लिए प्रोत्साहित करने तथा बलशाली दैत्यों को यातना

देने के लिए परिपूर्ण औषधि है। यह तीनों लोकों को पुनः जीवनदान देने और भगवान् के भक्तों को असीम वर प्रदान करने के लिए एकमात्र औषधि है। वस्तुतः यह एकमात्र औषधि है, जो किसी के भी भौतिक अस्तित्व के भय को नष्ट कर सकती है तथा उसे परम कल्याण की प्राप्ति करा सकती है।

तात्पर्य

मेरे सहकर्मी गोपीपराणधन प्रभु की टिप्पणी है कि, "मणि, मन्त्र तथा औषध—ये तीनों शब्द प्रायः वैदिक दार्शनिकों द्वारा एकसाथ इस संसार की उन वस्तुओं के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं, जिनमें *अचिन्त्य शक्ति* होती है।" चूँकि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तथा उनकी शक्तियाँ अचिन्त्य हैं, इसलिए यह समझ में आ जाता है कि कविगण तथा दार्शनिकजन भगवान् की तुलना मणि तथा औषधि से क्यों करते हैं और उनके नामों से रचित मन्त्रों की अद्भुत शक्तियों की प्रशंसा क्यों करते हैं।

मणि, मन्त्र तथा औषधि के अलावा सृष्टि का प्रत्येक जीव कुछ मात्रा में अचिन्त्य शक्ति से युक्त होता है। यद्यपि प्रायः सारे मनुष्य अपने आपको ईश्वर के समस्त प्राणियों में सबसे अधिक शक्तिशाली मानते हैं, किन्तु ऐसे अनेक निम्न प्राणी हैं, जिनमें मनुष्यों से कहीं अधिक क्षमताएँ पाई जाती हैं। उदाहरणार्थ, उगी हुई घास पाँवों से रौंदी जाती है और रातभर ठिठुरते मौसम में खुली पड़ी रहती है, किन्तु विरोध नहीं करती। पर मनुष्य इतना सहनशील नहीं होता। मेंढकों में अचिन्त्य शक्ति होती है, जिससे वे मिट्टी के नीचे घुसे रहकर भी जीवित रह पाते हैं। चहचहाती चिड़ियाँ तथा कीट ऐसे उड़ते हुए जटिल यंत्र हैं कि वे वायुयानों को कई प्रकार से पीछे छोड़ सकते हैं। यद्यपि विज्ञानी अपने कार्य को ब्रह्माण्ड के रहस्यों को खोलने वाला मानते हैं, किन्तु वे यह स्वीकार करते हैं कि प्रकृति मूलतः अचिन्त्य बनी हुई है।

ब्रह्माण्ड के लघुतम तथा महत्तम दोनों पक्षों में *अचिन्त्य शक्ति* की उपस्थिति से हमें यह जिज्ञासा करने के लिए प्रेरित होना चाहिए कि इस अचिन्त्य शक्ति का स्रोत कौन है? इस स्रोत का वर्णन *ब्रह्मसंहिता* में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् गोविन्द के रूप में हुआ है, जिन्हें *अचिन्त्य रूप* कहा गया है।

भक्तियोग की विधि भी अचिन्त्य है। ऐसा प्रत्येक व्यक्ति जिसने भाग्यवश कृष्णभावनामृत विधि को अंगीकार किया है, भक्ति रूपी औषधि की अचिन्त्य क्षमता को प्रमाणित कर सकता है। यद्यपि हमने कृष्णभावनामृत प्राप्त करने के पूर्व सारे दुर्गणों को त्यागने का प्रयत्न किया है, किन्तु इसे हम दीर्घकाल तक निभा नहीं पाये। किन्तु ज्योंही हमने कृष्ण तथा उनके भक्तों की सेवा करना तथा भगवान् के पवित्र नामों का जप करना शुरू किया, त्योंही 'असम्भव' भी सम्भव बन गया। वह अचिन्त्य शक्ति जो इन परिवर्तनों को लाती है, *कृष्णशक्ति* कहलाती है।

भगवत्कृपा से शुद्ध भक्त में यह *कृष्णशक्ति* पाई जाती है और जब वह पवित्र नाम जप करता है या कृष्ण के विषय में बोलता है, तो शक्तिशाली ध्वनि ग्रहणशील श्रोता की चेतना में प्रवेश करती है और उसे शुद्ध बनाती है। इसके विपरीत, जब कोई अभक्त कृष्ण के विषय में कुछ कहता है या उनके नाम का जप करता है, तो श्रोता के ऊपर इसका प्रभाव शुद्धिकर नहीं, अपितु विषैला होता है। केवल वही व्यक्ति जिसे पुरुषोत्तम भगवान् ने शक्ति प्रदान की है, *कृष्णशक्ति* के द्वारा कृष्णभावनामृत का प्रसार कर सकता है। इस तरह हम केवल शुद्ध भक्तों से मणि, मन्त्र या भक्ति की औषधि प्राप्त कर सकते हैं, जिससे हम ईशप्रेम के अचिन्त्य लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

श्लोक ३३

कृष्ण त्वदीयपदपङ्कजपञ्जरान्त-
मद्यैव मे विशतु मानसराजहंसः।
प्राणप्रयाणसमये कफवातपित्तैः
कण्ठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते॥ ३३॥

कृष्ण—हे कृष्ण; **त्वदीय**—आपके; **पद**—चरण; **पङ्कज**—कमल; **पञ्जर**—जाल; **अन्तम्**—सिरा; **अद्य**—अब, इसी क्षण; **एव**—निश्चय ही; **मे**—मेरे; **विशतु**—प्रवेश करें; **मानस**—मन; **राज**—राजसी; **हंस**—हंस पक्षी; **प्राण-प्रयाण**—मृत्यु के; **समये**—समय; **कफ**—कफ; **वात**—वायु; **पित्तैः**—तथा पित्त से; **कण्ठ**—गला; **अवरोधन-विधौ**—रुद्ध होने पर; **स्मरणम्**—स्मरण; **कुतः**—कैसे सम्भव है; **ते**—आपका।

अनुवाद

हे भगवान् कृष्ण, इस समय मेरे मन रूपी राजहंस को अपने चरणकमल के डण्ठल के जाल में प्रवेश करने दें। मृत्यु के समय जब मेरा गला कफ, वात तथा पित्त से अवरुद्ध हो जाएगा, तब मेरे लिए आपका स्मरण करना कैसे सम्भव हो सकेगा?

तात्पर्य

मुकुन्दमाला स्तोत्र के सभी श्लोकों में से यह एक श्लोक श्रील प्रभुपाद को अत्यन्त प्रिय था। वे प्राय: इसको उद्धृत करते और भजन के रूप में गाते थे। उन्होंने सबसे पहला जो रिकार्ड ऐल्बम तैयार किया, उसमें उन्होंने इस श्लोक को पूरे गीत के रूप में गाया था। जो भक्त श्रील प्रभुपाद की सेवा में रहते थे, उन्होंने इसे प्रभुपाद द्वारा नैत्यिक कर्म करते या अपने कमरे में अकेले रहने पर गाते हुए अक्सर सुना था। उन्होंने अनेक बार इसे अपने तात्पर्यों में भी उद्धृत किया है। उन्होंने श्रीमद् *भगवद्गीता* के आठवें अध्याय के द्वितीय श्लोक में आये *प्रयाणकाल* शब्द की जो व्याख्या तात्पर्य के अन्तर्गत की है, उसका वही अर्थ है, जो कुलशेखर के इस श्लोक में *प्राणप्रयाण समये* का है :

> (*भगवद्गीता* के) इस श्लोक का *प्रयाणकाले* शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि अपने जीवन में हम जो भी करते हैं, उसकी परीक्षा मृत्यु के समय होती है। अर्जुन उन लोगों के विषय में जानने के लिए अत्यन्त उत्सुक है, जो निरन्तर कृष्णभावनामृत में लगे रहते हैं। अन्त समय उनकी क्या दशा होगी? मृत्यु के समय सारे शारीरिक कार्य रुक जाते हैं और मन सही दशा में नहीं रहता। इस प्रकार शारीरिक हालत बिगड़ जाने से हो सकता है कि, मनुष्य परमेश्वर का स्मरण न कर सके। महान् भक्त महाराज कुलशेखर प्रार्थना करते हैं, "हे भगवान्! इस समय मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ। अच्छा हो कि मेरी मृत्यु इसी समय हो जाए, जिससे मेरा मन रूपी हंस आपके चरणकमलों के नाल के

भीतर प्रविष्ट हो सके।" यह रूपक इसलिए प्रयुक्त किया गया है, क्योंकि हंस, जो एक जल पक्षी है, कमल पुष्पों को कुतरने में आनन्द का अनुभव करता है। इस तरह वह कमलपुष्प के भीतर प्रवेश करना चाहता है। महाराज कुलशेखर भगवान् से कहते हैं, "इस समय मेरा मन स्वस्थ है और मैं पूरी तरह स्वस्थ भी हूँ। यदि मैं आपके चरणकमलों का चिन्तन करते हुए तुरन्त मर जाऊँ, तो मुझे विश्वास है कि आपके प्रति मेरी भक्ति पूर्ण हो जाएगी। किन्तु यदि मुझे अपनी सहज मृत्यु की प्रतीक्षा करनी पड़े, तो मैं नहीं जानता कि क्या होगा, क्योंकि उस समय मेरा शरीर कार्य करना बन्द कर देगा, मेरा गला रुँध जाएगा और मुझे पता नहीं है कि मैं आपके नाम का जप कर भी पाऊँगा या नहीं। अच्छा यही होगा कि आप मुझे तुरन्त मर जाने दें।"

आगे चलकर आठवें अध्याय में ही भगवान् कृष्ण कहते हैं कि मृत्यु का सही क्षण निर्णायक होता है, "जब कोई अपना शरीर त्यागता है, तो उस समय वह जिस भी अवस्था का स्मरण करता है... उसे वह अवस्था निश्चित रूप से प्राप्त होती है।" (*भगवद्गीता* ८.६) और श्रील प्रभुपाद ने अपने तात्पर्यों में मृत्यु के समय कृष्ण को स्मरण करने और आध्यात्मिक जगत में पहुँचने की सर्वोत्तम विधि के रूप में हरे कृष्ण मन्त्र का जप करने की बारम्बार संस्तुति की है।

कुलशेखर के श्लोक से जो व्यावहारिक कठिनाई उत्पन्न होती है, वह यह है कि यद्यपि मृत्यु के समय कृष्ण का स्मरण करना निर्णायक है, किन्तु उस समय मनुष्य के शारीरिक तथा मानसिक कार्यों में सर्वाधिक व्यवधान उत्पन्न होता है। श्रील प्रभुपाद ने बताया है कि मृत्यु तब आती है, जब शरीर इतना कष्टदायक हो जाता है कि आत्मा उस शरीर के भीतर रह पाने में अपने आपको असमर्थ पाता है। इसीलिए यह विरोधाभास है—जिस समय हमें अपने मन को कृष्ण में स्थिर करके अपने आपको आध्यात्मिक जगत में स्थानान्तरित होने

की तैयारी करते हुए सर्वाधिक ध्यानमग्न होना चाहिए, उस समय शरीर की कष्टकारक पीड़ा सबसे बड़ी रुकावट है। इस तरह यहाँ राजा कुलशेखर स्वस्थ रहते हुए अभी मरने के लिए प्रार्थना करते हैं, जिससे वे अपने मन को कृष्ण के चरणकमलों के चिन्तन में लीन कर सकें।

आचार्यों ने हमें आश्वस्त किया है कि कृष्णभावनामृत का सार हमारे आजीवन भक्तिमय कार्यकलाप तथा विचार हैं। यदि अन्त समय मिर्गी का दौरा पड़ जाये या चलते चलते हृदय रुक जाये तो कृष्ण हमारे संचित भक्ति कार्यों को अयोग्य नहीं ठहराएँगे। इतने पर भी हमें हरे कृष्ण मन्त्र का जप करने का अभ्यास सदैव करना चाहिए, जिससे हम अन्त समय 'परीक्षा में उत्तीर्ण' हो सकें।

ईशोपनिषद् (१७) में एक भक्त भगवान् से विनती करता है, "मैंने आपके लिए जो कुछ किया है, कृपया मृत्यु के समय उसे याद रखें।" श्रील प्रभुपाद इसके तात्पर्य में लिखते हैं कि कृष्ण को स्मरण नहीं कराना पड़ता। वे हमारे हृदय के भीतर साक्षी रूप में आसीन हैं और वे भी यही चाहते हैं—हम से भी अधिक चाहते हैं कि हम उनके पास भगवद्धाम वापस लौटकर जायें। किन्तु मृत्यु की आघात तथा भाग्य की घातक चाल (ठगविद्या) पर विचार करते हुए महाराज कुलशेखर प्रार्थना करते हैं कि वे वृद्धावस्था की प्रतीक्षा करने की अपेक्षा तुरन्त मर जाना पसन्द करेंगे, क्योंकि वे वृद्धावस्था में अपनी मृत्यु के संकट के कष्ट में कृष्ण को भूल सकते हैं।

श्लोक ३४

चेतश्चिन्तय कीर्तयस्व रसने नम्रीभव त्वं शिरो
हस्तावञ्जलिसम्पुटं रचयतं वन्दस्व दीर्घं वपुः।
आत्मन्संश्रय पुण्डरीकनयनं नागाचलेन्द्रस्थितं
धन्यं पुण्यतमं तदेव परमं दैवं हि सत्सिद्धये॥ ३४॥

चेतः—हे मन; **चिन्तय**—जरा सोचो; **कीर्तयस्व**—यशगान करो; **रसने**—हे जीभ; **नम्री**—विनम्र; **भव**—बनो; **त्वम्**—तुम; **शिरः**—हे सिर; **हस्तौ**—हे दोनों हाथों; **अञ्जलि-सम्पुटम्**—अञ्जलिबद्ध; **रचयतम्**—बनाओ; **वन्दस्व**—नमस्कार करो; **दीर्घम्**—लम्बा; **वपुः**—हे शरीर; **आत्मन्**—हे हृदय; **संश्रय**—पूरी तरह शरण लो;

पुण्डरीक—कमल सदृश; **नयनम्**—नेत्र वाले; **नाग**—सर्प पर; **अचल**—पर्वतों के; **इन्द्र**—राजा के समान; **स्थितम्**—आसीन; **धन्यम्**—धन्य; **पुण्य-तमम्**—अत्यन्त शुद्धकारी; **तत्**—वे; **एव**—एकमात्र; **परमम्**—सर्वोच्च; **दैवम्**—विग्रह; **हि**—निस्सन्देह; **सत्**—स्थायी सिद्धि की; **सिद्धये**—प्राप्ति हेतु।

अनुवाद

हे मन, उन कमलनयन भगवान् का चिन्तन करो, जो पर्वताकार अनन्त नाग पर लेटे हैं। हे जीभ, तुम उनकी महिमा का गायन करो। हे सिर, तुम उनके समक्ष झुको। ओ हाथो, अपनी हथेलियाँ जोड़कर उनकी प्रार्थना करो। हे शरीर, तुम उन्हें दण्डवत् प्रणाम करो। हे हृदय, उनकी पूर्ण शरण लो। वे परमेश्वर ही सर्वोच्च विग्रह हैं। एकमात्र वे ही पूर्ण मंगलकारी और परम विशुद्धकारी हैं। वे ही शाश्वत सिद्धि के प्रदायक हैं।

तात्पर्य

यह श्लोक बीसवें श्लोक के ही समान है, जिसमें कवि अपने मन, अपनी जीभ, अपने सिर तथा शरीर के अन्य भागों को पूर्ण आदरसहित भगवान् की सेवा करने का आदेश देता है। यहाँ पर राजा कुलशेखर हमें कुछ ऐसे संक्षिप्त कारण भी देते हैं कि भगवान् पूजनीय क्यों हैं। वे कोई मर्त्य प्राणी नहीं, अपितु अचिन्त्य महाविष्णु हैं, जो अनन्त शेष-शैया पर लेटते हैं। शेष भगवान् स्वयं समस्त ब्रह्माण्डों के आधार हैं और महाविष्णु समस्त सृष्टि के सर्वशक्तिमान स्रोत हैं।

परम सत्य अपनी उन निजी शक्तियों के साथ पूर्ण हैं, जो उनकी सेवा तथा पूजा करती हैं। जिस तरह राजा अपनी प्रिय प्रजा के साथ आदान-प्रदान करके पूर्ण बनता है, उसी तरह परब्रह्म अपने उपासकों के साथ पूर्ण होते हैं और भक्तगण तभी पूरी तरह तुष्ट होते हैं, जब वे भगवान् की भक्तिमय सेवा करते हैं। राजा कुलशेखर अपनी प्रार्थना में बराबर अपने नित्य प्रभु के साथ अपने नित्य दास सम्बन्ध की बात का पक्ष लेते हैं। वे यह कभी नहीं कहते कि जीव सभी तरह से सर्वोपरि से एकाकार हो सकते हैं या दास तथा प्रभु दोनों अन्ततः निर्विशेष ब्रह्म में लीन हो जाएँगे। भगवान् का निर्विशेष ब्रह्म का सिद्धान्त अर्थघटन करने बाद आया हुआ है, वह वैदिक शास्त्रों से सीधे नहीं

निकला है। *श्रीमद्भागवत* (१०.८७.३०) में साक्षात् वेदों का यह कथन है—

अपरिमिता ध्रुवास्तनुभृतो यदि सर्वगता-
स्तर्हि न शास्यतेति नियमो ध्रुव नेतरथा।
अजनि च यन्मयं तदविमुच्य नियन्तृ भवेत्
सममनुजानतां यदमतं मतदुष्टतया।

"हे परम शाश्वत! यदि देहधारी जीव आपकी तरह नित्य तथा सर्वव्यापक होते, तो वे आपके नियंत्रण में नहीं होते। किन्तु यदि जीवों को आपकी सूक्ष्म शक्तियों के रूप में स्वीकार किया जाता है, तब तुरन्त वे आपके परम नियन्त्रण के अधीन हो जाते हैं। इसलिए असली मुक्ति जीवों द्वारा आपकी शरण में जाने में है और इस शरणागति से वे सुखी बन सकेंगे। ऐसी स्वाभाविक स्थिति में ही वे नियंत्रक बन सकते हैं। अत: जो इस एकेश्वरवाद का प्रतिपादन करते हैं कि ईश्वर तथा जीव सभी प्रकार से समान हैं, ऐसे कम बुद्धिवाले लोग वास्तव में स्वयं को तथा अन्यों को गुमराह कर रहे हैं।"

पुरुषोत्तम भगवान् की पूजा शुभ एवं शुद्धिकारक है। यह हमारे हृदय के सारे कल्मषों को दूर करती है, जिसमें यह भ्रम भी सम्मिलित है कि हम अपने जगत के प्रमुख कर्ता हैं और भोग के केन्द्र हैं। अपने से बड़े व्यक्ति या वस्तु की पूजा करना स्वाभाविक है, किन्तु कभी कभी हम किसी महापुरुष या देवता को पूजा का सही लक्ष्य समझने की भूल कर बैठते हैं। *भगवद्गीता* में भगवान् कृष्ण स्पष्ट कहते हैं कि वे ही एकमात्र पूजा के सही लक्ष्य हैं। और इस श्लोक में राजा कुलशेखर इस बात को फिर दोहराते हैं कि कमलनयन भगवान् ही सर्वोच्च देव हैं। ब्रह्माण्ड के संचालन हेतु भगवान् कृष्ण नाना विष्णुरूपों में विस्तार करते हैं और लाखों देवताओं को शक्ति प्रदान करते हैं। इस प्रकार असंख्य देव या *ईश्वर* (नियन्त्रक) हैं किन्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् इन सबों के सर्वोच्च नियन्त्रक हैं।

राजा कुलशेखर की यह प्रार्थना *श्रीमद्भागवत* तथा अन्य वैदिक शास्त्रों में आई उन समतुल्य प्रार्थनाओं का स्मरण दिलाती है, जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के दर्शनप्राप्त भक्तों द्वारा की गई है। शुद्ध भक्त, पूजामय आनन्द रस में सदैव भगवान् का दर्शन करते हैं। वे भगवान् को कभी भी इस ब्रह्माण्ड का सामान्य व्यक्ति नहीं मानते, न ही वे अपनी पहचान खोकर उनके निर्विशेष तेज

में मिल जाना चाहते हैं। ऐसे उन्नत वैष्णवों का भक्तिभाव आत्मा की उस स्वाभाविक जागृति को प्रस्तुत करता है, जब वह भगवान् की प्रत्यक्ष उपस्थिति में आता है। जीवात्मा विनीत तथा विशुद्ध बन जाता है और वह अपने प्रिय भगवान् की पूजा प्रभावपूर्ण स्तुतियों से करता है। बदले में भगवान् अपने भक्तों को अपनी दया प्रदान करते हैं।

इस श्लोक में राजा कुलशेखर भगवान् द्वारा प्रदान की जाने वाली *षट् सिद्धि* या चिरस्थायी उपलब्धि का उल्लेख करते हैं। यह भगवद्धाम जाने की वैयक्तिक मुक्ति को बताती है। गुणात्मक रूप से सारे जीव कृष्ण के समान ही हैं और जब वे उनके पास आते हैं, तो स्वाभाविक आकर्षण उत्पन्न होता है। तब भक्त अपनी सारी प्रतिभा का उपयोग उन परमेश्वर की पूजा में कर लेना चाहता है, जो पूजनीय तथा अचिन्त्य रूप से महान् हैं। इतने महान् होने पर भी वे इसके लिए बाध्य नहीं करते कि कोई उन्हें महान् कहे। इसका स्पष्टीकरण कृष्ण ने *भगवद्गीता* (४.११) में किया है—"वे जिस भाव से मेरे पास आते हैं, मैं उनके साथ वैसा ही प्रतिदान करता हूँ।" अतः यह तो भक्त की स्वेच्छा पर निर्भर करता है कि वह भगवान् की सेवा करने का चुनाव अपनी खुद की इच्छा से करे।

अतः यह श्लोक मनुष्य की स्वतन्त्र इच्छा के हेतु आवाहन है। यह अपने आप से प्रार्थना है कि कोई व्यक्ति ईश्वरप्रदत्त सुविधाओं का दुरुपयोग न करे, बल्कि उन्हें भगवान् की सेवा तथा पूजा में लगाए। चूँकि कृष्ण परम स्वतन्त्र हैं और हम उनके अंश हैं, अतः हममें भी अल्प स्वतन्त्रता होती है, इसलिए सबसे महत्त्वपूर्ण निर्णय हमारे हाथों में होता है। प्रभुपाद कहा करते थे, "मनुष्य अपने भाग्य का शिल्पी है।" राजा कुलशेखर की प्रार्थनाएँ सुनने से हमें प्रेरणा मिलती है कि हम अपनी स्वतन्त्रता का सही सही उपयोग करें।

श्लोक ३५

शृण्वञ्जनार्दनकथागुणकीर्तनानि
देहे न यस्य पुलकोद्गमरोमराजिः।
नोत्पद्यते नयनयोर्विमलाम्बुमाला
धिक् तस्य जीवितमहो पुरुषाधमस्य॥ ३५॥

शृण्वन्—सुनते हुए; **जनार्दन**—भगवान् जनार्दन; **कथा**—कथाएँ; **गुण**—उनके गुणों; **कीर्तनानि**—तथा यशोगान की; **देहे**—शरीर में; **न**—नहीं; **यस्य**—जिसके; **पुलक-उद्गम**—खड़े हो जाना; **रोम**—शरीर के रोमों की; **राजिः**—पंक्तियाँ; **न उत्पद्यते**—नहीं उत्पन्न होता; **नयनयोः**—दोनों नेत्रों में; **विमल**—शुद्ध; **अम्बु**—जल की; **माला**—सतत प्रवाह; **धिक्**—धिक्कार है; **तस्य**—उसका; **जीवितम्**—जीना; **अहो**—ओह; **पुरुष**—ऐसे व्यक्ति का; **अधमस्य**—अत्यन्त पतित।

अनुवाद

जो व्यक्ति भगवान् जनार्दन की लीलाओं तथा उनके यशस्वी गुणों का वर्णन सुनता है, किन्तु जिसके शरीर में हर्ष से रोमांच नहीं होता तथा जिसकी आँखों में शुद्ध प्रेम के अश्रुओं का प्रवाह नहीं होता—ऐसा व्यक्ति निस्सन्देह अत्यन्त निम्न स्तर का धूर्त है। उसका जीवन कितना गर्हित है!

तात्पर्य

वैदिक साहित्य में से पुरुषोत्तम भगवान् के प्रामाणिक वर्णन सुनने से आनन्द उत्पन्न होना चाहिए। असली कृष्णभावनामृत का यही लक्षण है। कृष्णभावनामृत ऐसा विषय नहीं है, जिसका काल्पनिक कथाओं या तुलनात्मक धर्म की तरह अध्ययन किया जाये और निश्चित रूप से यह निर्विकार ध्यान तक पहुँचने का साधन भी नहीं है। ईश्वर के विषय में तटस्थ रहना या सैद्धान्तिक रूप से यह स्वीकार करना कि, "हाँ, मैं ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करता हूँ" पर्याप्त नहीं है। भगवान् कृष्ण के विषय में सुनने से प्रारम्भ में बद्धात्मा के अन्दर वह पश्चात्ताप उत्पन्न होना चाहिए कि वह इतने दीर्घकाल तक अपने स्वामी, रक्षक तथा सर्वश्रेष्ठ मित्र से बिछुड़ा रहा। अन्त में उसे भगवान् के साथ अपने स्वाभाविक तथा सर्वप्रद सम्बन्ध के नवीनीकरण के लिए प्रेम के आँसू भरकर शुद्ध प्रेम का अनुभव करना चाहिए।

भक्ति विधि की तीन अवस्थाएँ हैं—*सम्बन्ध, अभिधेय* तथा *प्रयोजन।* पहली अवस्था में व्यक्ति प्रामाणिक स्रोतों से सुनकर पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, स्वयं, सृष्टि तथा इन सबों के बीच के सम्बन्ध के विषय में जानकारी प्राप्त करता है। तत्पश्चात् वह भक्तियोग तथा सर्वाकर्षक ईश्वर की भक्तिमय सेवा के परम महत्त्व का अनुभव करता है। दूसरी अवस्था में, जिसे *अभिधेय* कहते हैं,

वह भक्तिमय सेवा के व्यावहारिक कार्यकलापों में अपने आपको लगाता है। अन्तिम अवस्था, *प्रयोजन* में वह शुद्ध ईशप्रेम प्राप्त करता है, जो कि जीवन का लक्ष्य है।

श्रीमद्भागवत में राजा कुलशेखर के इस श्लोक जैसे ही एक श्लोक में शुकदेव गोस्वामी उस व्यक्ति की दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति का वर्णन करते हैं, जो ईश्वर के सन्देश को नहीं समझता—

तदश्मसारं हृदयं बतेदं
यद् गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः।
न विक्रियेताथ यदा विकारो
नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः॥

"निश्चय ही वह हृदय फौलाद का बना है, जो एकाग्र होकर भगवान् के पवित्र नाम का उच्चारण करने पर भी बदलता नहीं और हर्षित नहीं होता है, जबकि ऐसी अवस्था में आँखों में आँसू भर आते हैं और शरीर के रोम खड़े हो जाते हैं।"

आचार्यों ने हमें आगाह किया है कि धूर्त लोग आँसू आने तथा रोमांच होने के लक्षणों की नकल करते हैं। अतः भौतिक सुख से विरक्ति तथा गुरु के निर्देशन में भगवान् की निष्ठापूर्ण अविरत सेवा ही प्रगति करने के अत्यन्त विश्वसनीय लक्षण हैं।

किन्तु इससे आनन्द (भाव) की महत्ता का परिहार नहीं होता। श्रीचैतन्य महाप्रभु अपने *शिक्षाष्टक* (२) में बद्धात्मा के रूप में यह पछतावा करते हैं कि वे पवित्र नाम का कीर्तन करते हुए भी भावदशा प्राप्त नहीं कर पाते, क्योंकि वे इतने अभागे हैं कि अपराध करने से बाज नहीं आते। अतः यदि हम भगवत्प्रेम की दिशा में आगे बढ़ना चाहते हैं, तो हमें अध्ययन करना चाहिए और पवित्र नाम के प्रति किये जाने वाले दस अपराधों से बचना चाहिए। (देखें *भक्तिरसामृत सिन्धु*)

जिस व्यक्ति को भगवान् के शुद्ध भक्त की संगति प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त होता है, वह इन बुरी आदतों को सुधार सकता है; अन्यथा वह फौलादी हृदयवाला बना रहेगा और भक्ति में अग्रसर होने के लिए अयोग्य होगा। श्रील प्रभुपाद लिखते हैं, "भगवद्धाम वापस जाने की पूर्ण प्रगतिशील यात्रा

स्वरूपसिद्ध भक्तों द्वारा निर्देशित शास्त्रों के आदेश पर निर्भर करेगी।" शुद्ध भक्त की सेवा करने से व्यक्ति को स्वत: भक्ति की प्रगतिशील तथा भावमयी अवस्थाओं की अनुभूति होगी, जो निराशा या नकल से रहित होगी।

श्लोक ३६

अन्धस्य मे हृतविवेकमहाधनस्य
चौरैः प्रभो बलिभिरिन्द्रियनामधेयैः।
मोहान्धकूपकुहरे विनिपातितस्य
देवेश देहि कृपणस्य करावलम्बम्॥ ३६॥

अन्धस्य—अन्धे का; **मे**—मुझ; **हृत**—चुराया गया; **विवेक**—तर्कशक्ति; **महा**—अत्यधिक; **धनस्य**—धन का; **चौरैः**—चोरों द्वारा; **प्रभो**—हे प्रभु; **बलिभिः**—बलवान; **इन्द्रिय**—इन्द्रियाँ; **नामधेयैः**—नाम वाली; **मोह**—मोह के; **अन्धकूप**—अन्धकार से भरे कुएँ के; **कुहरे**—गर्त में; **विनिपातितस्य**—गिराये हुए; **देव**—देवताओं के; **ईश**—हे परम नियन्ता; **देहि**—दीजिए; **कृपणस्य**—इस अभागे व्यक्ति को; **कर**—हाथ का; **अवलम्बम्**—सहारा।

अनुवाद

हे प्रभु! मेरी इन्द्रियों रूपी शक्तिशाली चोरों ने मेरी सर्वाधिक मूल्यवान सम्पत्ति, मेरा विवेक चुराकर मुझे अंधा कर दिया है और मुझे मोह के गहरे अन्धकूप में फेंक दिया है। हे देवाधिदेव! अपना हाथ बढ़ायें और इस दुष्टात्मा को बचा लें।

तात्पर्य

राजा कुलशेखर ने २०, २६, ३१ तथा ३४ वें श्लोकों में अपनी इन्द्रियों को भगवान् की सेवा करने का आदेश दिया है। किन्तु अब उन्हीं इन्द्रियों ने उन्हें खींचकर मोह के कूप में डाल दिया है। निस्सन्देह, राजा कुलशेखर मुक्त तथा भगवान् के शुद्ध भक्त हैं और हमें शिक्षा देने के लिए पतित बद्ध आत्मा का अभिनय कर रहे हैं। फिर भी कोई यह पूछ सकता है कि कुलशेखर पहले हमें इन्द्रियों को भगवान् की सेवा के समुचित कार्यों में लगाने का विवरण देकर फिर क्यों निरुपाय जीव को मोह के कूप में डालने वाली अनियन्त्रित इन्द्रियों का भयावह चित्र खींचकर हतोत्साहित कर रहे हैं।

इसका उत्तर यह है कि राजा कुलशेखर हमारे समक्ष उन विकल्पों का यथार्थ चित्र प्रस्तुत कर रहे हैं, जिनका जीव को माया के चंगुल में पड़कर सामना करना पड़ता है। यदि हम अपने आपको माया की शक्तियों से छुड़ाना चाहते हैं, तो हमें उसका गम्भीर चित्र प्राप्त करने की आवश्यकता होगी। *ईशोपनिषद्* (११) में कहा गया है—

विद्यां चाविद्यां च यस्तद् वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥

"जो व्यक्ति एकसाथ अविद्या तथा दिव्य ज्ञान की विधि को सीख सकता है, वह बारम्बार जन्म तथा मृत्यु के प्रभाव को लाँघ सकता है तथा अमरता के वर का पूरी तरह आनन्द ले सकता है।" मनुष्य को चाहिए कि वह सीमित इन्द्रियभोग के साथ साथ *विद्या* अथवा दिव्य ज्ञान को चुने। हमें अविद्या की शिक्षा इसलिए दी जाती है कि हम इसके घातक परिणामों से भलीभाँति अवगत हो सकें। तब हम इसका प्रबलतापूर्वक परित्याग करके अपने मन तथा इन्द्रियों को पूरी तरह से कृष्ण की भक्तिमय सेवा में लगा सकते हैं। जैसाकि भगवद्गीता (६.५) में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं, "मनुष्य को चाहिए कि अपने मन की सहायता से अपने आपको ऊपर उठाए और नीचे न गिरने दे। यह मन बद्धजीव का मित्र भी है और साथ ही शत्रु भी।"

कोई अपनी सारी प्रतिभा को किस तरह कृष्ण की सेवा में लगा सकता है, इसका उदाहरण महाराज अम्बरीष ने प्रस्तुत किया है, जिन्होंने अपने मन को भगवान् के चरणकमलों का ध्यान करने, अपनी वाणी को भगवान् के दिव्य गुणों का गान करने, अपने हाथों को मन्दिर बुहारने, अपने कानों को भगवान् की लीलाएँ सुनने, अपने नेत्रों को भगवान् के दिव्य रूपों को देखने, अपने शरीर को भगवद्भक्तों के शरीरों का स्पर्श करने, अपनी घ्राणेन्द्रिय को अर्चाविग्रह पर चढ़े फूलों की सुगन्ध सूँघने, अपनी जीभ को भगवान् पर अर्पित तुलसी दल का आस्वादन करने, अपने पाँवों को उन पवित्र स्थलों में जाने जहाँ पर भगवान् के मन्दिर स्थित हैं, अपने सिर को भगवान् को विनयपूर्वक नमस्कार करने तथा अपनी इच्छाओं को भगवान् की इच्छाएँ पूरी करने में लगा दिया।

यदि इतनी चेतावनियों के बावजूद हम अपनी इन्द्रियों के आदेशों का

अन्धाधुन्ध पालन करते हैं, तो वे इन्द्रियाँ हमें गहन मोह के गर्त में खींच ले जाएँगी, जिस तरह बिना लगाम वाला घोड़ा रथ को गड्ढे में डाल सकता है। यदि ऐसा होता है—यदि हम अति पापमय जीवन की गहराई में जा गिरते हैं—तब तो एकमात्र उपाय यही रह जाता है कि हम निष्ठापूर्वक भगवान् को हमें इस से निकालने के लिए पुकारें। राजा कुलशेखर द्वारा प्रयुक्त रूपक काल्पनिक नहीं है, क्योंकि भारत में व्यक्ति कभी कभी ऐसे सुखे हुए गहरे अन्धकूप में गिर जाता है। यदि वह गिरने पर भी बच जाता है, तो कुएँ के तल से वह अपने आप बाहर नहीं आ सकता।

इसी तरह हम अपने आपको भौतिक जीवन रूपी गहरे कुएँ से तब तक बाहर नहीं निकाल सकते, जब तक कि हम कृष्ण या उनके प्रतिनिधि द्वारा डाली गई कृपा रूपी रस्सी को पकड़ न लें। श्रील रूप गोस्वामी *स्तव माला* में प्रार्थना करते हैं—

मनसिजफणिजुष्टे लब्धपातोऽस्मि दुष्टे
तिमिरगहनरूपे हन्त संसारकूपे।
अजित निखिलरक्षाहेतुमुद्धार दक्षां
उपनय मम हस्ते भक्तिरज्जुं नमस्ते॥

"हाय! मैं संसार रूपी गहरे, अंधेरे तथा गन्दे कुएँ में गिर गया हूँ, जिसमें कामेच्छा रूपी सर्प रहता है। हे अजेय प्रभु! भक्ति रूपी रस्सी हर प्रकार की सुरक्षा का कारण है और पतितात्माओं का उद्धार करने में समर्थ है। कृपया वह रस्सी मेरे हाथों में थमा दें। मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।"

इसी भाव में श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी अपने ग्रन्थ *मनःशिक्षा* (५) में कहते हैं—

असच्चेष्टाकष्टप्रदविकटपाशालिभिरिह
प्रकामं कामादिप्रकटपथपातिव्यतिकरैः।
गले बद्ध्वा हन्येऽहमिति बकभिद्वर्त्मपगणे
कुरु त्वं फुत्कारानवति स यथा त्वं मन इतः॥

"काम तथा लोभ और उसके साथी लुटेरों ने मुझे पकड़कर पापकृत्यों की भयावह रस्सियों से मेरे गले को बाँध दिया है। हे मन! तुम [illegible] के लिए चिल्लाओ, 'हे कृष्ण! हे बकासुर के हन्ता, मैं मृत्यु के निकट हूँ।'

यदि तुम ऐसा करोगे, तो कृष्ण निश्चय ही मुझे बचा लेंगे।"

खतरे की जानकारी होना स्वयं में आशीर्वाद है। यदि हम मृत्यु तथा पुनर्जन्म की विपत्ति को पास आते देखते हैं, तो स्वभावतः हम सहायता के लिए कृष्ण को पुकारते हैं। किन्तु यदि हम अज्ञान में पड़े रहते हैं, तो हम मूर्खतावश इन्द्रिय सुखभोग करने का प्रयास करते रहेंगे और यह नहीं समझ पाएँगे कि इन्द्रियतृप्ति हमें जन्म-मृत्यु के चक्र में फँसा देगी। किन्तु यदि हम कृष्ण को पुकारेंगे, इस पूरी समझ के साथ कि हम मृत्यु के खतरे में हैं और भगवान् ही हमारे एकमात्र रक्षक हैं, तो समझिये कि हम बच गये।

श्लोक ३७

इदं शरीरं परिणामपेशलं
पतत्यवश्यं शतसन्धिजर्जरम्।
किमौषधं पृच्छसि मूढ दुर्मते
निरामयं कृष्णरसायनं पिब॥ ३७॥

इदम्—यह; **शरीरम्**—शरीर; **परिणाम**—देहान्तरण के अधीन; **पेशलम्**—आकर्षक; **पतति**—नीचे गिरता है; **अवश्यम्**—अवश्य ही; **शत**—सैकड़ों; **सन्धि**—जोड़; **जर्जरम्**—क्षीण होकर; **किम्**—क्यों; **औषधम्**—दवा के लिए; **पृच्छसि**—पूछ रहे हो; **मूढ**—मोहग्रस्त; **दुर्मते**—रे मूर्ख; **निरामयम्**—निरोग करने वाले; **कृष्ण**—कृष्ण का; **रस-अयनम्**—अमृत; **पिब**—पियो।

अनुवाद

इस शरीर का सौन्दर्य क्षणिक है और बुढ़ापे में जब इसके सैकड़ों जोड़ ऐंठ जाएँगे, तो इसकी मृत्यु होनी निश्चित है। तो फिर मोहग्रस्त मूर्ख! तू क्यों दवा माँग रहा है? बस, कृष्णामृत को ग्रहण कर, जो अचूक उपचार है।

तात्पर्य

प्रायः युवा लोग आने वाले बुढ़ापे तथा मृत्यु की चेतावनियों के प्रति आँख-कान बन्द किये रहते हैं। संवेगशील युवक सोच सकता है कि ऐसी चेतावनियाँ तो पुराने लोगों के लिए हैं, जो यह नहीं जानते कि भोग कैसे किया

जाता है। अनेक तथाकथित दार्शनिकजन इस भोगवादी प्रवृत्ति को बढ़ावा देते हैं और राजा कुलशेखर इस श्लोक में इसी प्रवृत्ति की भर्त्सना कर रहे हैं। भोगवादी लोग सलाह देते हैं, "जब तक जवान हो, तब तक जी भरकर मौज कर लो, क्योंकि जीवन तो एक बार ही मिलता है।" यह सलाह नैतिक रूप से तो अनुचित है ही, किन्तु इसका आधार भी झूठा है, क्योंकि वैदिक ज्ञान के अनुसार हमारा वर्तमान जीवन हमारे असंख्य जीवनों की शृंखला में केवल एक है, जिन्हें हमने अनुभव किया है और आगे भी अनुभव करेंगे। इस तरह भोगवाद विनाश का नुस्खा है, क्योंकि गुमराह जवानी के पापकर्मों के फल हमें इस जीवनकाल में तथा अगले जीवन में भुगतने ही होंगे। श्रील भक्ति विनोद ठाकुर अपने 'शरणागति' गीत में उस बद्धात्मा की कथा का रेखाचित्र प्रस्तुत करते हैं, जो अपने अल्प जीवन को व्यर्थ गँवा देता है—

> "मैं सांसारिकता रूपी दारुण विष को अमृत समझकर पी गया और अब मेरे जीवन का सूर्य अस्त हो रहा है। इतनी जल्दी बुढ़ापा आ गया और सारा सुख जाता रहा। रोग से विदलित, दुखित तथा क्षीण हुआ मैं अपनी समस्त इन्द्रियों को निर्बल पा रहा हूँ, मेरा शरीर छिन्न-भिन्न हो चुका है और समाप्तप्राय है और मेरा उत्साह तरुणाई के आनन्दों के अभाव में समाप्त हो गया है।"
>
> "चूँकि मुझमें रंचभर भी भक्ति नहीं है और मैं समस्त बोध से विहीन हूँ, इसलिए भला अब मेरे लिए कौन सा आश्रय रह गया है? हे प्रभु, हे पतितों के मित्र! केवल आप ही मेरी सहायता कर सकते हैं। निश्चित रूप से मैं पतित हूँ, महा अधम हूँ। अतः आप मुझे उबारकर अपने चरणकमलों में रख लें।"

राजा कुलशेखर उस मूर्ख वृद्ध पुरुष की भर्त्सना करते हैं, जो अपने गिरते स्वास्थ्य के लिए कोई औषधि ढूँढ़ना ही एकमात्र उपाय मानता है। इस भौतिक जगत में कोई भी औषधि बुढ़ापे तथा रोग को नहीं रोक सकती, भले ही

आधुनिक ऐलोपैथिक दवाएँ कुछ काल के लिए लक्षणों को ढक लें। एकमात्र औषधि जिससे वास्तव में राहत मिल सकती है, वह कृष्णामृत अर्थात् कृष्णभावनामृत है। वृद्धावस्था में कृष्ण के स्थान पर पूर्णतया डाक्टरों पर निर्भर होना निरी मूर्खता होगी।

भारत में तीर्थस्थानों में, विशेषतया वृन्दावन में, वृद्ध लोगों में भक्तिभाव का बोध देखा जा सकता है। वहाँ पर भोर होते ही वृद्ध लोग अत्यधिक भक्ति के साथ मन्दिरों में जाते दिखते हैं। सैकड़ों वृद्ध पुरुष शारीरिक अक्षमताओं के बावजूद परिक्रमा करते हैं। कुछ लोगों का शरीर बिल्कुल झुका हुआ रहता है। कोई यह आलोचना कर सकता है कि इन लोगों को पाश्चात्य चिकित्सा की सुविधा क्यों नहीं दी जाती, जिससे ये कुछ दिन और जीवित रहें या अपने कष्ट को कम कर सकें? किन्तु वृन्दावन के निष्ठावान् बाबाजी तथा विधवाएँ, जो कृष्ण का दर्शन करने के लिए 'जय राधे' बोलते हुए किसी तरह हर सुबह निकल पड़ते हैं, सचमुच भाग्यशाली तथा परम बुद्धिमान हैं। वे *कृष्ण रसायन* ग्रहण करते हैं—वह अमृत जो उन्हें कृष्णधाम में शाश्वत जीवन प्रदान करने वाला है। वैदिक शास्त्रों की संस्तुति है कि इस अमृत (रसायन) को जीवन के प्रारम्भ से ही पिया जाये, किन्तु यदि कोई प्रारम्भ ऐसा नहीं कर पाया, तो उसे ढलते जीवन में उसे पीना ही चाहिए और इस तरह बारम्बार जन्म-मृत्यु के रोग से छुटकारा पा लेना चाहिए।

श्लोक ३८

आश्चर्यमेतद्धि मनुष्यलोके
सुधां परित्यज्य विषं पिबन्ति।
नामानि नारायणगोचराणि
त्यक्त्वान्यवाचः कुहकाः पठन्ति॥ ३८॥

आश्चर्यम्—आश्चर्य; **एतत्**—यह; **हि**—निस्सन्देह; **मनुष्य**—मनुष्यों के; **लोके**—संसार में; **सुधाम्**—जीवनदायी अमृत को; **परित्यज्य**—त्यागकर; **विषम्**—विष को; **पिबन्ति**—पीते हैं; **नामानि**—नामों को; **नारायण-गोचराणि**—नारायण से सम्बन्धित; **त्यक्त्वा**—छोड़कर; **अन्य**—दूसरे; **वाचः**—शब्द; **कुहकाः**—धूर्तजन; **पठन्ति**—पढ़ते हैं, लेते हैं।

अनुवाद

मानव समाज का सबसे बड़ा आश्चर्य यह है कि लोग न सुधरने पर इतने अड़े हुए हैं कि वे नारायण के नामों के जीवनदायी अमृत को छोड़कर अन्य सब कुछ बोल कर विषपान कर लेते हैं।

तात्पर्य

यह श्लोक हमें *महाभारत* के श्लोक (वनपर्व ३१३.११६) का स्मरण कराता है, जिसमें महाराज युधिष्ठिर अपने पिता यमराज के इस प्रश्न का यह उत्तर देते हैं कि, "इस जगत में सर्वाधिक आश्चर्यजनक वस्तु क्या है?"

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम्।
शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्॥

"इस संसार में प्रतिदीन असंख्य जीव मृत्यु लोक को जाते हैं; फिर भी जो बचे रहते हैं, वे यहाँ पर स्थायी पद की आकांक्षा करते हैं। भला इससे बढ़कर आश्चर्य की बात और क्या हो सकती है?"

राजा कुलशेखर तथा महाराज युधिष्ठिर दोनों ने ही *आश्चर्यम्* शब्द का प्रयोग आश्चर्यजनक रूप से मूर्ख के अर्थ में किया है। युधिष्ठिर महाराज चकित होते हैं कि लोग इतने मूर्ख तथा आत्मघाती कैसे हो सकते हैं कि वे सिर पर खड़ी मृत्यु को पहचानने से इन्कार करते हैं और इस तरह अगले जीवन की तैयारी करने के बजाय अपने अल्पकालीन मनुष्य जीवन का दुरुपयोग करते हैं। राजा कुलशेखर अचम्भित होते हैं कि लोग ईश्वर के पवित्र नामों का जप नहीं करते, यद्यपि इस सरल कार्य से उन्हें शाश्वत जीवन प्राप्त हो सकता है। यह आश्चर्यजनक है कि लोग आनन्द से नामामृत का पान करने के बजाय सांसारिक वार्तालाप रूपी विष का पान करते हैं। जैसा हम पहले भी कह चुके हैं, श्रील प्रभुपाद ने ऐसे सांसारिक 'जप' की तुलना मेंढक की टर्र टर्र से की है, जो साँप को अर्थात् मृत्यु को आकृष्ट करती है।

कोई यह तर्क कर सकता है कि पवित्र नाम का जप ही सब कुछ नहीं है। क्या हम ब्रह्म का ध्यान तथा अन्य दार्शनिक विषयों पर विचार-विमर्श नहीं कर सकते? आखिर, राजा कुलशेखर हमारी भर्त्सना केवल इसीलिए क्यों करते हैं कि हम ईश्वर के नामों का जप नहीं करते? इसका कारण यह है कि

पवित्र नाम का जप सारी मानवता को, युगधर्म के रूप में, सीधे प्रदान किया गया है। योग, ध्यान जैसी आध्यात्मिक विधियाँ विगत युगों के लिए संस्तुत की गईं थीं, जब परिस्थितियाँ अधिक अनुकूल थीं। समस्त वैदिक शास्त्रों तथा आध्यात्मिक अधिकारियों ने इस युग के लिए पवित्र नाम के जप की ही सबसे सरल और सर्वोच्च विधि के रूप में संस्तुति की है। इसको नकारना दुराग्रह और मूर्खता है।

१९७० में जब कृष्णभावनामृत आन्दोलन के भक्तगण बर्कले, कैलीफोर्निया में प्रतिदिन हरिनाम का कीर्तन करते थे, तो कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के दर्शनशास्त्र तथा दक्षिण एशियाई भाषाओं के प्रोफेसर डा. जे. एफ. स्टाल ने एक समाचार पत्र को दिये गये साक्षात्कार में यह आपत्ति जताई थी कि कृष्णभावनामृत आन्दोलन प्रामाणिक नहीं है, क्योंकि "(भक्तगण) दर्शन को विकसित करने के लिए कीर्तन में अत्यधिक समय व्यय कर रहे हैं।" इसके बाद श्रील प्रभुपाद तथा डा. स्टाल के बीच पत्रों का जो आदान-प्रदान हुआ, उसमें श्रील प्रभुपाद ने यह सिद्ध करने के लिए कि आध्यात्मिक प्रगति के लिए अन्य सारी विधियों में से कीर्तन पर बल दिया जाना चाहिए, अनेक शास्त्रों के उद्धरण दिये। डा. स्टाल ने कहा था कि *भगवद्गीता* में निरन्तर कीर्तन करने की संस्तुति नहीं की गई है, किन्तु श्रील प्रभुपाद ने उन्हें *भगवद्गीता* के नवें अध्याय के चौदहवें श्लोक का स्मरण दिलाया, जिसमें कृष्ण ने महात्माओं के विषय में कहा है—*सततं कीर्तयन्तो माम्*—वे सदैव मेरी महिमा का कीर्तन करते हैं।

श्रील प्रभुपाद ने *भगवद्गीता* ही नहीं *श्वेताश्वतर उपनिषद्* तथा *नारदपञ्चरात्र* से अन्य श्लोक उद्धृत किये, जो हरे कृष्ण मन्त्र के कीर्तन की महत्ता की पुष्टि करते हैं। जब प्रोफेसर स्टाल ने यह उत्तर दिया कि वे भी वैदिक निष्कर्ष के विपरीत उद्धरण दे सकते हैं, तो प्रभुपाद ने स्वीकार किया कि इस तरह का उत्तर-प्रत्युत्तर बिना निर्णय के सदा सदा चल सकता है। इसलिए प्रभुपाद ने सुझाव दिया कि व्यर्थ ही तर्क करने के बजाय उन्हें श्रीचैतन्य महाप्रभु जैसे निष्पाप महाजन के निर्णय को स्वीकार करना चाहिए। श्रील प्रभुपाद ने यह बात भी सामने रखी कि पवित्र नाम कीर्तन की प्रभावशालिता का निर्णय यह देखकर किया जा सकता है कि पश्चिमवासी तरुण

किस तरह इस विधि का पालन करने मात्र से भगवान् के पवित्र भक्त बन रहे हैं।

यदि दिव्य विषयों पर कल्पना-परस्त विवेचना पवित्र नाम कीर्तन से कम महत्त्वपूर्ण हो सकती है, तो फिर संसारी वार्तालाप तो सर्वथा व्यर्थ हैं। दुर्भाग्यवश, अधिकांश लोगों को पता ही नहीं है कि मनुष्य जीवन का लक्ष्य जन्म-मृत्यु से मुक्ति पाना है। इसलिए वे सुबह से लेकर शाम तक खुद की मुक्ति से सर्वथा अप्रासंगिक गपशप में लगे रहने में कोई बुराई नहीं मानते। आचार्यगण उन्हें इस प्रकार से अपने जीवन को व्यर्थ गंवाने की मूर्खता के बारे में असंख्य बार चेतावनी देते रहते हैं और भौतिक प्रकृति भी उन्हें कड़ी चेतावनी देती रहती है कि यहाँ पर स्थायी सुख की खोज करना स्वप्नवत् है। किन्तु "आश्चर्य की बात" तो यह है कि लोग अपनी मरणशीलता की उपेक्षा करके सांसारिक वार्तालाप रूपी घातक विष के लिए पवित्र नामों रूपी जीवनप्रद अमृत को लेने से इन्कार करते हैं।

श्लोक ३९

त्यजन्तु बान्धवाः सर्वे निन्दन्तु गुरवो जनाः।
तथापि परमानन्दो गोविन्दो मम जीवनम्॥ ३९॥

त्यजन्तु—भले ही मेरा परित्याग कर दें; **बान्धवाः**—कुटुम्बीजन; **सर्वे**—समस्त; **निन्दन्तु**—भले ही भर्त्सना करें; **गुरवः**—वरिष्ठ; **जनाः**—व्यक्ति; **तथा अपि**—फिर भी; **परम**—परम; **आनन्दः**—आनन्द रूप; **गोविन्दः**—भगवान् गोविन्द; **मम**—मेरे; **जीवनम्**—प्राणाधार।

अनुवाद

चाहे मेरे सारे कुटुम्बीजन मेरा परित्याग कर दें और मेरे वरिष्ठजन मेरी निन्दा करें, फिर भी परम आनन्दमय गोविन्द मेरे प्राणाधार बने हुए हैं।

तात्पर्य

भले ही सामान्य लोग भगवद्भक्तों की निन्दा अज्ञानी मूर्ख के रूप में करें, किन्तु असली विद्वान ऐसा कभी नहीं करते। जैसाकि प्रह्लाद महाराज कहते हैं, "जिसने नवधा भक्ति के माध्यम से अपना जीवन कृष्ण को अर्पित कर दिया है, उसे सर्वाधिक विद्वान व्यक्ति मानना चाहिए, क्योंकि उसने पूर्ण ज्ञान प्राप्त

कर लिया है।" (*भागवत* ७.५.२४) किन्तु कलियुग में लोग अज्ञानवश पवित्र भक्तों का उपहास करते हैं और सरकारी, मनोरंजन तथा खेलकूद के आसुरी नायकों की प्रशंसा करते हैं। राजा कुलशेखर तथा अन्य सन्तों के उदाहरणों से साहस बटोरकर भक्तों को, यदि सामान्य लोग उनका अनादर करें, तो उन्हें लज्जा का अनुभव नहीं करना चाहिए। किन्तु उन्हें इसकी पर्याप्त चिन्ता रहनी चाहिए कि वैष्णवजन तथा परमेश्वर उनके आचरण से प्रसन्न हों।

देवर्षि नारद तक को उनकी भक्ति के लिए निन्दित किया गया—दक्ष ने उन्हें शाप दे डाला, क्योंकि उन्होंने दक्ष के पुत्रों को वैराग्य की शिक्षा दी। किन्तु नारद सहनशील बने रहे और घूम घूमकर प्रचार करने में लगे रहे। नारद तथा उनके उदाहरण का पालन करने वाले भक्तों का उद्देश्य लोगों के जीवन में विघ्न उत्पन्न करना नहीं है, किन्तु यदि उनके कार्य का गलत अर्थ लगाया जाता है, तो उन्हें अपना कार्य छोड़ना नहीं चाहिए, अपितु भगवान् के लिए उन्हें अपना कार्य चालू रखना चाहिए। श्रील प्रभुपाद ने लिखा है, "चूँकि नारद मुनि तथा उनकी शिष्य परम्परा के सदस्य मैत्री तथा पारिवारिक जीवन में विघ्न डालते हैं, अतः कभी कभी उन पर *सौहृदघ्न,* अर्थात् "पारिवारिक जनों के बीच शत्रुता उत्पन्न करने वाले" होने का आरोप लगाया जाता है। वस्तुतः वे प्रत्येक जीव के मित्र होते हैं (*सुहृदं सर्वभूतानाम्*) किन्तु उन्हें गलतफहमी से शत्रु मान लिया जाता है। प्रचार करना कठिन एवं अकृतज्ञ कार्य है, किन्तु प्रचारक को परमेश्वर के आदेशों का पालन करना चाहिए और भौतिकतावादी लोगों से निडर रहना चाहिए।" (*भागवत* ६.५.३९ तात्पर्य) निष्कर्ष यह है कि भक्त को अपना कर्तव्य निभाते समय प्रसन्न रहना चाहिए और उसमें "उत्पीड़न भावना" उत्पन्न नहीं होनी चाहिए।

यहाँ पर राजा कुलशेखर ने जो मनोभाव व्यक्त किये हैं, उनकी गूँज श्री माधवेन्द्र पुरी के एक श्लोक में भी सुनाई पड़ती है, "कटु नैतिकतावादी लोगों को मुझ पर मायाग्रस्त होने का आरोप लगाने दो, मुझे इसकी परवाह नहीं है। वैदिक कर्मकाण्डी मुझे दिग्भ्रमित कहकर मेरी निन्दा करें, मित्रगण तथा स्वजन मुझे हताश कहें, मेरे भ्रातागण मुझे मूर्ख कहें, धनलोलुप मुझे पागल बतलाएँ तथा विद्वान दार्शनिक बार बार मुझे अत्यधिक घमंडी कहें, तो वे ऐसा करते रहें। इतने पर भी मेरा मन गोविन्द के चरणारविन्दों की सेवा करने के

संकल्प से रंच भर भी टस से मस नहीं होता, यद्यपि मैं ऐसा करने में असमर्थ हूँ।

श्लोक ४०

सत्यं ब्रवीमि मनुजाः स्वयमूर्ध्वबाहु-
र्यो यो मुकुन्द नरसिंह जनार्दनेति।
जीवो जपत्यनुदिनं मरणे रणे वा
पाषाणकाष्ठसदृशाय ददात्यभीष्टम्॥ ४०॥

सत्यम्—सच; **ब्रवीमि**—कह रहा हूँ; **मनुजाः**—हे मनुष्यो; **स्वयम्**—स्वयं; **ऊर्ध्व**—उठी हुई; **बाहुः**—भुजाएँ; **यः यः**—जो जो; **मुकुन्द नरसिंह जनार्दन**—हे मुकुन्द, नरसिंह, जनार्दन; **इति**—ऐसा कहते हुए; **जीवः**—जीव; **जपति**—जप करता है; **अनु-दिनम्**—नित्यप्रति; **मरणे**—मृत्यु के समय; **रणे**—युद्ध में; **वा**—अथवा; **पाषाण**—पत्थर; **काष्ठ**—लकड़ी; **सदृशाय**—के समान; **ददाति**—देता है; **अभीष्टम्**—मनवांछित।

अनुवाद

हे मनुष्यो! मैं अपनी भुजाएँ ऊँची उठाकर सत्य वचन कह रहा हूँ। जो भी मर्त्य प्राणी मुकुन्द, नृसिंह तथा जनार्दन नामों का नित्यप्रति जप करता है, वह चाहे युद्ध में हो या मृत्यु के समक्ष हो, अपनी सर्वाधिक अभीष्ट आकांक्षाओं को पत्थर या काठ के टुकड़े जैसा मानने लगेगा।

तात्पर्य

आत्म-सुधार के लिए प्रयत्नशील लोग भी यह जानते हैं कि अभीष्ट आकांक्षाओं को दबा पाना अत्यन्त कठिन है। कभी कभी ये आकांक्षाएँ इतनी आडम्बरपूर्ण होती हैं कि हम उन्हें गुप्त रखते हुए भी मन ही मन चाहते रहते हैं। एक गैर-प्रतिभाशाली व्यक्ति सोचता है कि एक दिन वह विश्व का तानाशाह बन सकेगा। ऐसा कवि जिसकी कोई कृति नहीं छपी, द्वितीय शेक्सपियर बनने का स्वप्न देखता है। भौतिकतावादी लोग सदा ही अपनी आकांक्षा को वर्धित करते रहने के लिए प्रोत्साहित किये जाते हैं, यहाँ तक कि बच्चे भी अपने अभिभावकों द्वारा 'आगे बढ़ने' के लिए प्रोत्साहित किये जाते हैं।

किन्तु भगवान् के शुद्ध भक्त भलीभाँति जानते रहते हैं कि समस्त सांसारिक आकांक्षाएँ व्यर्थ हैं। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर हमें उपदेश देने के उद्देश्य से अपने ही मन की आलोचना करते हुए पूछते हैं, "तुम यश के पीछे क्यों पड़े हो? क्या तुम यह नहीं जानते कि यह सूकर-मल की तरह व्यर्थ है?" श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी भी ऐसे ही रूपक द्वारा अपने ग्रन्थ 'मनः शिक्षा' में अपने मन की आलोचना करते हुए यशोलिप्सा की तुलना हृदय में नाचते गंदे चांडाल से करते हैं। तो, भक्तों को चाहिए कि वे सदैव सतर्क रहें कि नाम, यश तथा उच्च पद की सूक्ष्म इच्छा, जो प्रतिष्ठा कहलाती है, हृदय के भीतर उठने न पाए, क्योंकि यह कृष्णप्रेम को उसमें प्रवेश करने से रोक देती है।

भक्त के विपरीत एक निर्विशेषवादी अपने मन को भौतिकतावादी आकांक्षा से पूरी तरह विलग नहीं कर पाता। यदि वह कुछ स्थूल आकांक्षाओं को दमित कर भी ले, तो भी वह 'ईश्वर बनने' की असम्भव इच्छा को बनाये रखता है। श्रील प्रभुपाद ने भगवान् के साथ हर तरह से एक होने की उस इच्छा को "माया का आखिरी फन्दा" कहा है। जब कृष्ण देवकी के गर्भ में थे, तो देवताओं ने उनकी स्तुति करते समय निर्विशेषवादियों द्वारा वांछित परम सत्य से तदाकार होने की तथाकथित मुक्ति के विषय में इस प्रकार कहा है—

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिन-
स्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः
पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः॥

"हे कमलनयन प्रभु! सर्वोच्च पद प्राप्त करने की इच्छा से कठिन तपस्या करने वाले अभक्तगण यद्यपि अपने आपको मुक्त हुआ मानते हैं, किन्तु उनकी बुद्धि अशुद्ध रहती है। वे अपने कल्पित उच्च पद से नीचे गिर जाते हैं, क्योंकि उनमें आपके चरणकमलों के प्रति कोई आदरभाव नहीं रहता।" (*भागवत* १०.२.३२)

राजा कुलशेखर हमें सलाह देते हैं कि हम किस तरह अपने आपको समस्त भौतिक आकांक्षाओं से मुक्त करें। वे कहते हैं, हमें चाहिए कि हम

भगवान् के पवित्र नामों—मुकुन्द, नृसिंह तथा जनार्दन नामों का जप करें। ये सब कृष्ण के नाम हैं, अतः ये सभी महामन्त्र—*हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे। हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे*—में सम्मिलित हैं। कृष्ण के नामों का जप करने से उनके प्रति प्रेम जागृत होता है और तब व्यक्ति की सारी भौतिक आकांक्षाएँ लुप्त हो जाती हैं। श्रील प्रभुपाद कहा करते थे कि जिस तरह यदि किसी को दस लाख डालर मिल जाएँ, तो उसकी दस डालर तथा सौ डालर की सारी समस्याएँ स्वतः ही हल हो जाती हैं, उसी तरह जब हम शुद्ध कृष्णप्रेम प्राप्त कर लेते हैं, तो हमारी क्षुद्र भौतिक आवश्यकताएँ तथा इच्छाएँ तुच्छ हो जाती हैं। शुद्ध भावमग्न प्रेम में भगवन्नाम का जप भक्त को भगवान् के अद्भुत रूपों, गुणों तथा लीलाओं के प्रत्यक्ष सम्पर्क में लाने वाला है। ऐसी अवस्था में भक्त पूर्णतया तुष्ट हो जाता है और उसकी समस्त अहंकारवादी इच्छा समाप्त हो जाती हैं। वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की पूजा, सेवा करने तथा भगवान् के साथ होने मात्र से सुखी बन जाता है।

ध्रुव महाराज की जीवन कथा कृष्णभावनामृत द्वारा शुद्ध बनाने की शक्ति का दृष्टान्त प्रस्तुत करने वाली है। ध्रुव महाराज ने भौतिक राजपद पाने के लिए परमेश्वर की खोज की। किन्तु जब वे कठिन तपस्या कर चुके और साक्षात् भगवान् विष्णु के समक्ष आये, तो उन्होंने कहा, *स्वामिन् कृतार्थोऽस्मि वरं न याचे*—"हे प्रभु! मैं पूर्णतया तुष्ट हूँ। मैं आपसे इन्द्रियतृप्ति के लिए कोई वर नहीं माँग रहा।" (*हरिभक्ति सुधोदय*)

हर व्यक्ति के भीतर ईशप्रेम सुप्त रहता है और उस प्रेम की अनुभूति होना ही शुद्धतम इच्छा की पूर्ति है। वैष्णव आचार्यगण हमें कभी भी यह सलाह नहीं देते कि हम अपने महत्त्वाकांक्षी आत्मा का हनन करें, प्रत्युत वे निर्देश देते हैं कि हम अपनी रुचि को केवल शुद्ध भक्ति के लिए जागृत करें।

श्लोक ४१

नारायणाय नम इत्यमुमेव मन्त्रं
संसारघोरविषनिर्हरणाय नित्यम्।
शृण्वन्तु भव्यमतयो यतयोऽनुरागाद्
उच्चैस्तरामुपदिशाम्यहमूर्ध्वबाहुः ॥ ४१ ॥

नारायणाय नमः इति—"नारायण को नमस्कार"; **अमुम्**—यह; **एव**—निस्सन्देह; **मन्त्रम्**—आवाहन; **संसार**—संसार-चक्र का; **घोर**—भयावह; **विष**—विष से; **निर्हरणाय**—उद्धार के लिए; **नित्यम्**—सदैव; **शृण्वन्तु**—वे सुनें; **भव्य**—अच्छी; **मतयः**—बुद्धि का; **यतयः**—यती या संन्यासीजन; **अनुरागात्**—प्रेमवश; **उच्चैःतराम्**—अत्यन्त ऊँचे स्वर से; **उपदिशामि**—सलाह दे रहा हूँ; **अहम्**—मैं; **ऊर्ध्व-बाहुः**—बाहें ऊपर उठाये।

अनुवाद

मैं अपनी भुजाएँ उठाकर उच्च स्वर में यह दयापूर्ण सलाह यथासम्भव जोर से पुकारकर दे रहा हूँ—यदि संन्यासी लोग भीषण विषाक्त भौतिक जीवन से उबरना चाहते हैं, तो उन्हें इतना सद्ज्ञान होना चाहिए कि वे *ॐनमोनारायणाय* मन्त्र का निरन्तर श्रवण करें।

तात्पर्य

राजा कुलशेखर यह श्लोक उन लोगों को सम्बोधित करते हुए कह रहे हैं, जो संन्यासी हैं और साथ ही बुद्धिमान भी—ऐसे दो गुण जो पूर्णतया कृष्णभावनाभावित होने के लिए अनिवार्य हैं।

जहाँ तक संन्यास की बात है, यह योग पथ पर आगे बढ़ने के लिए आधारस्वरूप है। *भगवद्गीता* (६.२) में भगवान् कृष्ण कहते हैं, "जिसे संन्यास कहते हैं, उसे ही तुम योग अर्थात् स्वयं को परम पुरुष से जोड़ना समझो, क्योंकि इन्द्रियतृप्ति की इच्छा का त्याग किये बिना कोई मनुष्य योगी नहीं बन सकता।" कुलशेखर के इस श्लोक में आया *यतयः* शब्द, जिसका अनुवाद संन्यासी जन किया गया है, न केवल औपचारिक संन्यास आश्रम स्वीकार करने वालों के लिए है, अपितु उन लोगों के लिए भी प्रयुक्त है, जिन्होंने त्याग की भावना स्वीकार की हो। कृष्ण ने संन्यास को इस प्रकार परिभाषित किया है, "जो पुरुष अपने कर्मफल के प्रति अनासक्त है और अपने कर्तव्य का पालन करता है, वही संन्यासी और असली योगी है न कि वह जो न तो अग्नि जलाता है और न कर्म करता है।" (*भगवद्गीता* ६.१) दूसरे शब्दों में, यदि कोई निःस्वार्थ भाव से एकमात्र कृष्ण की तुष्टि के लिए कर्म करता है, तो समझो कि उसने असली संन्यास पा लिया।

भक्ति करने के लिए, विशेषतया भगवन्नाम जप करने के लिए बुद्धि भी

चाहिए। *श्रीमद्भागवत* में (११.५.३२) करभाजन मुनि राजा निमि से कहते हैं—

कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्र पार्षदम्।
यज्ञैः सङ्कीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः॥

"इस कलियुग में बुद्धिमान लोग भगवन्नाम के सामूहिक कीर्तन रूपी यज्ञ करेंगे और इस तरह भगवान् के उस अवतार की पूजा करेंगे, जो निरन्तर कृष्ण के नामों का गायन करते हैं। यद्यपि उनका वर्ण श्याम नहीं है, फिर भी वे स्वयं कृष्ण हैं। उनके साथ उनके संगी, सेवक, आयुध तथा अन्तरंग साथी होते हैं।"

विद्वत्ता को बुद्धिलब्धि (आई. क्यू.) परीक्षा से नहीं आँका जा सकता, बल्कि अस्थायी और स्थायी, सत्य तथा झूठ, अच्छा तथा बुरा में भेद करने की शक्ति और उसी ज्ञान के आधार पर कार्य करने की क्षमता से आँका जाता है। ऐसी असली बुद्धि केवल प्रामाणिक गुरु से श्रवण करके तथा अधिकृत वैष्णव शास्त्रों से ही प्राप्त की जा सकती है। तब स्थायी लाभ (*श्रेयस्*) प्राप्त करने के लिए त्वरित अस्थायी इन्द्रियसुखों (*प्रेयस्*) को तुरन्त त्यागने का भाव जागृत होगा। यह *श्रेयस्*, ईशप्रेम तथा जन्म-मृत्यु से मुक्ति पाना है।

पिछले दो श्लोकों में राजा कुलशेखर ने अपनी भुजाएँ उठाकर तथा यथा सम्भव जोर-जोर से पुकारकर अपनी बात बल देकर कही है। उन्हें संसार का अमूल्य रहस्य ज्ञात हो चुका है और वे उसे छिपाना नहीं चाहते। जो वस्तु—भगवन्नाम से बना मन्त्र—इतनी अमूल्य हो, उसे गुप्त नहीं रखना चाहिए। लोगों को उसकी पहुँच से वंचित नहीं रखना चाहिए, भले ही वे अयोग्य क्यों न प्रतीत होते हों। एक बार आचार्य रामानुज को उनके गुरु ने गुप्त मन्त्र यह कहकर दिया कि इसे दूसरों को प्रकट करने से उनकी आध्यात्मिक प्रगति में बाधा आएगी। किन्तु रामानुज ने जोर जोर से इस शक्तिशाली मन्त्र का उच्चारण किया और लोगों को इसकी शिक्षा दी। जब उनके गुरु ने पूछा कि उन्होंने ऐसा क्यों किया, तो रामानुज ने कहा कि यदि मन्त्र लाभप्रद है, तो हरएक को इसे प्रदान करना चाहिए, भले ही उन्हें इसके लिए नरक क्यों न जाना पड़े। यही भाव श्रीचैतन्य महाप्रभु तथा उनके संकीर्तन आन्दोलन में परिलक्षित होता है, "इसका विचार किये बिना कि किसने इसे माँगा और किसने नहीं और इसे पाने का कौन पात्र है और कौन नहीं, श्रीचैतन्य महाप्रभु ने भक्ति के फल का

वितरण किया।" (*चैतन्य चरितामृत आदि* ९.२९.३६)

विशेषत: वर्तमान युग में अधिकांश लोगों ने पर्याप्त सत्कर्म नहीं किये हैं, जिनसे उन्हें वैराग्य या उच्चतर बुद्धि प्राप्त हो सके। फिर भी शुद्ध आत्मा होने के कारण प्रत्येक जीव में मूलत: सारे सद्गुण रहते हैं। आचार्यगण तथा प्रचारकजन बद्धात्माओं को भगवन्नाम का जप करने के लिए प्रेरित करके उनके सुप्त सद्गुणों को प्रकट कराना चाहते हैं। राजा कुलशेखर संकीर्तन (सामूहिक कीर्तन) तथा जप दोनों ही रूपों में हरिनाम की संस्तुति बारम्बार करते हैं। भगवन्नाम जप के लिए बँधे-बँधाये नियम नहीं हैं, किन्तु इस युग में विशेषत: जो नियम है, वह यह है कि हर एक को ईश्वर को असंख्य नामों से पुकारने में भाग लेना चाहिए।

श्लोक ४२

चित्तं नैव निवर्तते क्षणमपि श्रीकृष्णपादाम्बुजान्
निन्दन्तु प्रियबान्धवा गुरुजना गृह्णन्तु मुञ्चन्तु वा।
दुर्वादं परिघोषयन्तु मनुजा वंशे कलङ्कोऽस्तु वा
तादृक्प्रेमधरानुरागमधुना मत्ताय मानं तु मे॥ ४२॥

चित्तम्—मन; **न एव**—कभी नहीं; **निवर्तते**—दूर भागता है; **क्षणम् अपि**—क्षणभर के लिए भी; **श्री-कृष्ण-पाद-अम्बुजात्**—श्रीकृष्ण के चरणकमलों से; **निन्दन्तु**—निन्दा करें; **प्रिय**—प्रियजन; **बान्धवा:**—तथा अन्य सम्बन्धीजन; **गुरु-जना:**—बड़े लोग; **गृह्णन्तु**—चाहे तो स्वीकार करें; **मुञ्चन्तु**—चाहे त्याग दें; **वा**—अथवा; **दुर्वादम्**—आरोप; **परिघोषयन्तु**—घोषित करते रहें; **मनुजा:**—लोग; **वंशे**—परिवार में; **कलङ्क:**—मलिनबिन्दु; **अस्तु**—हो; **वा**—अथवा; **तादृक्**—उसी तरह का; **प्रेम**—ईशप्रेम का; **धरा**—प्राचुर्य; **अनुराग**—आकर्षण के भावों की; **मधुना**—मधु से; **मत्ताय**—उन्मत्त हुआ; **मानम्**—आदर; **तु**—फिर भी; **मे**—मेरे लिए।

अनुवाद

मेरा मन क्षणभर के लिए भी श्रीकृष्ण के चरणकमलों से विमुख नहीं हो सकता, चाहे मेरे प्रियजन तथा अन्य सम्बन्धी मेरी निन्दा करें, चाहे मेरे वरिष्ठजन मुझे स्वीकारें या त्याग दें, सामान्यजन मेरे विषय में दुष्प्रचार करें, भले ही मेरे कुल की प्रतिष्ठा कलंकित हो। मुझ जैसे पागल व्यक्ति

के लिए यही सम्मान पर्याप्त है कि ईश्वर के प्रेम की इस बाढ़ का अनुभव करुँ, जो मेरे प्रभु के प्रति आकर्षण का अनुराग लाने वाली है।

तात्पर्य

राजा कुलशेखर पुनः कहते हैं कि भगवान् कृष्ण के प्रति अपनी उत्कट भक्ति के कारण वे अपयश सहने के बारे में तनिक भी चिन्तित नहीं हैं। यदि भारत में सैकड़ों वर्ष पूर्व भक्ति को लेकर ऐसी आलोचना की जाती थी, तो फिर उन आधुनिक देशों में जहाँ श्रीकृष्ण के चरणकमलों की पूजा की कोई परम्परा नहीं है, भक्तों को न जाने कितने आक्षेप सहन करने पड़ते होंगे! इसीलिए राजा कुलशेखर हमें सही-सही आगाह करते हैं और आलोचना से भयभीत न होने के प्रति आश्वस्त करते हैं।

पाँच हजार वर्ष पूर्व जब भगवान् कृष्ण ने वृन्दावन-लीलाएँ कीं, तो उनकी सर्वप्रिय भक्त, गोपियों ने भी उनकी सेवा करने के लिए अपनी प्रतिष्ठा दाव पर लगा दी थी। शरद् ऋतु की पूर्णमासी की अर्धरात्रि में भगवान् ने अपनी दिव्य बाँसुरी बजाकर गोपियों को बुलाया और वे सब उनसे मिलने के लिए दौड़ पड़ीं। अपने पतियों, भाइयों तथा अन्य परिजनों के आदेशों की अवहेलना करते हुए, अपने शिशुओं को दूध पिलाना तथा भोजन पकाना जैसे कार्यों की उपेक्षा करते हुए, उन्होंने वैदिक मर्यादा के समस्त बन्धनों को तोड़ डाला और अपने प्रेमी कृष्ण से मिलने चली गईं। भगवान् ने गोपियों के इस निर्भीक त्याग की अत्यधिक प्रशंसा की। जैसाकि *चैतन्य चरितामृत* में कहा गया है, "गोपियों ने भगवान् कृष्ण की सेवा करने के निमित्त सब कुछ त्याग दिया, यहाँ तक कि अपने सम्बन्धियों को भी त्याग दिया तथा उनके द्वारा दिये जाने वाले दंड तथा प्रताड़ना की भी परवाह नहीं की। वे उनकी प्रेममयी सेवा उनकी प्रसन्नता के लिए करती हैं। (*चैतन्य चरितामृत आदि* ४.१६९)

भक्त यह जानता है कि जब वह कृष्ण के प्रतिनिधि को प्रसन्न करता है तथा जब वह आध्यात्मिक सन्तोष अनुभव करता है (*येनात्मा सुप्रसीदति*), तब वह भगवान् कृष्ण को भी प्रसन्न करता है। उस समय वह सांसारिक आलोचना की, चाहे वह कितनी भी क्यों न हो, परवाह नहीं करता। जब किसी शरणागत भक्त को अनादर सहना पड़ता है, तो इससे उसे अपने परिवार तथा मित्रों के संग आनन्द उठाने की रही-सही इच्छा को कुचलने में सहायता ही

मिलती है। इस तरह कृष्ण अपने भक्त के सांसारिक सम्बन्धों को विच्छिन्न करके उसे पूर्णतया अपने नियन्त्रण तथा अपनी शरण में ले आते हैं।

राजा कुलशेखर हमें बताते हैं कि वे किस तरह अधिक पीड़ा के बिना आलोचना को सह सकते हैं—वे अनेक प्रकार के भावावेशों के साथ अगाध भगवत्प्रेम का अनुभव करते हैं और वे इसे इतना अद्‌भुत तथा प्रतिष्ठित मानते हैं कि वे अभक्तों के छोटे-छोटे आक्षेपों को आसानी से सह सकते हैं। यह अन्यमनस्कता भगवन्नाम जप में प्रगति के कारण आती है, जैसाकि *श्रीमद्‌भागवत* के निम्नांकित श्लोक (११.२.४०) में बताया गया है। श्रीचैतन्य महाप्रभु कहते हैं कि इस श्लोक में भागवत की शिक्षाओं का सार निहित है—

एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या
जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति गाय-
त्युन्मादवन् नृत्यति लोकबाह्यः॥

"परमेश्वर के पवित्र नामों के कीर्तन से मनुष्य ईश्वरप्रेम के स्तर तक आता है। तब भक्त भगवान् के नित्य दास के रूप में अपने व्रत में स्थिर हो जाता है और धीरे-धीरे वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के किसी एक नाम तथा रूप के प्रति अत्यधिक अनुरक्त हो जाता है। ज्यों ज्यों उसका हृदय आनन्दमय प्रेम से द्रवित होता है, त्यों त्यों वह जोर जोर से हँसता या रोता या चिल्लाता है। कभी कभी वह पागल की तरह गाता और नाचता है, क्योंकि उसे लोगों की राय की परवाह नहीं रहती।"

श्लोक ४३

कृष्णो रक्षतु नो जगत्त्रयगुरुः कृष्णं नमध्वं सदा
कृष्णेनाखिलशत्रवो विनिहताः कृष्णाय तस्मै नमः।
कृष्णादेव समुत्थितं जगदिदं कृष्णस्य दासोऽस्म्यहं
कृष्णे तिष्ठति विश्वमेतदखिलं हे कृष्ण रक्षस्व माम्॥ ४३॥

कृष्णः—कृष्ण; **रक्षतु**—रक्षा करें; **नः**—हमारी; **जगत्**—लोकों के; **त्रय**—तीन; **गुरुः**—गुरु; **कृष्णम्**—कृष्ण को; **नमध्वम्**—सभी नमस्कार करें; **सदा**—निरन्तर; **कृष्णेन**—कृष्ण के द्वारा; **अखिल**—सारे; **शत्रवः**—शत्रुगण; **विनिहताः**—मारे गए;

कृष्णाय—कृष्ण को; **तस्मै**—उन; **नमः**—नमस्कार; **कृष्णात्**—कृष्ण से; **एव**—एकमात्र; **समुत्थितम्**—उत्पन्न हुआ; **जगत्**—संसार; **इदम्**—यह; **कृष्णस्य**—कृष्ण का; **दासः**—सेवक; **अस्मि**—हूँ; **अहम्**—मैं; **कृष्णे**—कृष्ण में; **तिष्ठति**—आधारित है; **विश्वम्**—ब्रह्माण्ड; **एतत्**—यह; **अखिलम्**—सम्पूर्ण; **हे कृष्ण**—हे कृष्ण; **रक्षस्व माम्**—मेरी रक्षा करें।

अनुवाद

तीनों लोकों के गुरु, कृष्ण हमारी रक्षा करें। कृष्ण के समक्ष सदा शीश झुकाएँ। कृष्ण ने हमारे समस्त शत्रुओं का वध किया है। कृष्ण को हमारा नमस्कार है। कृष्ण से ही यह जगत अस्तित्व में आया है। मैं कृष्ण का दास हूँ। यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड कृष्ण के भीतर स्थित है। हे कृष्ण! कृपा करके मेरी रक्षा करें।

तात्पर्य

गोपीपराणधन प्रभु लिखते हैं, "इस श्लोक में एक के बाद एक, कृष्ण शब्द के आठों व्याकरणिक रूप प्रयुक्त हुए हैं।" इस कृष्णीभूत संस्कृत रचना के द्वारा कवि भगवान् कृष्ण के नाम तथा लीलाओं तक पहुँचने के विविध उपायों को अभिव्यक्त कर रहे हैं।

यह श्लोक श्रीचैतन्य महाप्रभु (तब निमाई पंडित के नाम से विख्यात) द्वारा पढ़ाये जाने वाले संस्कृत व्याकरण का स्मरण दिलाने वाला है, जब वे सोलह साल की आयु में स्कूल में अध्यापक थे। उन्होंने नवद्वीप क्षेत्र में अपनी *चतुष्पाठी* (पाठशाला) खोल रखी थी। वे सर्वप्रथम पारम्परिक ढंग से व्याकरण पढ़ाते रहे। किन्तु गया से वापस आने के बाद, जहाँ उन्होंने श्रील ईश्वरपुरी से दीक्षा ली, वे व्याकरण के माध्यम से केवल श्रीकृष्ण को ही समझाने लगे। श्रील प्रभुपाद ने लिखा है, "बाद में श्रील जीव गोस्वामी ने श्रीचैतन्य महाप्रभु को प्रसन्न करने के लिए संस्कृत व्याकरण की रचना की, जिसमें व्याकरण के सारे नियमों के लिए भगवान् के पवित्र नामों के उदाहरण दिये गये हैं। यह व्याकरण अब भी चलती है और *हरि नामामृत व्याकरण* के नाम से प्रसिद्ध है। यह बंगाल में आज भी संस्कृत के पाठ्यक्रम में स्वीकृत है। (*श्रीमद्भागवत* की भूमिका में)

यहाँ पर राजा कुलशेखर ने भगवान् कृष्ण को तीनों लोकों के स्वामी,

शत्रुओं के हन्ता तथा ब्रह्माण्ड के सर्जक और पालक कहकर सम्बोधित किया है। यद्यपि परमेश्वर अपने प्रतिनिधियों के रूप में गुरु, रक्षक, सर्जक तथा पालक नियुक्त करते हैं, किन्तु भगवान् कृष्ण ही वे अन्तिम व्यक्ति होते हैं, जो उनके लिए कार्य करने वाले सब के पीछे वास्तव में होते हैं। प्रामाणिक दीक्षा गुरु तथा शिक्षा गुरु ईमानदारी से आदि गुरु, परमेश्वर के सन्देश का वहन करते हैं। यही नहीं, परमेश्वर अन्य प्रकार से भी सीधे गुरु हैं, क्योंकि आज भी वे *भगवद्गीता* में अपनी शिक्षाओं के माध्यम से किसी भी आकांक्षी भक्त के गुरु बनते हैं। और चैत्य गुरु (हृदय में स्थित गुरु) के रूप में वे प्रत्येक जीव के व्यक्तिगत आन्तरिक मार्गदर्शक हैं। इसी तरह, ब्रह्माण्ड के प्रलय के समय जब सारे जीव उनमें लीन हो जाते हैं, तो वे महाविष्णु के रूप में उनकी रक्षा करते हैं और जब वे अपने विभिन्न अवतारों में प्रकट होते हैं, तो समस्त मानव जाति के कल्याण हेतु दैत्यों का वध करते हैं।

यद्यपि हमें यह आशा नहीं करनी चाहिए कि भगवान् हमारी रक्षा करने या हमें शिक्षा देने के लिए दौड़े चले आएँगें, मानो वे हमारे नौकर हों, किन्तु नैष्ठिक भक्त को तो कृष्ण के मार्गदर्शन तथा संरक्षण की आशा करनी ही चाहिए और वे जिस भी रूप में उपलब्ध हों, उन्हें स्वीकार करना चाहिए। कृष्ण के आदेश तथा संरक्षण प्राप्त करने की आदर्श विधि परम्परा-माध्यम है, जिसमें गुरु, शास्त्र तथा साधु तीनों की सम्मिलित शक्ति निहित रहती है। इसलिए हम सभी लोग भगवान् को सीधे पुकार सकते हैं, "हे कृष्ण! कृपया मेरी रक्षा किजीये।" और परम्परा द्वारा उनकी कृपा प्राप्त करें।

श्लोक ४४

हे गोपालक हे कृपाजलनिधे हे सिन्धुकन्यापते
हे कंसान्तक हे गजेन्द्रकरुणापारीण हे माधव।
हे रामानुज हे जगत्त्रयगुरो हे पुण्डरीकाक्ष मां
हे गोपीजननाथ पालय परं जानामि न त्वां विना॥ ४४॥

हे गोपालक—हे ग्वालबाल; **हे**—हे; **कृपा**—कृपा के; **जल-निधे**—सागर; **हे**—हे; **सिन्धु**—सागर की; **कन्या**—पुत्री (क्षीरसागर से उत्पन्न लक्ष्मी देवी) के; **पते**—पति; **हे कंस-अन्तक**—हे कंस के वधकर्ता; **हे**—हे; **गज-इन्द्र**—हाथियों के राजा;

करुणा—कृपा से; **पारीण**—पूरित; **हे माधव**—हे माधव; **हे राम-अनुज**—हे बलराम के छोटे भाई; **हे**—हे; **जगत्-त्रय**—तीनों लोकों के; **गुरो**—गुरु; **हे**—हे; **पुण्डरीक-अक्ष**—कमलनयन; **माम्**—मुझको; **हे**—हे; **गोपी-जन**—व्रज की गोपियों के; **नाथ**—स्वामी; **पालय**—मेरी रक्षा करें; **परम्**—परम; **जानामि न**—नहीं जानता हूँ; **त्वाम् विना**—आपके अलावा।

अनुवाद

हे युवा गोप! हे करुणासिन्धु! हे सागरकन्या लक्ष्मी के पति! हे कंस के संहारक! हे गजेन्द्र के करुणामय उद्धारक! हे माधव! हे बलराम के अनुज! हे तीनों लोकों के गुरु! हे गोपियों के कमलनयन प्रभु! मैं अन्य किसी को आपसे बढ़कर महान् नहीं जानता। कृपया मेरी रक्षा करें।

तात्पर्य

राजा कुलशेखर द्वारा की गई सारी स्तुतियाँ पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के विविध अंशों तथा अवतारों को सम्बोधित हैं। कभी कभी वे भगवान् नारायण या भगवान् राम को सम्बोधित करते हैं, किन्तु प्राय: वे कृष्ण को अपने विशेष आकर्षण के लक्ष्य के रूप में विशेषित करते हैं। *श्रीमद्भागवत* (१.३.२८) के अनुसार भगवान् कृष्ण समस्त अवतारों तथा अंशों के स्रोत हैं—

एते चांशकला: पुंस: कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।
इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे॥

"भगवान् के ये सारे अवतार या तो पूर्ण अंश रूप में या पूर्ण अंश के अंश रूप में हैं, किन्तु श्रीकृष्ण आदि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। जब-जब इन्द्र के शत्रुओं से यह संसार विक्षुब्ध किया जाता है, तब-तब वे प्रत्येक युग में अपने विभिन्न रूपों से संसार की रक्षा करते हैं।" (*भागवत* १.३.२८)

ब्रह्मसंहिता में ब्रह्माजी, सुप्रसिद्ध गोविन्द स्तुतियों में, इसी अन्तिम सत्य अथवा सिद्धान्त की शिक्षा देते हैं कि ईश्वर के समस्त अवतार तथा समस्त देवी-देवता एवं सारे भौतिक तथा आध्यात्मिक जगत तथा उनके घटक तत्त्व, भगवान् कृष्ण या गोविन्द से ही उत्पन्न होते हैं—*गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।*

श्लोक ४३ में राजा कुलशेखर ने कृष्णनाम का नौ बार प्रयोग किया है, जबकि इस श्लोक में वे कृष्ण को उन नामों से पुकारते हैं, जो उनकी लीलाओं

को बताते हैं। इस श्लोक में आये सारे नाम कृष्ण के नाम जैसे ही हैं, क्योंकि ये सब कृष्णलीला से उभरते हैं, जिनमें भगवान् विविध नामों से जाने जाते हैं—यथा गोपाल, कंसान्तक, रामानुज (बलराम के छोटे भाई) या गोपीनाथ। अन्ततोगत्वा ईश्वर के सारे नाम कृष्ण का ही उल्लेख करते हैं। कृष्ण भक्त के लिए ईश्वर को चाहे कृष्ण नाम से सम्बोधित किये जाये या अन्य नामों से, यहाँ तक कि अन्य धर्मों के ईश्वर के नामों से पुकारे जाये, भक्त सदैव *श्रीमद्भागवत* तथा *ब्रह्म-संहिता* के सिद्धान्त के अनुसार यह समझता है कि ये नाम अन्ततः पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण को ही उद्बोधित करते हैं।

इस श्लोक में हमें सगुण भक्ति तथा भगवान् की साकार प्रशंसा का संयोग देखने को मिलता है। ऐसा प्रायः दक्षिण भारत के आलवारों के वैष्णव काव्य में पाया जाता है और राजा कुलशेखर आलवारों में से एक हैं। भक्त, कुछ पंक्तियों में ही, भगवान् के अचिन्त्य प्रशंसात्मक कार्यकलापों की प्रशंसा करेगा और फिर पुकार उठेगा कि यही महान् ईश्वर किस तरह उसके हृदय में साकार रूप में हैं।

राजा कुलशेखर भगवान् कृष्ण को तीनों लोकों के गुरु कहकर सम्बोधित करते हैं और अपनी रक्षा करने के लिए उन्हें पुकारते हैं। कोई यह प्रश्न कर सकता है, "जब भगवान् विष्णु पहले से सभी जीवों की रक्षा कर रहे हैं, तो फिर भक्त को निजी रक्षा के लिए क्यों याचना करनी चाहिए?" किन्तु भक्त निजी सुरक्षा नहीं माँग रहा, वह चाहता है कि भगवान् के साथ उसका निजी प्रेमपूर्ण सम्बन्ध बना रहे और उसका पोषण हो। दूसरे शब्दों में, वह चाहता है कि भगवान् उसकी सबसे बड़ी विपत्ति से रक्षा करें, और सबसे बड़ी विपत्ति है, भगवान् को भूल जाना।

श्रील प्रभुपाद व्याख्या करते हैं, "पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् पहले से क्षीरोदकशायी विष्णु के पूर्ण विस्तार के रूप में सृष्टि के पालन का भार सँभाले हैं, किन्तु यह पालन प्रत्यक्ष नहीं है। फिर भी जब भगवान् यह कहते हैं कि वे अपने शुद्ध भक्त का भार लेते हैं, तो वे प्रत्यक्ष जिम्मेदारी लेते हैं। (*चैतन्यचरितामृत*, आमुख) शुद्ध भक्त वह है, जो भगवान् की शरण में उसी तरह रहता है, जिस तरह शिशु अपने माता-पिता या पशु अपने स्वामी की शरण में रहता है। जब भक्त स्वयं इस प्रकार से शरण लेता है, तो कृष्ण उसका

विशेष ध्यान रखते हैं और उसे सुरक्षा प्रदान करते हैं। राजा कुलशेखर शास्त्र के अनुसार तथा भगवान् की लीलाओं के अनुसार ही उनकी प्रशंसा करते हैं। फिर भी वे अपनी निजी सुरक्षा के लिए भी पुकारते हैं, क्योंकि उन्हें विश्वास है कि भगवान् वचन निभाएँगे। यह वचन यह है कि भगवान् भक्तों के साथ उसी तरह आदान-प्रदान करेंगे, जिस तरह के भाव से वे भगवान् तक जाते हैं।

श्लोक ४५

दारा वाराकरवरसुता ते तनूजो विरिञ्चिः
स्तोता वेदस्तव सुरगणा भृत्यवर्गः प्रसादः।
मुक्तिर्माया जगदविकलं तावकी देवकी ते
माता मित्रं बलरिपुसुतस्तत्त्वदन्यं न जाने॥ ४५॥

दारा—पत्नी; **वाः-आकर**—सागर की; **वर**—श्रेष्ठ; **सुता**—पुत्री (लक्ष्मी); **ते**—आपकी; **तनूजः**—पुत्र; **विरिञ्चिः**—ब्रह्माजी; **स्तोता**—प्रशंसक; **वेदः**—वेद; **तव**—आपके; **सुर-गणाः**—देवतागण; **भृत्य**—दासों के; **वर्गः**—साथ; **प्रसादः**—कृपा; **मुक्तिः**—मोक्ष; **माया**—जादुई शक्ति; **जगत्**—ब्रह्माण्ड; **अविकलम्**—सम्पूर्ण; **तावकी**—आपकी; **देवकी**—देवकी; **ते**—आपकी; **माता**—माँ; **मित्रम्**—मित्र; **बल-रिपु**—बल-दैत्य के शत्रु (इन्द्र); **सुतः**—पुत्र (अर्जुन); **तत्**—इस प्रकार; **त्वत्**—आपके अलावा; **अन्यम्**—कोई दूसरा; **न जाने**—मैं नहीं जानता।

अनुवाद

आपकी सुन्दर सी पत्नी सागर की पुत्री हैं और आपके पुत्र ब्रह्माजी हैं। वेद आपके वंदीजन (चारण) हैं, देवतागण आपके दास हैं और मोक्ष आपका वरदान है, जबकि यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आपकी चमत्कारी शक्ति का प्रदर्शन है। श्रीमती देवकी आपकी माता हैं और इन्द्रपुत्र अर्जुन आपका सखा है। इसलिए मुझे आपके अलावा अन्य किसी में कोई रुचि नहीं है।

तात्पर्य

एक सामान्य व्यक्ति के भी कन्या तथा पुत्र होते हैं; प्रसिद्ध व्यक्ति के अनेक प्रशंसक हो सकते हैं (या वह सामाचार पत्रों के एजेंटों को इस काम

के लिए भाड़े पर रख सकता है) और एक प्रभावशाली राजनैतिक नेता के कम प्रभावशाली राजनैतिक व्यक्ति अधिकारिक नौकर हो सकते हैं। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् भी एक व्यक्ति हैं, अत: उनके भी पारिवारिकजन, दास, मित्र तथा प्रशंसक होते हैं। चूँकि परम सत्य सभी के स्रोत हैं (*जन्माद्यस्य यत:*) अत: हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि इस भौतिक जगत में दिखने वाली किसी वस्तु का उनके पास अभाव है। किन्तु जब भगवान् कृष्ण निजी सम्बन्ध प्रदर्शित करते हैं, तो वे सामान्य नहीं होते—उनकी पत्नी, मित्र, दास तथा प्रशंसक—ये सभी मुक्तात्मा उनकी निजी शक्तियाँ या उनके विस्तार होते हैं।

लोगों को सन्देह होता है कि ईश्वर के भी पिता, माता, पत्नी या विशिष्ट मित्र हो सकते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि ये सम्बन्ध भगवान् की निष्पक्षता तथा अपरिवर्तनशीलता के साथ समझौता है। किन्तु अपने नित्य संगियों के साथ दिव्य सम्बन्धों में भगवान् किसी तरह संलिप्त नहीं रहते। प्रत्युत ये सम्बन्ध उनके यश को वर्धित करने वाले होते हैं। वस्तुत: भगवान् कृष्ण को किसी मित्र, पत्नी या अन्य की आवश्यकता नहीं पड़ती। किन्तु वे उनको अपने साथ घनिष्ठतापूर्वक सम्बन्ध स्थापित करने देते हैं, क्योंकि उन्हें अपने प्रेमी भक्तजनों से आदान-प्रदान करने में प्रसन्नता होती है।

भगवान् के संगी सामान्य व्यक्ति नहीं होते, यह बात इसीसे सिद्ध हो जाती है कि प्राय: उन्हें भगवान् का मित्र या माता-पिता बनने में कठिन तपस्या या महान् बलिदान करने पड़ते हैं। उदाहरणार्थ, वसुदेव तथा देवकी को, जो कृष्ण के पिता तथा माता बने, ऐसा बनने के लिए अनेक जन्मों तक तपस्या करनी पड़ी। अपने जन्म के तुरन्त बाद कृष्ण ने उन्हें बताया कि उन्हें भगवान् को पुत्र रूप में पाने का वरदान प्राप्त करने के लिए विगत जीवन में क्या क्या करना पड़ा :

> "आप दोनों ने बारह हजार वर्षों (देवताओं की गणना अनुसार) की कठिन तपस्या की। इस अवधि में आपका मन सदा मुझ में निमग्न था। जब आप भक्ति कर रहे थे और अपने हृदय में सदा मेरा चिन्तन कर रहे थे, तो मैं आपसे अत्यधिक प्रसन्न था। इसीलिए हे निष्पाप माता!

आपका हृदय सदैव शुद्ध है। उस समय भी मैं आपकी इच्छा-पूर्ति के लिए इसी रूप में आपके समक्ष प्रकट हुआ था और मैंने आपसे कहा था कि जो भी इच्छा हो माँगें। उस समय आपने मुझे पुत्र-रूप में प्राप्त करने की इच्छा की थी।" (*लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण,* पृष्ठ ३०)

भगवान् अपने आध्यात्मिक धाम में अपने निजी संगियों के साथ नित्य प्रेमपूर्ण सम्बन्धों का आनन्द मनाते हैं, किन्तु साथ ही वे भौतिक ब्रह्माण्ड के कोने कोने तथा प्रत्येक जीव के हृदय में विद्यमान रहते हैं। इस तरह उनका प्रभाव आध्यात्मिक तथा भौतिक दोनों जगतों में फैला हुआ रहता है। इसीलिए राजा कुलशेखर कहते हैं, "यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आपकी चमत्कारी शक्ति का प्रदर्शन है।" भगवान् कृष्ण छोटे मोटे जादूगर नहीं हैं। वे योगेश्वर हैं—अर्थात् समस्त योगशक्तियों के नियन्ता हैं। *भगवद्गीता* (५.२९) में भगवान् कृष्ण घोषित करते हैं—*सर्वलोकमहेश्वरम्*—"मैं सभी ब्रह्माण्डों का परम नियन्ता हूँ।" इतना ही नहीं, कृष्ण इन सारे ब्रह्माण्डों को बिना किसी प्रयत्न के नियन्त्रित करते हैं। जैसाकि श्रील प्रभुपाद ने कहा है—हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि वे एटलस की तरह हैं, जो अपनी भुजाओं में पृथ्वी को उठाये रखने के लिए संघर्ष करते हुए दिखाई देता है। कृष्ण के पास अपने प्रिय संगियों के साथ मौज मनाने के लिए समय रहता है।

राजा कुलशेखर स्पष्ट कहते हैं, "इन्हीं कारणों से मेरी रुचि किसी और में नहीं केवल आप में है।"

श्लोक ४६

प्रणाममीशस्य शिरःफलं विदु-
स्तदर्चनं प्राणफलं दिवौकसः।
मनःफलं तद्गुणतत्त्वचिन्तनं
वचःफलं तद्गुणकीर्तनं बुधाः॥ ४६॥

प्रणामम्—नमस्कार करना; **ईशस्य**—भगवान् को; **शिरः**—सिर का; **फलम्**—पूर्णता, सिद्धि; **विदुः**—वे जानते हैं; **तत्**—उनकी; **अर्चनम्**—पूजा; **प्राण**—प्राणवायु

की; **फलम्**—पूर्णता; **दिव-ओकसः**—स्वर्ग के निवासी; **मनः**—मन की; **फलम्**—सिद्धि; **तत्**—उनके; **गुण**—गुणों का; **तत्त्व**—विस्तारों के विषय में; **चिन्तनम्**—ध्यान; **वचः**—वाणी की; **फलम्**—सिद्धि; **तत्**—उनके; **गुण**—गुणों के विषय में; **कीर्तनम्**—कीर्तन; **बुधाः**—बुद्धिमान।

अनुवाद

स्वर्गलोक के चतुर निवासी जानते हैं कि सिर की पूर्णता भगवान् को दण्डवत् प्रणाम करने, प्राण की पूर्णता भगवान् की पूजा करने, मन की पूर्णता उनके दिव्य गुणों के बारे में विस्तार से मनन करने तथा वाणी की पूर्णता उनके गुणों के यश का कीर्तन करने में है।

तात्पर्य

दिवौकसः शब्द देवताओं का सूचक है। ये सब भगवान् के भक्त हैं, जो स्वर्गलोक में निवास करते हैं और दुर्लभ इन्द्रियतृप्ति का भोग करते हैं, जिससे वे भी भौतिक जगत में स्थित बद्धजीवों के सदृश हो जाते हैं। किन्तु भगवान् विष्णु के कट्टर अनुयायी होने के कारण भगवान् विष्णु उनकी हमेशा रक्षा करते हैं। विष्णु के अनुयायी होने से सामान्यतः उन्हें उन असुरों के साथ युद्ध में विजय मिलती है, जो रह-रह कर स्वर्गलोक को हथियाने की धमकी देते रहते हैं।

राजा कुलशेखर देवताओं का उल्लेख उनके भौतिक ऐश्वर्य के कारण नहीं, अपितु भगवान् हरि की भक्तिमय सेवा करने के सद्गुण के कारण कर रहे हैं। स्वर्गलोक के निवासी पृथ्वी के निवासियों जैसे नहीं होते, जहाँ पर कलियुग में इस वाद की प्रधानता रहती है कि, "ईश्वर मर गये हैं" और डार्विन, मार्क्स तथा फ्रायड जैसे नास्तिकों के विचार सभी मामलों में अत्यधिक प्रभावशाली बने हुए हैं। यद्यपि देवताओं की पहुँच अत्यधिक उन्नत प्रौद्योगिकी तक है और उनमें योगशक्ति है, किन्तु भगवान् विष्णु के प्रति उनकी श्रद्धा शुद्ध बनी रहती है।

श्रीचैतन्य महाप्रभु की कृपा से इस पृथ्वीलोक के लोग कई अर्थों में अयोग्य होते हुए भी भक्तिमय सेवा के द्वारा भगवान् कृष्ण के पास पहुँच सकते हैं। निस्सन्देह, श्रीचैतन्य महाप्रभु इतने उदार हैं कि उन्होंने देवताओं से बढ़कर भी पृथ्वीवासियों को महान् लाभ दे दिया है। यह लाभ है *सङ्कीर्तन* जिसमें भगवान् के नामों का सामूहिक कीर्तन किया जाता है। इस महान् लाभ के

कारण जीवन के चरम लक्ष्य सनातन भगवद्धाम जाने के लिए पृथ्वीलोक सर्वोत्तम स्थान है। जैसाकि *श्रीमद्भागवत* (५.१९.२१) में कहा गया है—

> "चूँकि यह मनुष्य जीवन आध्यात्मिक साक्षात्कार के लिए उत्तम पद है, इसलिए स्वर्ग के सारे देवता इस प्रकार कहते हैं, "इन मनुष्यों के लिए भारतवर्ष (पृथ्वी) की भूमि में जन्म लेना कितना अद्भुत है! इन्होंने या तो पूराकाल में तपस्या का पुण्यकर्म किया होगा या फिर भगवान् स्वयं इन पर प्रसन्न हुए होंगे, अन्यथा ये लोग इतने प्रकारों से भक्ति में कैसे लग सकते थे? हम देवतागण भारतवर्ष में मनुष्य जन्म प्राप्त करने की केवल आकांक्षा कर सकते हैं, जिससे हम भक्ति कर सकें, किन्तु ये मनुष्य पहले से ही वहाँ भक्ति में संलग्न हैं।"

एक समय सारा संसार भारतवर्ष कहलाता था, किन्तु अब केवल 'इंडिया' ही उस नाम से जाना जाता है। भारत को आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करने का सर्वोत्तम स्थान बतलाया जाता है, क्योंकि भारत में ही अनेक आचार्य तथा कृष्ण के अवतार प्रकट हुए और भारत ही ऐसा देश है, जहाँ भगवान् की भक्ति की परम्परा प्रबल बनी हुई है। श्रील प्रभुपाद ने लिखा है, "सभी दृष्टियों से भारतवर्ष ऐसा विशेष देश है, जहाँ व्यक्ति आसानी से भक्ति को समझ सकता है और अपने जीवन को सार्थक बनाने के लिए उसे अपना सकता है।" श्रीचैतन्य महाप्रभु ने भारतवर्ष के निवासियों को इससे आगे भी प्रोत्साहित किया है कि वे भक्ति में अपने आपको सफल बनाएँ और तब विश्वभर में उसका प्रचार करें। यह कार्य कृष्णभावनामृत आन्दोलन का है, जो एक ऐसी संस्था है, जिसे श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपादने सफलतापूर्वक पूरी तरह से विकसित किया है।

राजा कुलशेखर हमें शरीर के विभिन्न अंगों के सही सही कार्यों का स्मरण दिलाते हैं। उदाहरणार्थ, सिर समस्त अनुभूतियों का केन्द्र है, इसलिए हम नाना प्रकार से उसे आनन्द प्रदान करने का प्रयास करते हैं, किन्तु प्रायः उस विनीत

कार्य के द्वारा नहीं, जिसकी यहाँ संस्तुति की गई है, अर्थात् भगवान् के समक्ष सिर झुकाना—निस्सन्देह सिर झुकना निरा यान्त्रिक कर्म नहीं है; सिर को हृदय में भक्ति की निष्ठापूर्ण भावनाओं सहित झुकना चाहिए। दण्डवत् प्रणाम करना वृन्दावन के षड्गोस्वामियों जैसे मुक्तात्माओं की नित्य साधना का महत्त्वपूर्ण अंग था। श्रीनिवास आचार्य षड्गोस्वामियों की स्तुति में कहते हैं कि वे भगवन्नाम का कीर्तन करने तथा योजनाबद्ध परिमाण में दण्डवत् प्रणाम करने में लगे रहते थे। षड्गोस्वामियों में से रघुनाथ दास गोस्वामी नित्य प्रति भगवद्भक्तों को एक हजार बार नमस्कार करते थे।

मुकुन्दमाला स्तोत्र के इस श्लोक में प्रयुक्त *प्राण* शब्द प्राणवायु का सूचक है, जिसका उपयोग हमें भगवान् की पूजा करते समय करना चाहिए। योगीजन मन तथा इन्द्रियों को वश में रखने के लिए *प्राणायाम* का अभ्यास करते हैं और इस विधि को प्रायः पुनः यौवन प्राप्त करने के साधन रूप में संस्तुत किया जाता है। यद्यपि हम श्वास को नियन्त्रित करके ऐसे लाभ प्राप्त कर सकते हैं, किन्तु भक्ति मार्ग में भक्त को केवल अपनी प्राणवायु को भगवान् की सेवा करने में लगाना होता है। इसी तरह हमें मन, वाणी तथा भगवान् द्वारा प्रदत्त अन्य क्षमताओं को भगवान् की प्रेममयी सेवा में लगाना चाहिए। यह सिद्धि देवों या मनुष्यों को समान रूप से प्राप्य है।

श्लोक ४७

श्रीमन्नाम प्रोच्य नारायणाख्यं
के न प्रापुर्वाञ्छितं पापिनोऽपि।
हा नः पूर्वं वाक्प्रवृत्ता न तस्मिं-
स्तेन प्राप्तं गर्भवासादिदुःखम्॥ ४७॥

श्रीमत्—धन्य; **नाम**—नाम; **प्रोच्य**—जोर से उच्चारण करके; **नारायण-आख्यम्**—नारायण नाम से कहे जाने वाले; **के**—किसने; **न प्रापुः**—प्राप्त नहीं किया; **वाञ्छितम्**—इच्छित; **पापिनः**—पापी लोग; **अपि**—भी; **हा**—हाय; **नः**—हमारे; **पूर्वम्**—इसके पहले; **वाक्**—वाणी; **प्रवृत्ता**—संलग्न; **न**—नहीं; **तस्मिन्**—उसमें; **तेन**—इसलिए; **प्राप्तम्**—प्राप्त; **गर्भ**—गर्भ में; **वास**—निवास; **आदि**—से लेकर, इत्यादि; **दुःखम्**—दुख।

अनुवाद

क्या कभी ऐसा हुआ है कि पापी से पापी व्यक्ति की, जिसने कभी उच्च स्वर से नारायण के शुभ नाम का उच्चारण किया हो, इच्छाएँ पूरी न हुई हों? किन्तु हाय! हमने कभी भी उस तरह से अपनी वाक्शक्ति का प्रयोग नहीं किया; इसलिए हमें गर्भ में रहने जैसे कष्ट भोगने पड़े।

तात्पर्य

इस श्लोक से *श्रीमद्भागवत* में आयी अजामिल की कथा का स्मरण हो आता है। अजामिल पापी था, किन्तु मृत्यु के समय नारायण नाम का उच्चारण करने से उसकी अन्तिम इच्छाएँ पूरी हो गईं। भागवत के निम्नांकित उद्धरण (६.२.१३) में भगवान् विष्णु के सेवक यमराज के सेवकों को बताते हैं कि अजामिल दण्डनीय क्यों नहीं है—

"अपनी मृत्यु के समय इसी अजामिल ने असहाय होकर भगवान् नारायण का उच्च स्वर से नाम लिया है। इस उच्चारण मात्र से वह सम्पूर्ण पापी जीवन के फलों से पहले ही मुक्त हो चुका है। इसलिए हे यमराज के सेवकों, इसे नारकीय दण्ड देने के लिए अपने स्वामी के पास ले जाने की चेष्टा मत करो।"

अजामिल ने अपने पुत्र का नाम पुकारते हुए अप्रत्यक्ष रूप से भगवन्नाम लिया था। लेकिन चूँकि उसने नारायण के पवित्र नाम का उच्चारण किया था, इसलिए उसे नरक जाने से बचा लिया गया। इसके बाद उसने कृष्णभावनामृत की पूर्णता प्राप्त की और भगवद्धाम गया। अत: उसके द्वारा पवित्र नाम का "अकस्मात" उच्चारण किये जाने से भगवान् की सेवा करने की उसकी मूल इच्छा जागृत हो उठी। यदि अजामिल जैसे घोर पापी को अप्रत्यक्ष रूप से नारायण नाम का उच्चारण करने के कारण बचाया जा सकता है, तो अन्य सबों को नारायण के श्रीमन्नाम का उच्चारण करके अपनी सर्वोत्कृष्ट इच्छाओं को पूरा करने के लिए चूकना नहीं चाहिए।

राजा कुलशेखर उन सबों की ओर से कह रहे हैं, जो पवित्र नामों का उच्चारण करना भूल जाते हैं। ये सारे श्लोक हम सबों के लिए हैं, जो उच्चारण के माध्यम से पूर्णता प्राप्त करने का अवसर चूक रहे हैं। यदि हम पुरुषोत्तम भगवान् को नहीं पुकारेंगे, तो हमें सभी प्रकार के दुखों का सामना करना

पड़ेगा। कुलशेखर गर्भ में निवास करने की पीड़ा का उल्लेख करते हैं। भगवान् कपिल ने अपनी माता देवहूति को दी गई अपनी शिक्षाओं में इस महान् कष्ट का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है—

> "उदर में रहने वाले भूखे कीड़ों द्वारा शरीर के बारम्बार काटे जाने से शिशु को भीषण पीड़ा होती है। वह अपनी सुकुमारता के कारण क्षण प्रतिक्षण इस भीषण स्थिति के कारण अचेत होता रहता है।
>
> फिर माता के द्वारा तीता, चटपटा भोजन, या अधिक नमकीन अथवा अधिक खट्टा भोजन किये जाने से भी शिशु का शरीर निरन्तर असहनीय पीड़ा भोगता रहता है।"(*भागवत* ३.३१.७-८)

लोग इन तथ्यों को समझना ही नहीं चाहते, इसीलिए वे पवित्र नाम की शरण में नहीं जाते। यदि उन्हें विगतकाल में भोगे गये कष्टों का स्मरण दिलाया भी जाता है, तो वे दावा करते हैं कि चूँकि अब वे उस पीड़ा से मुक्त हो चुके हैं, अतः इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। किन्तु जो व्यक्ति प्राकृतिक तथा शास्त्रीय नियम की अवहेलना करता है, उसके लिए यह निश्चित हो जाता है कि वह इन कष्टों को भविष्य में फिर से भोगेगा, जिन्हें वह भूलने का दावा करता है। श्रील प्रभुपाद लिखते हैं, "जो व्यक्ति मनुष्य जीवन में दुख के इन संकेतों की परवाह नहीं करता, वह निस्सन्देह आत्महत्या कर रहा है।" (*भागवत* ७.३१.९ तात्पर्य)

वैष्णव काव्य वैदिक सत्य वचनों से भरा हुआ है, जो सर्वोच्च लाभ के साथ साथ कानों तथा हृदय को आनन्द प्रदान करने वाले हैं। इस एक श्लोक में ही राजा कुलशेखर ने हमें हमारी दुर्भाग्यपूर्ण अवस्था का कटु विवरण दिया है और चरम मोक्ष की आशा जताई है। यदि हम केवल इस एक श्लोक के सन्देश को ग्रहण कर लें—इसका अनुभव करें तथा उसके अनुसार कार्य करें—तो हम अपने आपको असीम दुख से बचा सकते हैं।

श्लोक ४८

ध्यायन्ति ये विष्णुमनन्तमव्ययं
हृत्पद्ममध्ये सततं व्यवस्थितम्।
समाहितानां सततामयप्रदं
ते यान्ति सिद्धिं परमां तु वैष्णवीम्॥ ४८॥

ध्यायन्ति—ध्यान करते हैं; **ये**—जो लोग; **विष्णुम्**—भगवान् विष्णु का; **अनन्तम्**—असीम; **अव्ययम्**—अचूक; **हृत्**—हृदय के; **पद्म**—कमल के; **मध्ये**—बीच में; **सततम्**—सदैव; **व्यवस्थितम्**—स्थित; **समाहितानाम्**—भगवान् को जानने के लिए स्थिर हुए लोगों के लिए; **सतत**—निरन्तर; **अभय**—निर्भीकता; **प्रदम्**—प्रदान करने वाले; **ते**—वे; **यान्ति**—प्राप्त करते हैं; **सिद्धिम्**—सिद्धि; **परमाम्**—परम; **तु**—निस्सन्देह; **वैष्णवीम्**—वैष्णवों की, विष्णु से सम्बद्ध।

अनुवाद

असीम तथा अव्यय विष्णु, जो हृदय रूपी कमल में सदैव विद्यमान रहते हैं, उन लोगों को निर्भीकता प्रदान करते हैं, जो अपनी बुद्धि को उन पर स्थिर करते हैं। जो भक्त उनका ध्यान करते हैं, वे वैष्णवों की सर्वोच्च सिद्धि को प्राप्त करेंगे।

तात्पर्य

राजा कुलशेखर इसके पूर्व भगवान् की सेवा में मन तथा इन्द्रियों को लगाने से प्राप्त होने वाली सिद्धियों के बारे में कह चुके हैं। अब वे विशेष रूप से उल्लेख करते हैं कि परम सिद्धि तो *सिद्धिं वैष्णवीम्* अर्थात् वैष्णवों की सर्वोपरि सिद्धि है।

यद्यपि सारे वैष्णव सही स्तर पर स्थित हैं, किन्तु भक्तों में भी क्रमानुसार अवस्थाएँ होती हैं। श्रील प्रभुपाद ने *भक्तिरसामृतसिन्धु* में भक्तों की तीन श्रेणियों का सारांश दिया है। हम उनके उस सांराश को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—तृतीय श्रेणी का भक्त वह है, जिसकी श्रद्धा प्रबल नहीं होती और जो प्रामाणिक शास्त्रों के निर्णय को नहीं पहचानता। द्वितीय श्रेणी का भक्त भले ही शास्त्र के आधार पर तर्क करने में दक्ष न हो, किन्तु वह अपने लक्ष्य में दृढ़ श्रद्धा रखता है। और प्रथम श्रेणी का भक्त वह होता है, जो शास्त्रों के अध्ययन

एवं विवेचन में अत्यन्त पटु होता है और साथ ही उनमें प्रबल श्रद्धा रखता है।

अधिकांशत: तृतीय श्रेणी का भक्त (जिसे *कनिष्ठ अधिकारी* कहा जाता है) मन्दिर के अर्चाविग्रह में श्रद्धा रखता है और वहाँ पर भगवान् की पूजा करता है। किन्तु कनिष्ठ अधिकारी सामान्यत: अन्य भक्तों को या प्रत्येक के हृदय में भगवान् की उपस्थिति को पहचान नहीं पाता। तो भी तृतीय श्रेणी का वैष्णव अत्यन्त उन्नत माना जाता है। श्रील प्रभुपाद ने लिखा है, "यद्यपि तृतीय श्रेणी का भक्त, जो कि परम सत्य के ज्ञान में समुन्नत नहीं होता, परन्तु भक्तिपूर्वक केवल नमस्कार करता है, भगवान् का चिन्तन करता है, मन्दिर में भगवान् के दर्शन करता है और अर्चाविग्रह पर चढ़ाने के लिए फल-फूल लाता है, वह भी अप्रत्यक्षत: मुक्त हो जाता है।" (*भागवत* ३.२५.३६ तात्पर्य) कनिष्ठ अधिकारी श्री श्रीराधा-कृष्ण या लक्ष्मी-नारायण के अर्चाविग्रहों के प्रति अपने आकर्षण के बल पर उन लोगों की अपेक्षा उच्च पद पर होता है, जो केवल मनोकल्पना या अन्य विधियों से मोक्ष के लिए प्रयत्नशील रहते हैं।

गुरु के निर्देशन में ही मनुष्य पूर्णता की विभिन्न अवस्थाएँ पार करता है—सब कुछ मनुष्य की श्रद्धा पर निर्भर करता है। *चैतन्य चरितामृत* (*मध्य* २२.६४) में श्रीचैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी को बताते हुए इस बात कि पुष्टि की है कि भक्त अपनी श्रद्धा के अनुसार भक्ति के प्रारम्भिक पद, माध्यमिक पद या सर्वोच्च पद को प्राप्त करने का पात्र बनता है।

भक्ति में कोई उस तरह से आगे नहीं बढ़ पाता, जिस तरह वह भौतिक जगत में, सामाजिक सीढ़ी पर चढकर या आर्थिक विकास के लिए कठिन परिश्रम करके या सैन्य शक्ति के बल पर आगे बढ़ता है। प्रत्युत उसे समस्त भौतिक शक्तियाँ तथा उपाधियाँ त्याग कर तिनके के समान विनीत बनना होता है। भक्ति का मूलाधार भगवन्नाम का जप करना है और श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुसार जब तक स्वयं मान पाने की आशा न करते हुए अन्यों को मान नहीं दिया जाएगा, तब तक व्यक्ति के लिए निरन्तर जप कर पाना सम्भव नहीं हो सकता। मन में काम, क्रोध तथा लोभ जैसे कल्मषों को रखते हुए अपने आपको आगे बढ़ाने का प्रयास करने के बदले व्यक्ति को स्वयं को ईश्वर के, उनके भक्तों के तथा समस्त जीवों के दास के रूप में मानकर शुद्ध बनना होता है।

भक्ति की पूर्णावस्था का वर्णन *मुकुन्दमाला स्तोत्र* के २५ वे श्लोक में

हुआ है, "हे मधु तथा कैटभ के शत्रु, हे ब्रह्माण्ड के स्वामी, आप मुझ पर यही कृपा करें कि आप मुझे अपने दास के दास के दास के दास के दास के दास का दास मानें। यही मेरे जीवन की सिद्धि है।" यही भाव भगवान् श्रीचैतन्य ने तब व्यक्त किया था, जब उन्होंने यह घोषित किया था कि वे न तो ब्राह्मण हैं, न संन्यासी अपितु वे वृन्दावन की गोपियों के स्वामी कृष्ण के चरणकमलों के दास के दास के दास के दास हैं। इसलिए जो भक्त भक्ति की सिद्धि प्राप्त करना चाहते हैं, वे मान्य वैष्णवों की सेवा का सौभाग्य प्राप्त करने की प्रार्थना करते हैं।

राजा कुलशेखर हमें भगवान् विष्णु का निरन्तर ध्यान करने की दृष्टि भी प्रदान करते हैं। नवधा भक्ति के अन्तर्गत विभिन्न सेवाओं में अपने आपको चौबीसों घण्टे लगाकर इसे प्राप्त किया जा सकता है। (देखें *श्रीमद्भागवत* ७.५.२४) एक सच्चा वैष्णव यह कभी नहीं सोचता कि उसे चरम सिद्धावस्था प्राप्त हो चुकी है, प्रत्युत वह अपने हृदय में भगवान् के प्रति सदैव सचेष्ट रहते हुए भगवान् तथा भक्तों की सेवा करता रहता है।

श्लोक ४९

तत्त्वं प्रसीद भगवन्कुरु मय्यनाथे
विष्णो कृपां परमकारुणिकः खलु त्वम्।
संसारसागरनिमग्नमनन्त दीन-
मुद्धर्तुमर्हसि हरे पुरुषोत्तमोऽसि॥ ४९॥

तत्—इसलिए; **त्वम्**—आप; **प्रसीद**—अपनी कृपा दिखाएँ; **भगवन्**—हे परमेश्वर; **कुरु**—कृपया करें; **मयि**—मुझे; **अनाथे**—स्वामी विहीन को; **विष्णो**—हे विष्णु; **कृपाम्**—कृपा; **परम**—सर्वाधिक; **कारुणिकः**—कारुणिक, करुणावान्; **खलु**—अन्ततः; **त्वम्**—आप; **संसार**—भौतिक जगत रूपी; **सागर**—सागर में; **निमग्नम्**—डूबा हुआ; **अनन्त**—हे असीम; **दीनम्**—दुखियारे; **उद्धर्तुम्**—उद्धार करने के लिए; **अर्हसि**—आपको चाहिए; **हरे**—हे हरि; **पुरुष-उत्तमः**—भगवान्; **असि**—आप हैं।

अनुवाद

हे परमेश्वर! हे विष्णु! आप परम दयालु हैं। अतः अब आप मुझ पर प्रसन्न हों और इस असहाय प्राणी को अपनी कृपा प्रदान करें। हे अनन्त

भगवान्, भवसागर में डूब रहे इस दुखियारे को आप उबार लें। हे भगवान् हरि, आप ही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं।

तात्पर्य

एक आत्मसंतुष्ट धर्मविद् सोच सकता है कि भक्त को अपने खुद के लिए भगवान् को पुकारने की आवश्यकता नहीं है, "भगवान् कृष्ण को प्रत्येक बात ज्ञात है, अत: व्यक्तिगत याचना करने की कोई आवश्यकता नहीं है।" किन्तु आचार्यों के अनुसार जब कोई जीव अपने आपको असहाय तथा अभागा समझकर भगवान् को पुकारता है, तो भगवान् का हृदय द्रवित हो उठता है। एक बार श्रील प्रभुपाद ने अपने भक्तों के साथ एक पार्क में घूमते समय इसका एक उदाहरण दिया था। एक तालाब में बत्तखों का एक समूह भक्तों की ओर लपका और जो बत्तख सबसे जोर से बोली उसीको खाद्यसामग्री दी गई। श्रील प्रभुपाद ने कहा कि हमें भी कृष्ण के लिए उसी तरह पुकारना पड़ता है, जिस तरह बालक अपनी माता के लिए चिल्लाता है। हाँ, इसे अहंकार से या कृत्रिम ढंग से नहीं किया जाना चाहिए, किन्तु यह सत्य है कि भगवान् अपने भक्तों की दीन पुकार पर अवश्य ध्यान देंगे।

भक्त भगवान् को माँगों या याचनाओं से तंग करना नहीं चाहता; फिर भी दया के निमित्त पुकारने से सेवा के नि:स्वार्थ भाव का प्रतिवाद नहीं होता। इसका अच्छा उदाहरण गजेन्द्र है, जिसने मगर के जबड़ों से स्वयं को छुड़ाये जाने के लिए भगवान् से याचना की। श्रील प्रभुपाद लिखते हैं—

> "शुद्ध भक्तों को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से कुछ भी नहीं माँगना रहता, किन्तु हाथियों का राजा गजेन्द्र परिस्थितिवश तुरन्त वरदान की याचना कर रहा था, क्योंकि उसे अपनी रक्षा का कोई अन्य उपाय नहीं सूझ रहा था। कभी कभी, कोई विकल्प न होने पर, शुद्ध भक्त भगवत्कृपा पर पूर्णतया आश्रित होने से कुछ वरदानों के लिए प्रार्थना करता है। किन्तु ऐसी प्रार्थना में खेद भी व्यक्त होता है।"
> (*भागवत* ८.३.२१ तात्पर्य)

महारानी कुन्ती ने भी अपनी प्रार्थनाओं में ऐसी ही विशेष विनती की थी—

अथ विश्वेश विश्वात्मन् विश्वमूर्ते स्वकेषु मे।
स्नेहपाशमिमं छिन्धि दृढं पाण्डुषु वृष्णिषु॥

"हे ब्रह्माण्ड के स्वामी! हे विश्वात्मा, हे विश्वरूप! आप पाण्डवों तथा वृष्णियों से, जो मेरे परिजन हैं, मेरे स्नेह के बन्धन को छिन्न कर दें।" (*भागवत* १.८.४१) ऐसे अवसरों पर शुद्ध भक्त भौतिक वर न माँग कर यह चाहते हैं कि भगवान् हस्तक्षेप करें और ऐसा कुछ करें कि भक्तजन उनके प्रति पूरी तरह आत्मसमर्पण कर सकें। महारानी कुन्ती की याचना के बारे में श्रील प्रभुपाद लिखते हैं :

> भगवान् का शुद्ध भक्त अपने स्वार्थ के लिए भगवान् से कोई वस्तु माँगने में लज्जा का अनुभव करता है, किन्तु गृहस्थजन कभी कभी पारिवारिक स्नेह के बंधन से बँधे होने के कारण भगवान् से कुछ माँगने के लिए बाध्य हो जाते हैं। श्रीमती कुन्तीदेवी इस तथ्य से अवगत थीं; इसलिए उन्होंने भगवान् से प्रार्थना की कि वे उनके परिजनों—पाण्डवों तथा वृष्णियों—के प्रति स्नेह बन्धन को काट दें। (*भागवत* १.८.४१ तात्पर्य)

यही नहीं, इस युग के वैष्णवों के ऐसे अनेक हृदयस्पर्शी गीत हैं, जिनमें वे भक्तिपथ पर व्यक्तिगत सहायता के लिए भगवान् को पुकारते हैं। उदाहरणार्थ, श्रील भक्तिविनोद ठाकुर का 'गोपीनाथ' गीत है—

> "हे गोपीनाथ! यह लगातार रोदन करने वाला पापी आपके दिव्य चरणों पर नित्य स्थान पाने की भिक्षा माँगता है। कृपया उसे अपनी कृपा प्रदान करें।
>
> हे गोपीनाथ! आप कुछ भी करने में समर्थ हैं, इसलिए आपमें सभी पापियों का उद्धार करने की शक्ति है। भला मुझसे बढ़कर अन्य पापी कौन है?"

भक्त अपनी अयोग्यताओं पर गहन विचार करते हुए तथा विशेष सहायता की याचना करते हुए अपने रक्षक से दयालु बनने के लिए प्रार्थना करता है। भक्त द्वारा भगवान् पर अपनी पूर्ण आश्रितता का ज्ञान उसकी शुद्धि के लिए अनिवार्य है। वह जानता है कि यदि भगवान् हरि उसकी नहीं सुनेंगे, तो उसके पास कोई दूसरा चारा नहीं है।

राजा कुलशेखर हमें शिक्षा देते हैं कि सभी अवसरों पर, चाहे हम भगवान् के सर्वाकर्षक नाम, रूप तथा लीलाओं में लीन रहकर ध्यान में हों या भवसागर में डूबते हुए निराशा में हों, हमें किस तरह भगवान् कृष्ण की ओर मुड़ना चाहिए।

श्लोक ५०

क्षीरसागरतरङ्गशीकरा-
सारतारकितचारुमूर्तये।
भोगिभोगशयनीयशायिने
माधवाय मधुविद्विषे नमः॥ ५०॥

क्षीर—दुग्ध के; **सागर**—सागर में; **तरङ्ग**—लहरों से; **शीकर**—छींटे की; **आसार**—फुहार से; **तारकित**—चिन्हित; **चारु**—आकर्षक; **मूर्तये**—स्वरूप; **भोगि**—सर्प के (अनन्त शेष के); **भोग**—शरीर की; **शयनीय**—शैया पर; **शायिने**—लेटे हुए; **माधवाय**—भगवान् माधव को; **मधु-विद्विषे**—मधु दैत्य के विरोधी (वैरी); **नमः**—नमस्कार।

अनुवाद

मधु दैत्य के शत्रु, भगवान् माधव को नमस्कार है। शेषनाग की शैया पर लेटा हुआ उनका सुन्दर रूप क्षीरसागर की तरंगों से उठने वाले छींटों से सुशोभित है।

तात्पर्य

यह उन क्षीरोदकशायी विष्णु, भगवान् कृष्ण के विस्तार का सजीव दृश्य है, जो आध्यात्मिक ग्रह श्वेतद्वीप में निवास करते हैं। श्रील व्यासदेव ने भी *श्रीमद्भागवत* (३.८.२४) में योगनिद्रा लीन भगवान् विष्णु के सौन्दर्य का वर्णन किया है—

"भगवान् के दिव्य शरीर की कान्ति मूंगे के पर्वत की सुन्दरता को लजाने वाली थी। मूंगे का पर्वत संध्याकालीन आकाश के द्वारा सुंदर ढंग से अलंकृत किया जाता है, किन्तु भगवान् की पीत वेशभूषा उसके सौन्दर्य का उपहास कर रही थी। इस पर्वत की चोटी पर स्वर्ण है, किन्तु भगवान् का रत्नजड़ित मुकुट उसका उपहास कर रहा है। पर्वत के झरने, वनस्पतियाँ, पुष्पों के दृश्यपटल हारों की तरह प्रतीत होते हैं, किन्तु भगवान् का विराट शरीर तथा उनके हाथ-पाँव रत्नों, मोतियों, तुलसीदलों तथा पुष्पमालाओं से आभूषित होकर पर्वत के दृश्य का उपहास कर रहे थे।"

राजा कुलशेखर भगवान् विष्णु को मधु का हन्ता कहते हैं। यद्यपि क्षीरोदकशायी विष्णु के रूप में भगवान् ने मधु का वध नहीं किया था, किन्तु भगवान् को उनकी किसी भी लीला के नाम से सम्बोधित करने में कोई विरोधाभास नहीं है। जैसाकि श्रील कृष्णदास कविराज ने *चैतन्यचरितामृत* (*आदि* ५.१२८-१३०, १३२) में इंगित किया है—

"अवतार तथा समस्त अवतारों के उद्गम के बीच कोई अन्तर नहीं है। पहले भगवान् कृष्ण को विभिन्न लोगों द्वारा भिन्न भिन्न सिद्धान्तों के प्रकाश में माना जाता था। कुछ कहते थे कि कृष्ण साक्षात् भगवान् नर-नारायण थे, तो कुछ उन्हें वामनदेव का अवतारी कहते थे। कुछ लोग भगवान् कृष्ण को क्षीरोदकशायी भगवान् का अवतार कहते थे। ये सारे नाम सही हैं... जो व्यक्ति जिस रूप में उन्हें जानता है, वैसे ही वह उनके विषय में कहता है। इसमें कोई मिथ्या भाष्य नहीं है, क्योंकि कृष्ण में सब कुछ सम्भव है।"

भगवान् विष्णु का क्षीरोदकशायी रूप सबको, यहाँ तक कि उन्नत भक्तों को भी विरले ही दिखता है। कभी कभी जब ब्रह्माण्ड की व्यवस्था में संकट

उत्पन्न होता है, तो ब्रह्माजी क्षीरोदकशायी विष्णु से परामर्श करने श्वेतद्वीप जाते हैं। ब्रह्माजी क्षीरसागर के तट पर बैठ जाते हैं और *पुरुष-सूक्त* स्तुति का उच्चारण करते हैं। तब उन्हें ध्यान में भगवान् के आदेश सुनाई पड़ते हैं।

क्षीरसागर के छींटों से सुशोभित भगवान् का स्वरूप परम सत्य की निर्विशेष कल्पना का उपहास करता है। समस्त अवतारों के उद्गम निर्विशेष तेज नहीं, अपितु स्वयं परम पुरुष दिव्य भगवान् हैं। राजा कुलशेखर नाना प्रकार के चित्र न खींचकर, श्वेतद्वीप के स्वामी के वैदिक वर्णन का दृढ़ता से पालन करते हैं।

श्लोक ५१

अलमलमलमेका प्राणिनां पातकानां
निरसनविषये या कृष्ण कृष्णेति वाणी।
यदि भवति मुकुन्दे भक्तिरानन्दसान्द्रा
करतलकलिता सा मोक्षसाम्राज्यलक्ष्मीः॥ ५१॥

अलम् अलम् अलम्—बस, बस, बस; **एका**—अपने में; **प्राणिनाम्**—प्राणियों के; **पातकानाम्**—पापों का; **निरसन**—दूर भगाना; **विषये**—के बारे में; **या**—जो; **कृष्ण कृष्ण**—कृष्ण कृष्ण; **इति**—इस प्रकार; **वाणी**—शब्द; **यदि**—यदि; **भवति**—होती है; **मुकुन्दे**—भगवान् मुकुन्द में; **भक्तिः**—भक्ति; **आनन्द**—आनन्द के साथ; **सान्द्रा**—सघन; **कर-तल**—हथेली में; **कलिताः**—उपलब्ध; **सा**—वह (भक्ति); **मोक्ष**—मोक्ष; **साम्राज्य**—प्रभाव; **लक्ष्मीः**—तथा ऐश्वर्य।

अनुवाद

'कृष्ण कृष्ण' ये शब्द स्वयं में समस्त जीवों के पापों से छुटकारा पाने के लिए पर्याप्त हैं। जो व्यक्ति अत्यधिक आनन्द से युक्त भगवान् मुकुन्द की भक्ति में संलग्न है, वह अपनी हथेली में मोक्ष, सांसारिक प्रभाव तथा सम्पत्ति के उपहार धारण करता है।

तात्पर्य

राजा कुलशेखर की यह घोषणा कि पवित्र नाम पापों को दूर कर देता है, नामाचार्य हरिदास ठाकुर द्वारा कहे गये वैसे ही एक कथन का स्मरण कराने

वाला है। पहले वे एक श्लोक उद्धृत करते हैं, जिसमें वे उदय होते सूर्य की उपमा देते हैं—

अंहः संहरदखिलं सकृदुदयादेव सकललोकस्य।
तरणिरिव तिमिरजलधिं जयति जगन्मङ्गलं हरेर्नाम॥

"जिस प्रकार से उगता सूर्य संसार के समुद्र जैसे अगाध अंधकार को तुरन्त दूर कर देता है, उसी तरह यदि अपराधरहित होकर एक बार भी पवित्र हरिनाम लिया जाये, तो वह जीव के पापमय जीवन के सारे प्रतिफलों को मिटा देता है। भगवान् के पावन नाम की जय हो, जो कि सम्पूर्ण जगत के लिए शुभ है।" (*चैतन्यचरितामृत, अन्त्य* ३.१८१)

इसके आगे हरिदास ठाकुर इस श्लोक की व्याख्या इस प्रकार करते हैं : जिस प्रकार सूर्य प्रकाश की पहली झलक से चोरों तथा भूतप्रेतों का डर दूर हो जाता है, उसी तरह भगवन्नाम के पहले निरपराध उच्चारण के संकेत मात्र से पापमय जीवन की प्रतिक्रियाएँ तुरन्त लुप्त हो जाती हैं। यदि भक्त निरपराध रहकर लगातार जप करता रहे, तो वह कृष्ण का आनन्दमय प्रेम जागृत कर सकता है।

तत्पश्चात् हरिदास ठाकुर ने कहा है, "मुक्ति तो पवित्र नाम के निरपराध जप की जागृति की झलक से प्राप्त होने वाला तुच्छ फल है।" जब हरिदास ठाकुर ने यह दावा किया, तो एक कर्मकाण्डी ब्राह्मण ने ललकारकर कहा कि उन्होंने पवित्र नाम की शक्तियों को बढ़ा-चढ़ाकर बताया है। किन्तु हरिदास ठाकुर ने शास्त्रीय प्रमाण के साथ उत्तर दिया। उन्होंने अजामिल का दृष्टान्त रखा, जिसने भगवान् के नाम का उच्चारण अपने पुत्र, नारायण को पुकारने के लिए किया था, फिर भी वह अपने पापों से तुरन्त मुक्त कर दिया गया और उसे अन्त में आध्यात्मिक जगत प्राप्त हुआ। हरिदास ने *श्रीमद्भागवत* से भी एक श्लोक उद्धृत करके सिद्ध किया कि शुद्ध भक्त सेवा किये बिना मुक्त होने की अपेक्षा भगवान् की सेवा करने को अधिक प्रधानता देते हैं।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर अपनी पुस्तक *हरिनामचिन्तामणि* में नाम जप की अवस्थाओं का विस्तृत वर्णन करते हैं : अज्ञान तथा अपराधों से भरा जप *नाम-अपराध* कहलाता है। अगली अवस्था जो अभी तक अपूर्णताओं से युक्त है, *नाम-आभास* अर्थात् नाम की छाया कहलाती है। यह वह अवस्था है, जिसमें

पापों से छुटकारा तथा मोक्ष भी प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु शुद्ध *कृष्णप्रेम* तभी प्राप्त होता है, जब मनुष्य अपराधरहित जप करता है। यह अवस्था *शुद्ध नाम* या पवित्र नाम का शुद्ध जप कहलाती है।

राजा कुलशेखर कहते हैं कि जिसने कृष्णप्रेम पा लिया है, उसके लिए अन्य सारे वरदान जिनमें मुक्ति तथा लक्ष्मी के उपहार सम्मिलित हैं, उसकी मुट्ठी में होते हैं। मुक्ति के प्रति भक्त की उदासीनता बिल्वमंगल ठाकुर द्वारा उनके *श्रीकृष्ण कर्णामृत* (१०७) में व्यक्त हुई है—

भक्तिस्त्वयि स्थिरतरा भगवन् यदि स्याद्
दैवेन नः फलति दिव्यकिशोरमूर्तिः।
मुक्तिः स्वयं मुकुलिताञ्जलि सेवतेऽस्मान्
धर्मार्थकामगतयः समयप्रतीक्षाः॥

"हे प्रभु, यदि मैं आपकी दृढ़ भक्ति में लगा रहता हूँ, तो मैं आपके दिव्य किशोर रूप को आसानी से देख सकता हूँ और जहाँ तक मुक्ति का प्रश्न है, वह मेरे द्वार पर हाथ जोड़े खड़ी रहती है और मेरी सेवा करने के लिए प्रतीक्षा करती रहती है और धर्म, आर्थिक विकास तथा इन्द्रियतृप्ति की सारी भौतिक सुविधाएँ भी उसके साथ खड़ी रहती हैं।"

शुद्ध भक्त आसानी से धन तथा मुक्ति पा लेता है, किन्तु उसकी रुचि उनमें नहीं होती। जैसाकि श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती ने अपने श्रीचैतन्य चन्द्रामृत (५) में लिखा है, "(शुद्ध भक्त के लिए) निर्विशेष मुक्ति नरक जाने के समान ही स्वाद देने वाली होती है और देवताओं की स्वर्गपुरियाँ उतनी ही सच लगती हैं, जितने कि हवा में तैरते हुए काल्पनिक फूल।" भक्त *आत्माराम* (स्वयम् संतुष्ट) होता है, क्योंकि वह जानता रहता है कि कृष्ण की भक्ति सब कुछ प्रदान करने वाली है।

श्लोक ५२

यस्य प्रियौ श्रुतिधरौ कविलोकवीरौ
मित्रौ द्विजन्मवरपद्मशरावभूताम्।
तेनाम्बुजाक्षचरणाम्बुजषट्पदेन
राज्ञा कृता कृतिरियं कुलशेखरेण॥ ५२॥

यस्य—जिसके; **प्रियौ**—प्रिय; **श्रुति-धरौ**—वेदज्ञान में दक्ष; **कवि**—कवियों के; **लोक**—समाज में; **वीरौ**—विख्यात नेतागण; **मित्रौ**—दो मित्र; **द्वि-जन्म**—ब्राह्मणों के; **वर**—श्रेष्ठ; **पद्म**—कमल के; **शरौ**—दंड; **अभूताम्**—बन गये हैं; **तेन**—उसके द्वारा; **अम्बुज-अक्ष**—कमलनेत्र वाले भगवान् के; **चरण-अम्बुज**—चरणकमलों पर; **षट्-पदेन**—मधुमक्खी द्वारा; **राज्ञा**—राजा द्वारा; **कृता**—बनायी गयी; **कृतिः**—रचना; **इयम्**—यह; **कुलशेखरेण**—कुलशेखर द्वारा।

अनुवाद

यह ग्रन्थ राजा कुलशेखर द्वारा रचा गया, जो कमलनेत्र भगवान् के चरणकमलों में मधुमक्खी के समान है। राजा के दो प्रिय मित्र ब्राह्मण जाति के अति सुंदर कमल के दो नालों के समान हैं, जो कवि समुदाय के नायकों के रूप में विख्यात कुशल वैदिक पंडित हैं।

तात्पर्य

राजा कुलशेखर ने भगवान् कृष्ण के चरणकमल पर बैठने वाली मधुमक्खी की तरह, अपने अति सुन्दर काव्य के रूप में मधु का निर्माण किया है, जो परम भगवान् के अमृतमय वर्णनों से छलक रहा है। उन्होंने भौतिक दुखों के सागर से उद्धार पाने के लिए भगवान् से पुकार भी की है। अनेक रूपकों का प्रयोग करते हुए तथा निष्ठावान् वैष्णव भावों की गहराई से बोलते हुए उन्होंने पाठकों को ऋणी बना लिया है। अब वे भी भ्रमर बनकर *मुकुन्दमाला स्तोत्र* का मधुपान कर सकते हैं।

भक्त के जो २६ गुण गिनाये गये हैं, उनमें एक यह भी है कि वह *कवि* होता है। भक्त के कीर्तन तथा श्रवण के विषयों में भगवान् कृष्ण का अति उत्तम नाम, रूप, गुण तथा लीलाएँ सम्मिलित रहती हैं। योग्य कवि कृष्णभावनामृत को परम्परा से प्राप्त करता है और इसे वह उत्तमोत्तम पद्यों तथा प्रवचनों में रचता है। इसीलिए श्रीमद्भागवत के बारे में कहा जाता है कि, "यह श्री शुकदेव गोस्वामी के अधरों से निस्सृत है। इसीलिए यह फल (वैदिक वाङ्मय के कल्पतरु का) और भी अधिक सुस्वादु हो गया है, यद्यपि इसका अमृत रस पहले से मुक्तात्माओं समेत सबों के लिए सुस्वादु था।" (*भागवत* १.१.३) भागवत के प्रति श्रील शुकदेव गोस्वामी के योगदान का वर्णन करते हुए श्रील प्रभुपाद ने लिखा है, "ज्ञान के परिपक्व वैदिक फल जो

श्रीशुकदेव गोस्वामी के अधरों से कहा गया, उनकी तुलना शुक (तोते) से की गई है, इसका कारण यह नहीं है कि उन्होंने जिस रूप में अपने विद्वान पिता से भागवत सुना था, उसी रूप में सुना सके अपितु उन्होंने इस ग्रन्थ को ऐसी विधि से प्रस्तुत किया कि वह सभी वर्ग के लोगों को आकृष्ट कर सका।" शुकदेव गोस्वामी की ही तरह राजा कुलशेखर ने भी वैदिक निर्णयों को हृदयंगम किया और उनमें भक्ति रस के अपने निजी स्वाद को जोड़ दिया है।

श्रीकृष्णदास कविराज ने अपने *गोविन्द लीलामृत* के प्रत्येक अनुच्छेद का अन्त राजा कुलशेखर द्वारा कही गई वैसी ही बातों का उल्लेख करके किया है। वे लिखते हैं, *श्रीचैतन्यपदारविरन्दमधुपश्रीरूपसेवाफले*—"यह पुस्तक मेरी उस सेवा का फल है, जो मैंने श्रील रूप गोस्वामी की सेवा करके प्राप्त की है। श्री रूप गोस्वामी उस भ्रमर की भाँति हैं, जो श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों के मधु का आस्वादन करता है।"

बिल्वमंगल ठाकुर ने भी अपने *श्रीकृष्णकर्णामृत* (९२) में कृष्ण-भावनामृत के मधुर अमृतमय रस को व्यक्त किया है—

मधुरं मधुरं वपुरस्य विभोः
मधुरं मधुरं वदनं मधुरम्।
मधुगन्धि मृदुस्मितमेतदहो
मधुरं मधुरं मधुरं मधुरम्॥

"कृष्ण का यह दिव्य शरीर मधुर है, उनका मुखमंडल उससे भी मधुर है। किन्तु उनकी मंद मुस्कान, जिसमें मधु की महक है, उससे भी अधिक मधुर है।"

श्लोक ५३

मुकुन्दमालां पठतां नराणा-
मशेषसौख्यं लभते न कः स्वित्।
समस्तपापक्षयमेत्य देही
प्रयाति विष्णोः परमं पदं तत्॥ ५३॥

मुकुन्द-मालाम्—भगवान् मुकुन्द के लिए फूलों की इस माला का; **पठताम्**—पाठ करने वाले; **नराणाम्**—मनुष्यों में से; **अशेष**—पूर्ण; **सौख्यम्**—सुख; **लभते न**—

प्राप्त नहीं करता; **कः स्वित्**—कौन ऐसा है; **समस्त**—सबों का; **पाप**—पाप; **क्षयम्**—उन्मूलन; **एत्य**—प्राप्त करके; **देही**—देहवान् व्यक्ति; **प्रयाति**—आगे बढ़ता है; **विष्णोः**—भगवान् विष्णु का; **परमम्**—परम; **पदम्**—धाम को; **तत्**—उस।

अनुवाद

इस मुकुन्दमाला का पाठ करने वालों में से ऐसा कौन है, जिसे पूर्ण सुख प्राप्त नहीं होगा? जो भी देहधारी जीव इन स्तुतियों का उच्चारण करता है, उसके सारे पापफल समूल नष्ट हो जाते हैं और वह सीधे भगवान् विष्णु के परम धाम को जाता है।

तात्पर्य

शास्त्रीय परम्परा का पालन करते हुए राजा कुलशेखर इस काव्य का समापन अपने पाठकों को शुभ आशीर्वाद देने के साथ करते हैं। हमें *श्रीमद्भागवत* में ऐसे अनेक आशीर्वाद मिलते हैं। उदाहरणार्थ, सातवें स्कन्ध में यह कथन है, "जो भी प्रह्लाद महाराज के कार्यकलापों, हिरण्यकशिपु के वध तथा भगवान् नृसिंहदेव के कार्यकलापों से सम्बन्धित इस कथा को ध्यान से सुनता है, वह निश्चित रूप से आध्यात्मिक जगत में पहुँचता है, जहाँ कोई उद्वेग नहीं होता।" (*भागवत* ७.१०.४७)

पाठक को इस वैष्णव कवि का आशीर्वाद कोरी साहित्यिक शैली का द्योतक नहीं है। *श्रीमद्भागवत* या *मुकुन्दमाला स्तोत्र* किसी भी श्रोता को पूर्ण आशीर्वाद प्रदान करने वाले और उसे भगवद्धाम वापस भेजने वाले हैं। पाठक को केवल उन उच्च विचारों पर विचार करना होगा, जिनकी राजा कुलशेखर ने इस काव्य में व्याख्या की है। उदाहरणार्थ, उन्होंने प्रायः उल्लेख किया है कि भगवान् के पवित्र नाम हमें *संसार* से बचा सकते हैं और उन्होंने हमें रक्षा हेतु, भगवान् के नामों को पुकारने का उपदेश दिया है। निस्सन्देह, यह *मुकुन्दमाला स्तोत्र* कृष्णनाम का जप करने, उनके समक्ष नतमस्तक होने और अपनी समस्त इन्द्रियों तथा मन से उनकी सेवा करने के मैत्रीपूर्ण उपदेश से ओतप्रोत है। राजा कुलशेखर ने हमें कृष्ण के दास के दास के दास के दास के दास के दास का दास बनने की सलाह दी है। वस्तुतः ये सारे कथन प्रत्यक्षतः पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तथा शास्त्रों की ओर से आदेश हैं। राजा कुलशेखर ने उन्हें अपनी वाणी में और अपने निजी दृढ़ विश्वास के साथ दुहराया है, किन्तु उनकी

प्रार्थनाओं के पीछे परमेश्वर की सत्ता का आधार है।

श्री श्रीमद् भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद ने इन सक्षम श्लोकों का 'राजा कुलशेखर की प्रार्थना' नाम से अनुवाद करने के लिए चुना। उन्होंने इनका अंग्रेजी अनुवाद अपनी पत्रिका "बैक टु गॉडहेड" के माध्यम से व्यापक वितरण हेतु करना शुरू किया था। यह हमारा सौभाग्य होगा कि हम इन श्लोकों को निष्ठा भाव से सुनते रहें, बारम्बार उनका गायन करें और उनका अध्ययन करें तथा उनका स्मरण करें। श्रील प्रभुपाद के अनुयायियों के रूप में हम श्लोक ३३ को विशेष रूप से स्मरण करना चाहेंगे।

कृष्ण त्वदीयपदपङ्कजपञ्जरान्तम्
अद्यैव मे विशतु मानसराजहंसः।
प्राणप्रयाणसमये कफवातपित्तैः
कण्ठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते॥

"हे भगवान् कृष्ण, इस समय मेरे मन रूपी राजहंस को अपने चरणकमल के तन्तुओं के जाल में प्रवेश करने दें। मृत्यु के समय जब मेरा गला कफ, वात तथा पित्त से अवरुद्ध हो जाएगा, तब मेरे लिए आपका स्मरण कर पाना कैसे सम्भव हो सकेगा?"

परिशिष्ट

श्रील प्रभपाद के विषय में

कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद का आविर्भाव १८९६ ई. में भारत के कलकत्ता नगर में हुआ था। अपने गुरु महाराज श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी से १९२२ में कलकत्ता में उनकी प्रथम भेंट हुई। एक सुप्रसिद्ध धर्म तत्त्ववेत्ता, अनुपम प्रचारक, विद्वान-भक्त, आचार्य एवं चौसठ गौड़ीय मठों के संस्थापक श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती को ये सुशिक्षित नवयुवक प्रिय लगे और उन्होंने वैदिक ज्ञान के प्रचार के लिए अपना जीवन समर्पित करने की इनको प्रेरणा दी। श्रील प्रभुपाद उनके छात्र बने और ग्यारह वर्ष बाद (१९३३ ई.) प्रयाग (इलाहाबाद) में उनके विधिवत् दीक्षा-प्राप्त शिष्य हो गए।

अपनी प्रथम भेंट में ही श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने श्रील प्रभुपाद से निवेदन किया था कि वे अंग्रेजी भाषा के माध्यम से वैदिक ज्ञान का प्रसार करें। आगामी वर्षों में श्रील प्रभुपाद ने *भगवद्गीता* पर एक टीका लिखी, गौड़ीय मठ के कार्य में सहयोग दिया तथा १९४४ ई. में बिना किसी की सहायता के एक अंग्रेजी पाक्षिक पत्रिका आरम्भ की। उसका सम्पादन, पाण्डुलिपि का टंकण और मुद्रित सामग्री के प्रूफ शोधन का सारा कार्य वे स्वयं करते थे। अब यह उनके शिष्यों द्वारा चलाई जा रही है और तीस से अधिक भाषाओं में छप रही है।

श्रील प्रभुपाद के दार्शनिक ज्ञान एवं भक्ति की महत्ता पहचान कर गौड़ीय

वैष्णव समाज ने १९४७ ई. में उन्हें भक्तिवेदान्त की उपाधि से सम्मानित किया। १९५० ई. में श्रील प्रभुपाद ने गृहस्थ जीवन से अवकाश लेकर वानप्रस्थ ले लिया जिससे वे अपने अध्ययन और लेखन के लिए अधिक समय दे सकें। तदनन्तर श्रील प्रभुपाद ने श्री वृन्दावन धाम की यात्रा की, जहाँ वे अत्यन्त साधारण परिस्थितियों में मध्यकालीन ऐतिहासिक श्रीराधा-दामोदर मन्दिर में रहे। वहाँ वे अनेक वर्षों तक गम्भीर अध्ययन एवं लेखन में संलग्न रहे। १९५९ ई. में उन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया। श्रीराधा-दामोदर मन्दिर में ही श्रील प्रभुपाद ने अपने जीवन के सबसे श्रेष्ठ और महत्त्वपूर्ण कार्य को प्रारम्भ किया था। यह कार्य था अठारह हजार श्लोक संख्या वाले *श्रीमद्भागवतम्* पुराण का अनेक खण्डों में अंग्रेजी में अनुवाद और व्याख्या। वहीं उन्होंने अन्य लोकों की सुगम यात्रा नामक पुस्तिका भी लिखी थी।

श्रीमद्भागवतम् के प्रारम्भ के तीन खण्ड प्रकाशित करने के बाद श्रील प्रभुपाद सितम्बर १९६५ ई. में अपने गुरुदेव के आदेश का पालन करने के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका गए। तत्पश्चात् श्रील प्रभुपाद ने भारतवर्ष के श्रेष्ठ दार्शनिक और धार्मिक ग्रन्थों के प्रामाणिक अनुवाद, टीकाएँ एवं संक्षिप्त अध्ययन-सार के रूप में साठ से अधिक ग्रन्थ-रत्न प्रस्तुत किए।

जब श्रील प्रभुपाद एक मालवाहक जलयान द्वारा प्रथम बार न्यूयार्क नगर में आये तो उनके पास एक पैसा भी नहीं था। अत्यन्त कठिनाई भरे लगभग एक वर्ष के बाद जुलाई १९६६ ई. में उन्होंने, अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ की स्थापना की। १४ नवम्बर १९७७ ई. को, कृष्ण-बलराम मन्दिर, श्रीवृन्दावन धाम में अप्रकट होने के पूर्व श्रील प्रभुपाद ने अपने कुशल मार्ग-निर्देशन से संघ को विश्वभर में सौ से अधिक आश्रमों, विद्यालयों, मन्दिरों, संस्थाओं और कृषि-समुदायों का बृहद् संगठन बना दिया।

श्रील प्रभुपाद ने श्रीधाम-मायापुर, पश्चिम बंगाल में एक विशाल अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र के निर्माण की प्रेरणा दी। यहीं पर वैदिक साहित्य के अध्ययनार्थ सुनियोजित संस्थान की योजना है, जो अगले दस वर्ष तक पूर्ण हो जाएगा। इसी प्रकार श्रीवृन्दावन धाम में भव्य कृष्ण-बलराम मन्दिर और अन्तर्राष्ट्रीय अतिथि भवन तथा श्रील प्रभुपाद-स्मृति संग्रहालय का निर्माण हुआ है। ये वे केन्द्र हैं जहाँ पाश्चात्य लोग वैदिक संस्कृति के मूल रूप का प्रत्यक्ष

अनुभव प्राप्त कर सकते हैं। मुंबई में भी श्रीराधारासबिहारीजी मन्दिर के रूप में एक विशाल सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक केन्द्र का विकास हो चुका है। इसके अतिरिक्त भारत में दिल्ली, बैंगलोर, अहमदाबाद, बड़ौदा तथा अन्य स्थानों पर सुन्दर मन्दिर हैं।

किन्तु, श्रील प्रभुपाद का सबसे बड़ा योगदान उनके ग्रन्थ हैं। ये ग्रन्थ विद्वानों द्वारा अपनी प्रामाणिकता, गम्भीरता और स्पष्टता के कारण अत्यन्त मान्य हैं और अनेक महाविद्यालयों में उच्चस्तरीय पाठ्यग्रन्थों के रूप में प्रयुक्त होते हैं। श्रील प्रभुपाद की रचनाएँ ५० से अधिक भाषाओं में अनूदित हैं। १९७२ ई. में केवल श्रील प्रभुपाद के ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए स्थापित भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, भारतीय धर्म और दर्शन के क्षेत्र में विश्व का सबसे बड़ा प्रकाशक हो गया है। इस ट्रस्ट का एक अत्यधिक आकर्षक प्रकाशन श्रील प्रभुपाद द्वारा केवल अठारह मास में पूर्ण की गई उनकी एक अभिनव कृति है जो बंगाली धार्मिक महाग्रन्थ श्रीचैतन्यचरितामृत का सत्रह खण्डों में अनुवाद और टीका है।

बारह वर्षों में, अपनी वृद्धावस्था की चिन्ता न करते हुए श्रील प्रभुपाद ने विश्व के छहों महाद्वीपों की चौदह परिक्रमाएँ कीं। इतने व्यस्त कार्यक्रम के रहते हुए भी श्रील प्रभुपाद की उर्वरा लेखनी अविरत चलती रहती थी। उनकी रचनाएँ वैदिक दर्शन, धर्म, साहित्य और संस्कृति के एक यथार्थ पुस्तकालय का निर्माण करती हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

मुकुन्दमाला स्तोत्र के तात्पर्यों की पुष्टि मानक वैदिक विद्वानों द्वारा की गई है। इस पुस्तक में निम्नांकित प्रामाणिक शास्त्रों को उद्धृत किया गया है।

आदि पुराण
ईशोपनिषद्
उपदेशामृत
कलिसन्तरण उपनिषद्
कृष्ण, लीला पुरुषोत्तम भगवान्
कृष्णकर्णामृत
चैतन्यचरितामृत
महारानी कुन्ती की शिक्षाएँ
नारद पञ्चरात्र
भक्तिरसामृत सिन्धु
पद्मपुराण
पद्यावली
बृहद्भागवतामृत
ब्रह्म-संहिता
भगवद्गीता
महाभारत
कृष्णभक्ति की अनुपम भेंट
मुकुन्दमाला स्तोत्र
शरणागति
शिक्षाष्टक
स्तोत्ररत्न
श्रीमद्भागवतम्
श्वेताश्वतर उपनिषद्
हरिभक्ति सुधोदय

श्लोकानुक्रमणिका

निम्नलिखित सूची में इस ग्रंथ के श्लोकों की प्रत्येक पंक्ति संस्कृत वर्णमाला के क्रमानुसार छाँटकर दी गई है। प्रथम स्तम्भ में श्लोकों की पंक्तियाँ दी गई हैं। दूसरे स्तम्भ में श्लोक क्रमांक तथा तीसरे स्तम्भ में पृष्ठ क्रमांक दिये गये हैं। श्लोकों को संस्कृत वर्णमाला के अनुसार इस क्रम से क्रमबद्ध किया गया है :

ॐ अँ अं अः अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ए ऐ अॅ ओ औ ऑ
क् ख् ग् घ् ङ् च् छ् ज् झ् ञ् ट् ठ् ड् ढ् ण्
त् थ् द् ध् न् प् फ् ब् भ् म् य् र् ल् व्
श् ष् स् ह् ळ् ।(विराम) ऽ(अवग्रह)

सूचना :

क = क्अ का = क्आ कि = क्इ कृ = क्ऋ
क्ष = क्ष ज्ञ = ज्ञ श्र = श्र शृ = शृ = श्ऋ
श्व = श्व श्च = श्च

अद्यैव मे विशतु मानसराजहंसः। ..... श्लोक ३३ ९६
अनन्त वैकुण्ठ मुकुन्द कृष्ण ..... श्लोक २९ ८६
अन्तर्ज्योतिरमेयमेकममृतं कृष्णाख्यमापीयतां ..... श्लोक १५ ५३
अन्धस्य मे हृतविवेकमहाधनस्य ..... श्लोक ३६ १०५
अलमलमलमेका प्राणिनां पातकानां ..... श्लोक ५१ १४२
अवधीरितशारदारविन्दौ ..... श्लोक ६ ३३
अविस्मृतिस्त्वच्चरणारविन्दे ..... श्लोक ३ १९
अशेषसौख्यं लभते न कः स्वित्। ..... श्लोक ५३ १४६
अस्माकं सरसीरुहाक्ष सततं सम्पद्यतां जीवितम् ॥१८॥ ..... श्लोक १८ ६२
अहो जनानां व्यसनाभिमुख्यम् ॥२९॥ ..... श्लोक २९ ८६
आत्मन् संश्रय पुण्डरीकनयनं नागाचलेन्द्रस्थितं ..... श्लोक ३४ ९९
आम्नायाभ्यसनान्यरण्यरुदितं वेदव्रतान्यन्वहं ..... श्लोक २१ ७०

आलस्यं व्यपनीय भक्तिसुलभं ध्यायस्व नारायणं	श्लोक १०	४२
आलापिनं प्रतिदिनं कुरु मां मुकुन्द ॥१॥	श्लोक १	१
आश्चर्यमेतद्धि मनुष्यलोके	श्लोक ३८	११०
इदं शरीरं परिणामपेशलं	श्लोक ३७	१०८
उच्चैस्तरामुपदिशाम्यहमूर्ध्वबाहुः ॥४१॥	श्लोक ४१	११७
उद्धर्तुमर्हसि हरे पुरुषोत्तमोऽसि ॥४९॥	श्लोक ४९	१३७
एतत्प्रार्थ्यं मम बहु मतं जन्मजन्मान्तरेऽपि	श्लोक ५	३०
कण्ठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते ॥३३॥	श्लोक ३३	९६
कण्ठेन स्वरगद्गदेन नयनेनोद्गीर्णबाष्पाम्बुना।	श्लोक १८	६२
कथमहमिति चेतो मा स्म गाः कातरत्वम्।	श्लोक १२	४६
करचरणसरोजे कान्तिमन्नेत्रमीने	श्लोक ८	३७
करतलकलिता सा मोक्षसाम्राज्यलक्ष्मीः ॥५१॥	श्लोक ५१	१४२
करोमि नारायणपूजनं सदा।	श्लोक २७	८३
किमौषधं पृच्छसि मूढ दुर्मते	श्लोक ३७	१०८
कुम्भीपाकं गुरुमपि हरे नारकं नापनेतुम्।	श्लोक ४	२४
कृष्णं लोकय लोचनद्वय हरेर्गच्छाङ्घ्रियुग्मालयं	श्लोक २०	६७
कृष्ण त्वदीयपदपङ्कजपञ्जरान्तम्	श्लोक ३३	९६
कृष्णादेव समुत्थितं जगदिदं कृष्णस्य दासोऽस्म्यहं	श्लोक ४३	१२२
कृष्णे तिष्ठति विश्वमेतदखिलं हे कृष्ण रक्षस्व माम् ॥४३॥	श्लोक ४३	१२२
कृष्णेनाखिलशत्रवो विनिहताः कृष्णाय तस्मै नमः।	श्लोक ४३	१२२
कृष्णो रक्षतु नो जगत्त्रयगुरुः कृष्णं नमध्वं सदा	श्लोक ४३	१२२
के न प्रापुर्वाञ्छितं पापिनोऽपि।	श्लोक ४७	१३२
क्षीरसागरतरङ्गशीकरा-	श्लोक ५०	१४०
क्षुद्रा रुद्रपितामहप्रभृतयः कीटाः समस्ताः सुरा	श्लोक १४	५१
गोपीलोचनचातकाम्बुदमणिः सौन्दर्यमुद्रामणिः।	श्लोक ३०	८९
गोविन्द दामोदर माधवेति।	श्लोक २९	८६
गोविन्दे कुरु चित्तवृत्तिमचलामन्यैस्तु किं वर्तनैः ॥२३॥	श्लोक २३	७४
चरणौ ते मरणेऽपि चिन्तयामि ॥६॥	श्लोक ६	३३
चित्तं नैव निवर्तते क्षणमपि श्रीकृष्णपादाम्बुजान्	श्लोक ४२	१२०
चिन्तयामि हरिमेव सन्ततं	श्लोक ७	३५
चेतश्चिन्तय कीर्तयस्व रसने नम्रीभव त्वं शिरो	श्लोक ३४	९९
चौरैः प्रभो बलिभिरिन्द्रियनामधेयैः।	श्लोक ३६	१०५
जयतु जयतु कृष्णो वृष्णिवंशप्रदीपः।	श्लोक २	१०
जयतु जयतु देवो देवकीनन्दनोऽयं	श्लोक २	१०
जयतु जयतु पृथ्वीभारनाशो मुकुन्दः ॥२॥	श्लोक २	११
जयतु जयतु मेघश्यामलः कोमलाङ्गो	श्लोक २	११
जिघ्र घ्राण मुकुन्दपादतुलसीं मूर्धन्नमाधोक्षजम् ॥२०॥	श्लोक २०	६७
जिह्वे कीर्तय केशवं मुररिपुं चेतो भज श्रीधरं	श्लोक २०	६७
जिह्वे श्रीकृष्णमन्त्रं जप जप सततं जन्मसाफल्यमन्त्रम् ॥३१॥	श्लोक ३१	९१
जीवो जपत्यनुदिनं मरणे रणे वा	श्लोक ४०	११५
तत्त्वं प्रसीद भगवन्कुरु मय्यनाथे	श्लोक ४९	१३७
तत्त्वं ब्रुवाणानि परं परस्तान्	श्लोक २६	८१

श्लोक १० ४२
श्लोक १ १
श्लोक ३८ ११०
श्लोक ३७ १०८
श्लोक ४१ ११७
श्लोक ४९ १३७
श्लोक ५ ३०
श्लोक ३३ ९६
श्लोक १८ ६२
श्लोक १२ ४६
श्लोक ८ ३७
श्लोक ५१ १४२
श्लोक २७ ८३
श्लोक ३७ १०८
श्लोक ४ २४
श्लोक २० ६७
श्लोक ३३ ९६
श्लोक ४३ १२२
श्लोक ४३ १२२
श्लोक ४३ १२२
श्लोक ४३ १२२
श्लोक ४७ १३२
श्लोक ५० १४०
श्लोक १४ ५१
श्लोक ३० ८९
श्लोक २९ ८६
श्लोक २३ ७४
श्लोक ६ ३३
श्लोक ४२ १२०
श्लोक ७ ३५
श्लोक ३४ ९९
श्लोक ३६ १०५
श्लोक २ १०
श्लोक २ १०
श्लोक २ ११
श्लोक २ ११
श्लोक २० ६७
श्लोक २० ६७
श्लोक ३१ ९१
श्लोक ४० ११५
श्लोक ४९ १३७
श्लोक २६ ८१

तत्पीतं परमौषधं वितनुते निर्वाणमात्यन्तिकम् ॥१५॥ ..... श्लोक १५ ५३
तथापि परमानन्दो गोविन्दो मम जीवनम् ॥३९॥ ..... श्लोक ३९ ११३
तदर्चनं प्राणफलं दिवौकसः। ..... श्लोक ४६ १२९
तादृक् प्रेमधरानुरागमधुना मत्ताय मानं तु मे ॥४२॥ ..... श्लोक ४२ १२०
तीर्थानामवगाहनानि च गजस्नानं विना यत्पद- ..... श्लोक २१ ७०
तृष्णातोये मदनपवनोद्धूतमोहोर्मिमाले ..... श्लोक १३ ४८
तेजो निःश्वसनं मरुत्ततुरं रन्ध्रं सुसूक्ष्मं नभः। ..... श्लोक १४ ५१
तेन प्राप्तं गर्भवासादिदुःखम् ॥४७॥ ..... श्लोक ४७ १३२
तेनाम्बुजाक्षचरणाम्बुजषट्पदेन ..... श्लोक ५२ १४४
ते नेत्रे तमसोज्झिते सुरुचिरे याभ्यां हरिर्दृश्यते। ..... श्लोक १९ ६५
ते यान्ति सिद्धिं परमां तु वैष्णवीम् ॥४८॥ ..... श्लोक ४८ १३५
त्यक्त्वान्यवाचः कुहकाः पठन्ति ॥३८॥ ..... श्लोक ३८ ११०
त्यजन्तु बान्धवाः सर्वे निन्दन्तु गुरवो जनाः। ..... श्लोक ३९ ११३
त्यालापिनं प्रतिदिनं कुरु मां मुकुन्द ॥१॥ ..... श्लोक १ १
त्वत्पादाम्भोरुहयुगगता निश्चला भक्तिरस्तु ॥५॥ ..... श्लोक ५ ३०
त्वद्भृत्यभृत्यपरिचारकभृत्यभृत्य- ..... श्लोक २५ ७९
दारावर्ते तनयसहजग्राहसङ्घाकुले च। ..... श्लोक १३ ४८
दारा वाराकरवरसुता ते तनूजो विरिञ्चिः ..... श्लोक ४५ १२७
दिवि वा भुवि वा ममास्तु वासो ..... श्लोक ६ ३३
दुर्वादं परिघोषयन्तु मनुजा वंशे कलङ्कोऽस्तु वा ..... श्लोक ४२ १२०
दृष्टे यत्र स तारको विजयते श्रीपादधूलीकणः ॥१४॥ ..... श्लोक १४ ५१
देवे देवकिनन्दने सुरवरे चक्रायुधे शार्ङ्गिणि। ..... श्लोक २३ ७४
देवेश देहि कृपणस्य करावलम्बम् ॥३६॥ ..... श्लोक ३६ १०५
देहे न यस्य पुलकोद्गमरोमराजिः। ..... श्लोक ३५ १०२
दैत्येन्द्रार्तिकरौषधं त्रिभुवने सञ्जीवनैकौषधम्। ..... श्लोक ३२ ९४
द्वन्द्वाम्भोरुहसंस्मृतिं विजयते देवः स नारायणः ॥२१॥ ..... श्लोक २१ ७०
धन्यं पुण्यतमं तदेव परमं दैवं हि सत् सिद्धये ॥३४॥ ..... श्लोक ३४ ९९
धिक् तस्य जीवितमहो पुरुषाधमस्य ॥३५॥ ..... श्लोक ३५ १०२
ध्यायन्ति ये विष्णुमनन्तमव्ययं ..... श्लोक ४८ १३५
नन्दगोपतनयं परात्परं ..... श्लोक ७ ३५
नमामि नारायणपादपङ्कजं ..... श्लोक २७ ८३
नरकभिदि निषण्णा तारयिष्यत्यवश्यम् ॥१२॥ ..... श्लोक १२ ४६
नरके वा नरकान्तक प्रकामम्। ..... श्लोक ६ ३३
नाथेति नागशयनेति जगन्निवासेति ..... श्लोक १ १
नाथे धातरि भोगिभोगशयने नारायणे माधवे ..... श्लोक २३ ७४
नाथे नः पुरुषोत्तमे त्रिजगतामेकाधिपे चेतसा ..... श्लोक १७ ५८
नानाज्ञानमपास्य चेतसि नमो नारायणायेत्यमुं ..... श्लोक १६ ५६
नामानि नारायणगोचराणि ॥२६॥ ..... श्लोक २६ ८१
नामानि नारायणगोचराणि ..... श्लोक ३८ ११०
नारदादिमुनिवृन्दवन्दितम् ॥७॥ ..... श्लोक ७ ३५
नारायणाय नम इत्यमुमेव मन्त्रं ..... श्लोक ४१ ११७
नास्था धर्मे न वसुनिचये नैव कामोपभोगे ..... श्लोक ५ ३०

तत्पीतं परमौषधं वितनुते निर्वाणमात्यन्तिकम् ॥१५॥ ..... श्लोक १५ ५३
तथापि परमानन्दो गोविन्दो मम जीवनम् ॥३९॥ ..... श्लोक ३९ ११३
तदर्चनं प्राणफलं दिवौकसः । ..... श्लोक ४६ १२९
तादृक् प्रेमधरानुरागमधुना मत्ताय मानं तु मे ॥४२॥ ..... श्लोक ४२ १२०
तीर्थानामवगाहनानि च गजस्नानं विना यत्पद- ..... श्लोक २१ ७०
तृष्णातोये मदनपवनोद्धूतमोहोर्मिमाले ..... श्लोक १३ ४८
तेजो निःश्वसनं मरुत्तनुतरं रन्ध्रं सुसूक्ष्मं नभः । ..... श्लोक १४ ५१
तेन प्राप्तं गर्भवासादिदुःखम् ॥४७॥ ..... श्लोक ४७ १३२
तेनाम्बुजाक्षचरणाम्बुजषट्पदेन ..... श्लोक ५२ १४४
ते नेत्रे तमसोज्झिते सुरुचिरे याभ्यां हरिर्दृश्यते । ..... श्लोक १९ ६५
ते यान्ति सिद्धिं परमां तु वैष्णवीम् ॥४८॥ ..... श्लोक ४८ १३५
त्यक्त्वान्यवाचः कुहकाः पठन्ति ॥३८॥ ..... श्लोक ३८ ११०
त्यजन्तु बान्धवाः सर्वे निन्दन्तु गुरवो जनाः । ..... श्लोक ३९ ११३
त्यालापिनं प्रतिदिनं कुरु मां मुकुन्द ॥१॥ ..... श्लोक १ १
त्वत्पादाम्भोरुहयुगगता निश्चला भक्तिरस्तु ॥५॥ ..... श्लोक ५ ३०
त्वद्भृत्यभृत्यपरिचारकभृत्यभृत्य- ..... श्लोक २५ ७९
दारावर्ते तनयसहजग्राहसङ्घाकुले च । ..... श्लोक १३ ४८
दारा वाराकरवरसुता ते तनूजो विरिञ्चिः ..... श्लोक ४५ १२७
दिवि वा भुवि वा ममास्तु वासो ..... श्लोक ६ ३३
दुर्वादं परिघोषयन्तु मनुजा वंशे कलङ्कोऽस्तु वा ..... श्लोक ४२ १२०
दृष्टे यत्र स तारको विजयते श्रीपादधूलीकणः ॥१४॥ ..... श्लोक १४ ५१
देवे देवकिनन्दने सुरवरे चक्रायुधे शार्ङ्गिणि । ..... श्लोक २३ ७४
देवेश देहि कृपणस्य करावलम्बम् ॥३६॥ ..... श्लोक ३६ १०५
देहे न यस्य पुलकोद्गमरोमराजिः । ..... श्लोक ३५ १०२
दैत्येन्द्रार्तिकरौषधं त्रिभुवने सञ्जीवनैकौषधम् । ..... श्लोक ३२ ९४
द्वन्द्वाम्भोरुहसंस्मृतिं विजयते देवः स नारायणः ॥२१॥ ..... श्लोक २१ ७०
धन्यं पुण्यतमं तदेव परमं दैवं हि सत् सिद्धये ॥३४॥ ..... श्लोक ३४ ९९
धिक् तस्य जीवितमहो पुरुषाधमस्य ॥३५॥ ..... श्लोक ३५ १०२
ध्यायन्ति ये विष्णुमनन्तमव्ययं ..... श्लोक ४८ १३५
नन्दगोपतनयं परात्परं ..... श्लोक ७ ३५
नमामि नारायणपादपङ्कजं ..... श्लोक २७ ८३
नरकभिदि निषण्णा तारयिष्यत्यवश्यम् ॥१२॥ ..... श्लोक १२ ४६
नरके वा नरकान्तक प्रकामम् । ..... श्लोक ६ ३३
नाथेति नागशयनेति जगन्निवासेति ..... श्लोक १ १
नाथे धातरि भोगिभोगशयने नारायणे माधवे ..... श्लोक २३ ७४
नाथे नः पुरुषोत्तमे त्रिजगतामेकाधिपे चेतसा ..... श्लोक १७ ५८
नानाज्ञानमपास्य चेतसि नमो नारायणायेत्यमुं ..... श्लोक १६ ५६
नामानि नारायणगोचराणि ॥२६॥ ..... श्लोक २६ ८१
नामानि नारायणगोचराणि ..... श्लोक ३८ ११०
नारदादिमुनिवृन्दवन्दितम् ॥७॥ ..... श्लोक ७ ३५
नारायणाय नम इत्यमुमेव मन्त्रं ..... श्लोक ४१ ११७
नास्था धर्मे न वसुनिचये नैव कामोपभोगे ..... श्लोक ५ ३०

नाहं वन्दे तव चरणयोर्द्वन्द्वमद्वन्द्वहेतोः	श्लोक ४	२४
नित्यं त्वच्चरणारविन्दयुगलध्यानामृतास्वादिनाम्	श्लोक १८	६२
निन्दन्तु प्रियबान्धवा गुरुजना गृह्णन्तु मुञ्चन्तु वा।	श्लोक ४२	१२०
निरसनविषये या कृष्ण कृष्णेति वाणी।	श्लोक ५१	१४२
निरामयं कृष्णरसायनं पिब ॥३७॥	श्लोक ३७	१०८
नैवामी प्रभवन्ति पापरिपवः स्वामी ननु श्रीधरः।	श्लोक १०	४२
नोत्पद्यते नयनयोर्विमलाम्बुमाला	श्लोक ३५	१०२
पतत्यवश्यं शतसन्धिजर्जरम्।	श्लोक ३७	१०८
पाणिद्वन्द्व समर्चयाच्युतकथाः श्रोत्रद्वय त्वं शृणु।	श्लोक २०	६७
पादाम्भोजे वरद भवतो भक्तिनावं प्रयच्छ ॥१३॥	श्लोक १३	४८
पाषाणकाष्ठसदृशाय ददात्यभीष्टम् ॥४०॥	श्लोक ४०	११५
पृथ्वी रेणुरणुः पयांसि कणिकाः फल्गुः स्फुलिङ्गो लघु-	श्लोक १४	५१
प्रणाममीशस्य शिरःफलं विदुस्	श्लोक ४६	१२९
प्रयाति विष्णोः परमं पदं तत् ॥५३॥	श्लोक ५३	१४६
प्राणप्रयाणसमये कफवातपित्तैः	श्लोक ३३	९६
प्रावर्तय प्राञ्जलिरस्मि जिह्वे	श्लोक २६	८१
बद्धेनाञ्जलिना नतेन शिरसा गात्रैः सरोमोद्गमैः	श्लोक १८	६२
भक्तप्रियेति भवलुण्ठनकोविदेति।	श्लोक १	१
भक्तात्यन्तहितौषधं भवभयप्रध्वंसनैकौषधं	श्लोक ३२	९४
भक्तापायभुजाङ्गगारुडमणिस्त्रैलोक्यरक्षामणिर्	श्लोक ३०	८९
भवजलधिगतानां द्वन्द्ववाताहतानां	श्लोक ११	४४
भवजलधिमगाधं दुस्तरं निस्तरेयं	श्लोक १२	४६
भवति शरणमेको विष्णुपोतो नराणाम् ॥११॥	श्लोक ११	४४
भवन्तमेकान्तमियन्तमर्थम्।	श्लोक ३	१९
भवमरुपरिखिन्नः क्लेशमद्य त्यजामि ॥८॥	श्लोक ८	३७
भवे भवे मेऽस्तु भवत्प्रसादात् ॥३॥	श्लोक ३	१९
भावे भावे हृदयभवने भावयेयं भवन्तम् ॥४॥	श्लोक ४	२४
भृत्यस्य भृत्य इति मां स्मर लोकनाथ ॥२५॥	श्लोक २५	७९
भोगिभोगशयनीयशायिने	श्लोक ५०	१४०
मज्जन्मनः फलमिदं मधुकैटभारे	श्लोक २५	७८
मत्प्रार्थनीयमदनुग्रह एष एव।	श्लोक २५	७८
मदन परिहर स्थितिं मदीये	श्लोक २२	७२
मद्यैव मे विशतु मानसराजहंसः।	श्लोक ३३	९६
मधु क्षरन्तीव मुदावहानि।	श्लोक २६	८१
मनःफलं तद्गुणतत्त्वचिन्तनं	श्लोक ४६	१२९
मनसि मुकुन्दपदारविन्दधाम्नि।	श्लोक २२	७२
मन्त्रं सप्रणवं प्रणामसहितं प्रावर्तयध्वं मुहुः ॥१६॥	श्लोक १६	५६
मन्दहासमुदिताननाम्बुजम्।	श्लोक ७	३५
मशेषसौख्यं लभते न कः स्वित्।	श्लोक ५३	१४६
मस्माकं सरसीरुहाक्ष सततं सम्पद्यतां जीवितम् ॥१८॥	श्लोक १८	६२
माता मित्रं बलरिपुसुतस्तत्त्वदन्यं न जाने ॥४५॥	श्लोक ४५	१२७
मा द्राक्षं क्षीणपुण्यान् क्षणमपि भवतो भक्तिहीनान् पदाब्जे	श्लोक २४	७६

माधवाय मधुविद्विषे नमः ॥५०॥ ..... श्लोक ५० १४०
माभीर्मन्दमनो विचिन्त्य बहुधा यामीश्चिरं यातना ..... श्लोक १० ४२
मा भूवं त्वत्सपर्याव्यतिकररहितो जन्मजन्मान्तरेऽपि ॥२४॥ ..... श्लोक २४ ७६
मा श्रौषं श्राव्यबन्धं तव चरितमपास्यान्यदाख्यानजातम्। ..... श्लोक २४ ७६
मा स्मार्षं माधव त्वामपि भुवनपते चेतसापह्नुवानान् ..... श्लोक २४ ७६
मित्रौ द्विजन्मवरपद्मशरावभूताम्। ..... श्लोक ५२ १४४
मुकुन्दमालां पठतां नराणां ..... श्लोक ५३ १४६
मुकुन्द मूर्ध्ना प्रणिपत्य याचे ..... श्लोक ३ १९
मुक्तिर्माया जगदविकलं तावकी देवकी ते ..... श्लोक ४५ १२७
मुह्यर्तुमर्हसि हरे पुरुषोत्तमोऽसि ॥४९॥ ..... श्लोक ४९ १३७
मुरभिदि मा विरमस्व चित्त रन्तुम्। ..... श्लोक ९ ३९
मेदश्छेदफलानि पूर्तविधयः सर्वं हुतं भस्मनि। ..... श्लोक २१ ७०
मोहान्धकूपकुहरे विनिपातितस्य ..... श्लोक ३६ १०५
यं कञ्चित् पुरुषाधमं कतिपयग्रामेशमल्पार्थदं ..... श्लोक १७ ५८
यः कान्तामणिरुक्मिणीधनकुचद्वन्द्वैकभूषामणिः ..... श्लोक ३० ८९
यत्कृष्णप्रणिपातधूलिधवलं तद्वर्ष्म तद्वै शिरस् ..... श्लोक १९ ६५
यदि भवति मुकुन्दे भक्तिरानन्दसान्द्रा ..... श्लोक ५१ १४२
यद्भाव्यं तद्भवतु भगवन्पूर्वकर्मानुरूपम्। ..... श्लोक ५ ३०
यस्य प्रियौ श्रुतिधरौ कविलोकवीरौ ..... श्लोक ५२ १४४
योगज्ञाः समुदाहरन्ति मुनयो यां याज्ञवल्क्यादयः। ..... श्लोक १५ ५३
यो यो मुकुन्द नरसिंह जनार्दनेति। ..... श्लोक ४० ११५
रम्यारामामृदुतनुलता नन्दने नापि रन्तुं ..... श्लोक ४ २४
राज्ञा कृता कृतिरियं कुलशेखरेण ॥५२॥ ..... श्लोक ५२ १४४
र्गोपीलोचनचातकाम्बुदमणिः सौन्दर्यमुद्रामणिः। ..... श्लोक ३० ८९
र्यो यो मुकुन्द नरसिंह जनार्दनेति। ..... श्लोक ४० ११५
लीलाशेषजगत्प्रपञ्चजठरे विश्वेश्वरे श्रीधरे ..... श्लोक २३ ७४
लोकस्य व्यसनापनोदनकरो दासस्य किं न क्षमः ॥१०॥ ..... श्लोक १० ४२
वक्तुं समर्थोऽपि न वक्ति कश्चिद् ..... श्लोक २९ ८६
वचःफलं तद्गुणकीर्तनं बुधाः ॥४६॥ ..... श्लोक ४६ १२९
वदामि नारायणनाम निर्मलं ..... श्लोक २७ ८३
विषमविषयतोये मज्जतामप्लवानां ..... श्लोक ११ ४४
विष्णो कृपां परमकारुणिकः खलु त्वम्। ..... श्लोक ४९ १३७
व्यामोहप्रशमौषधं मुनिमनोवृत्तिप्रवृत्त्यौषधं ..... श्लोक ३२ ९४
शत्रुच्छेदैकमन्त्रं सकलमुपनिषद्वाक्यसम्पूज्यमन्त्रं ..... श्लोक ३१ ९१
शृण्वञ्जनार्दनकथागुणकीर्तनानि ..... श्लोक ३५ १०२
शृण्वन्तु भव्यमतयो यतयोऽनुरागाद् ..... श्लोक ४१ ११७
श्रममुषि भुजवीचिव्याकुलेऽगाधमार्गे। ..... श्लोक ८ ३७
श्रीकृष्ण भक्तप्रिय चक्रपाणे। ..... श्लोक २८ ८६
श्रीपद्मनाभाच्युत कैटभारे ..... श्लोक २८ ८६
श्रीमन्नाम प्रोच्य नारायणाख्यं ..... श्लोक ४७ १३२
श्रीराम पद्माक्ष हरे मुरारे ॥२८॥ ..... श्लोक २८ ८६
श्रीवल्लभेति वरदेति दयापरेति ..... श्लोक १ १

श्रीनाथ नारायण वासुदेव ..... श्लोक २८ ८६
श्रेयःप्राप्तिकरौषधं पिब मनः श्रीकृष्णदिव्यौषधम् ॥३२॥ ..... श्लोक ३२ ९४
श्रेयो देवशिखामणिर्दिशतु नो गोपालचूडामणिः ॥३०॥ ..... श्लोक ३० ८९
संसारघोरविषनिर्हरणाय नित्यम् । ..... श्लोक ४१ ११७
संसारसागरनिमग्नमनन्त दीनम् ..... श्लोक ४९ १३७
संसाराख्ये महति जलधौ मज्जतां नस्त्रिधामन् ..... श्लोक १३ ४८
संसारार्णवमापदूर्मिबहुलं सम्यक् प्रविश्य स्थिताः । ..... श्लोक १६ ५५
संसारोच्छेदमन्त्रं समुचिततमसः सङ्गनिर्याणमन्त्रम् । ..... श्लोक ३१ ९१
सत्यं ब्रवीमि मनुजाः स्वयमूर्ध्वबाहुर्- ..... श्लोक ४० ११५
समस्तपापक्षयमेत्य देही ..... श्लोक ५३ १४६
समाहितानां सततामयप्रदं ..... श्लोक ४८ १३५
सरसिजदृशि देवे तारकी भक्तिरेका ..... श्लोक १२ ४६
सरसिजनयने सशङ्खचक्रे ..... श्लोक ९ ३९
सर्वैश्वर्यैकमन्त्रं व्यसनभुजगसन्दष्टसन्त्राणमन्त्रं ..... श्लोक ३१ ९१
सा जिह्वामृतवर्षिणी प्रतिपदं या स्तौति नारायणम् ॥१९॥ ..... श्लोक १९ ६५
सा बुद्धिर्विमलेन्दुशङ्खधवला या माधवध्यायिनी ..... श्लोक १९ ६५
सारतारकितचारुमूर्तये । ..... श्लोक ५० १४०
सुखतरमपरं न जातु जाने ..... श्लोक ९ ३९
सुतदुहितृकलत्रत्राणभारार्दितानाम् । ..... श्लोक ११ ४४
सुधां परित्यज्य विषं पिबन्ति । ..... श्लोक ३८ ११०
सेवायै मृगयामहे नरमहो मूढा वराका वयम् ॥१७॥ ..... श्लोक १७ ५८
सेव्ये स्वस्य पदस्य दातरि परे नारायणे तिष्ठति । ..... श्लोक १७ ५८
स्तदर्चनं प्राणफलं दिवौकसः । ..... श्लोक ४६ १२९
स्तेजो निःश्वसनं मरुत्तनुतरं रन्ध्रं सुसूक्ष्मं नभः । ..... श्लोक १४ ५१
स्तेन प्राप्तं गर्भवासादिदुःखम् ॥४७॥ ..... श्लोक ४७ १३२
स्ते नेत्रे तमसोज्झिते सुरुचिरे याभ्यां हरिर्दृश्यते । ..... श्लोक १९ ६५
स्तोता वेदस्तव सुरगणा भृत्यवर्गः प्रसादः । ..... श्लोक ४५ १२७
स्मरसि न चक्रपराक्रमं मुरारेः ॥२२॥ ..... श्लोक २२ ७२
स्मरामि नारायणतत्त्वमव्ययम् ॥२७॥ ..... श्लोक २७ ८३
हरनयनकृशानुना कृशोऽसि ..... श्लोक २२ ७२
हरिचरणस्मरणामृतेन तुल्यम् ॥९॥ ..... श्लोक ९ ३९
हरिसरसि विगाह्यापीय तेजोजलौघं ..... श्लोक ८ ३७
हस्तावञ्जलिसम्पुटं रचयतं वन्दस्व दीर्घं वपुः । ..... श्लोक ३४ ९९
हा नः पूर्वं वाक् प्रवृत्ता न तस्मिंस् ..... श्लोक ४७ १३२
हृत्पद्ममध्ये सततं व्यवस्थितम् । ..... श्लोक ४८ १३५
हे कंसान्तक हे गजेन्द्रकरुणापारीण हे माधव । ..... श्लोक ४४ १२४
हे गोपालक हे कृपाजलनिधे हे सिन्धुकन्यापते ..... श्लोक ४४ १२४
हे गोपीजननाथ पालय परं जानामि न त्वां विना ॥४४॥ ..... श्लोक ४४ १२४
हे मर्त्याः परमं हितं शृणुत वो वक्ष्यामि सङ्क्षेपतः ..... श्लोक १६ ५५
हे रामानुज हे जगत्त्रयगुरो हे पुण्डरीकाक्ष मां ..... श्लोक ४४ १२४
हे लोकाः शृणुत प्रसूतिमरणव्याधेश्चिकित्सामिमां ..... श्लोक १५ ५३

उद्धृत श्लोकों की अनुक्रमणिका

निम्नलिखित सूची में इस ग्रंथ के तात्पर्य में उद्धृत श्लोकों की प्रत्येक पंक्ति या उद्धृत किया गया पंक्ति-खण्ड संस्कृत वर्णमाला के क्रमानुसार छाँटकर दिये गये हैं। प्रथम स्तम्भ में श्लोकों की पंक्तियाँ दी गई हैं। दूसरे स्तम्भ में श्लोक क्रमांक तथा तीसरे स्तम्भ में पृष्ठ क्रमांक दिये गये हैं। श्लोकों को संस्कृत वर्णमाला के अनुसार इस क्रम से क्रमबद्ध किया गया है :

ॐ अँ अं अ: अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ए ऐ अॅ ओ औ आॅ
क् ख् ग् घ् ङ् च् छ् ज् झ् ञ् ट् ठ् ड् ढ् ण्
त् थ् द् ध् न् प् फ् ब् भ् म् य् र् ल् व्
श् ष् स् ह् ळ् ।(विराम) ऽ(अवग्रह)

सूचना :

क = क्अ का = क्आ कि = क्इ कृ = क्ऋ
क्ष = क्ष ज्ञ = ज्ञ श्र = श्र शृ = शृ = श्ऋ
श्व = श्व श्च = श्च

अंह: संहरदखिलं सकृदुदयादेव सकललोकस्य।	श्लोक ५१	१४३
अकाम: सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधी:।	श्लोक १७	५९
अजनि च यन्मयं तदविमुच्य नियन्तृ भवेत्	श्लोक ३४	१०१
अजित निखिलरक्षाहेतुमुद्धारदक्षां	श्लोक ३६	१०७
अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।	श्लोक २	१५
अथ विश्वेश विश्वात्मन् विश्वमूर्ते स्वकेषु मे।	श्लोक ४९	१३९
अद्यैव मे विशतु मानसराजहंस:।	श्लोक ५३	१४८
अध्यासितां पूर्वतमैर्महर्षिभि:।	श्लोक १२	४८
अन्तर्बहिर्यदि हरिस्तपसा तत: किम्	श्लोक २१	७१
अपरिमिता ध्रुवास्तनुभृतो यदि सर्वगता-	श्लोक ३४	१०१
अयि मुक्तकुलैरुपास्यमानं	श्लोक ३१	९३

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥	श्लोक ३६	१०६
असच्चेष्टाकष्टप्रदविकटपाशालिभिरिह	श्लोक ३६	१०७
अहं तरिष्यामि दुरन्तपारं	श्लोक १२	४८
अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम्।	श्लोक ३८	१११
आनन्दाम्बुधिवर्धनम्	श्लोक ७	३६
आपन्नः संसृतिं घोरां यन्नाम विवशो गृणन्।	श्लोक ३१	९२
आराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम्	श्लोक २१	७१
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः	श्लोक ९	४१
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः	श्लोक ४०	११६
इति षोडशकं नाम्नां कलिकल्मषनाशनम्।	श्लोक ३१	९२
इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे॥	श्लोक ४४	१२५
इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।	श्लोक २०	६८
उन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः॥	श्लोक १७	६१
उन्मादवन् नृत्यति लोकबाह्यः॥	श्लोक ४२	१२२
उपनय मम हस्ते भक्तिरज्जुं नमस्ते॥	श्लोक ३६	१०७
एको बहूनां यो विदधाति कामान्	श्लोक १४	५२
एतां स आस्थाय परात्मनिष्ठा-	श्लोक १२	४८
एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।	श्लोक ४४	१२५
एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या	श्लोक १७	६१
एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या	श्लोक ४२	१२२
कण्ठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते॥	श्लोक ५३	१४८
कथमपि सकृदात्तं मुक्तिदं प्राणिनां यत्	श्लोक २६	८३
कदाहमैकान्तिकनित्यकिङ्करः	श्लोक १७	६१
कीर्तनीयः सदा हरिः	श्लोक ७	३६
कुरु त्वं फुत्कारानवति स यथा त्वं मन इतः॥	श्लोक ३६	१०७
कृष्ण त्वदीयपदपङ्कजपञ्जरान्तम्	श्लोक ५३	१४८
कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्।	श्लोक ४१	११९
गले बद्ध्वा हन्येऽहमिति बकभिद्वर्त्मपगणे	श्लोक ३६	१०७
जन्माद्यस्य यतः	श्लोक ४५	१२८
जयति जयति नामानन्दरूपं मुरारेः-	श्लोक २६	८३
जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।	श्लोक १७	६१
जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।	श्लोक ४२	१२२
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप॥	श्लोक २४	७८
ततः सद्यो विमुच्येत यद्बिभेति स्वयं भयम्॥	श्लोक ३१	९२
तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः	श्लोक २९	८७
तत्साधु मन्येऽसुरवर्य देहिनां	श्लोक १३	५०
तदवधि बत नारीसङ्गमे स्मर्यमाने	श्लोक २२	७४
तदश्मसारं हृदयं बतेदं	श्लोक ३५	१०४
तमो मुकुन्दाङ्घ्रिनिषेवयैव॥	श्लोक १२	४८
तरणिरिव तिमिरजलधिं जयति जगन्मङ्गलं हरेर्नाम॥	श्लोक ५१	१४३
तर्हि न शास्यतेति नियमो ध्रुव नेतरथा।	श्लोक ३४	१०१
तिमिरगहनरूपे हन्त संसारकूपे।	श्लोक ३६	१०७

तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्॥	श्लोक १७	५९
त्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः॥	श्लोक १७	६१
त्युन्मादवन् नृत्यति लोकबाह्यः॥	श्लोक ४२	१२२
त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः।	श्लोक ९	४१
त्वय्यस्त भावादविशुद्धबुद्धयः।	श्लोक ४०	११६
दैवेन नः फलति दिव्यकिशोरमूर्तिः।	श्लोक ५१	१४४
द्युतिनीराजितपादपङ्कजान्त।	श्लोक ३१	९३
धर्मार्थकामगतयः समयप्रतीक्षाः॥	श्लोक ५१	१४४
न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।	श्लोक २९	८८
नवनवरसधामन्युद्यतं रन्तुमासीत्।	श्लोक २२	७४
न विक्रियेताथ यदा विकारो	श्लोक ३५	१०४
नातः परतरोपायः सर्ववेदेषु दृश्यते॥	श्लोक ३१	९२
नान्तर्बहिर्यदि हरिस्तपसा ततः किम्॥	श्लोक २१	७१
नामगाने सदा रुचिः	श्लोक १६	५७
नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-	श्लोक २९	८७
नाराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम्।	श्लोक २१	७१
नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः	श्लोक १२	४७
निखिलश्रुतिमौलिरत्नमाला-	श्लोक ३१	९३
नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः॥	श्लोक ३५	१०४
पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः॥	श्लोक ९	४१
पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः॥	श्लोक ४०	११६
परममृतमेकं जीवनं भूषणं मे॥	श्लोक २६	८३
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते।	श्लोक २	१८
परितस्त्वां हरिनाम संश्रयामि॥	श्लोक ३१	९३
पापक्षयश्च भवति स्मरतां तमहर्निशम्	श्लोक १६	५७
प्रकामं कामादिप्रकटपथपातिव्यतिकरैः।	श्लोक ३६	१०७
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥	श्लोक २	१५
प्रशान्त-निःशेषमनोरथान्तरः।	श्लोक १७	६१
प्रहर्षयिष्यामि सनाथजीवितम्॥	श्लोक १७	६१
प्राणप्रयाणसमये कफवातपित्तैः	श्लोक ५३	१४८
भक्तिस्त्वयि स्थिरतरा भगवन् यदि स्याद्	श्लोक ५१	१४४
भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।	श्लोक २४	७८
भवति मुखविकारः सुष्ठु निष्ठीवनं च॥	श्लोक २२	७४
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥	श्लोक ११	४६
भवन्तमेवानुचरन्निरन्तरः	श्लोक १७	६१
भवमहादावाग्निनिर्वापणम्	श्लोक ३१	९३
मद्भक्तानां च ये भक्तास्ते मे भक्ततमाः मताः॥	श्लोक २५	८०
मधुगन्धि मृदुस्मितमेतदहो	श्लोक ५२	१४६
मधुरं मधुरं मधुरं मधुरम्॥	श्लोक ५२	१४६
मधुरं मधुरं वदनं मधुरम्।	श्लोक ५२	१४६
मधुरं मधुरं वपुरस्य विभोः	श्लोक ५२	१४६
मध्यासितां पूर्वतमैर्महर्षिभिः।	श्लोक १२	४८

मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥	श्लोक २०	६८
मनसिजफणिजुष्टे लब्धपातोऽस्मि दुष्टे	श्लोक ३६	१०७
मन्मना भव मद्भक्तः	श्लोक २०	७०
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥	श्लोक २९	८८
मुक्तिः स्वयं मुकुलिताञ्जलि सेवतेऽस्मान्	श्लोक ५१	१४४
यज्ञैः सङ्कीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ॥	श्लोक ४१	११९
यदवधि मम चेतः कृष्णपादारविन्दे	श्लोक २२	७४
यद् गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः ।	श्लोक ३५	१०४
यारे देख तारे कह 'कृष्ण' उपदेश	श्लोक २७	८४
येनात्मा सुप्रसीदति	श्लोक ४२	१२१
ये मे भक्तजनाः पार्थ न मे भक्ताश्च ते जनाः ।	श्लोक २५	८०
येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिन-	श्लोक ९	४१
येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिन-	श्लोक ४०	११६
विरमितनिजधर्मध्यानपूजादियत्नम् ।	श्लोक २६	८३
वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत ॥	श्लोक १३	५०
विद्यां चाविद्यां च यस्तद् वेदोभयं सह ।	श्लोक ३६	१०६
विद्यावधूजीवनम्	श्लोक ३१	९३
विपदः सन्तु ताः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो ।	श्लोक ११	४६
विरमितनिजधर्मध्यानपूजादियत्नम् ।	श्लोक २६	८३
शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम् ॥	श्लोक ३८	१११
श्री-चैतन्य-पदारविन्द-मधुप-श्री-रूप-सेवा-फले	श्लोक ५२	१४६
सततं कीर्तयन्तो माम्	श्लोक ३८	११२
सदा समुद्विग्नधियामसद्ग्रहात् ।	श्लोक १३	५०
सममनुजानतां यदमतं मतदुष्टतया ।	श्लोक ३४	१०१
सर्वलोकमहेश्वरम्	श्लोक १७	५९
सर्वलोकमहेश्वरम्	श्लोक ४५	१२९
सुहृदं सर्वभूतानाम्	श्लोक ३९	११४
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः	श्लोक २९	८७
स्तर्हि न शास्यतेति नियमो ध्रुव नेतरथा ।	श्लोक ३४	१०१
स्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः ।	श्लोक ९	४१
स्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः ।	श्लोक ४०	११६
स्नेहपाशमिमं छिन्धि दृढं पाण्डुषु वृष्णिषु ॥	श्लोक ४९	१३९
स्वामिन् कृतार्थोऽस्मि वरं न याचे	श्लोक ४०	११७
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।	श्लोक ३१	९२
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥	श्लोक ३१	९२
हसत्यथो रोदिति रौति गाय-	श्लोक १७	६१
हसत्यथो रोदिति रौति गाय-	श्लोक ४२	१२२
हित्वात्मपातं गृहमन्धकूपं	श्लोक १३	५०

शब्द-सूची

निम्नलिखित सूची में इस ग्रन्थ के महत्त्वपूर्ण विषयों की शब्द-सूची वर्णमाला के अनुसार छाँटकर दी गई है। प्रत्येक पद के सामने पृष्ठ क्रमांक दिये गये हैं, जिसमें **मोटे टाइप** वाले पृष्ठ क्रमांक 'अनुवाद' में आये हुए सन्दर्भ का निर्देश करते हैं।

अचिन्त्य शक्ति का तात्पर्य, ९५
अजामिल, ९२
  की मुक्ति, पवित्र नाम के जप द्वारा, १३३, १४३
अद्वन्द्व
  का तात्पर्य, २७
  की तुलना नरक से, भक्तों के लिए, २७
अनन्त-भगवान् की शैया के रूप में, **१४०**
अनन्त-शयन का तात्पर्य, १०
अनन्त शेष, **१००**
अप्सराएँ, २९
अभक्त
  की तुलना आत्महत्या करने वाले पुत्रों के साथ, २६-२७
अभिधेय, १०३
अम्बरीश महाराज
  द्वारा की गयी भक्तिमय सेवा, १०६
  की रक्षा स्वयं भगवान् द्वारा की गयी, ५
अर्चाविग्रह पूजा
  द्वारा कृष्णभावनामृत में लगे रहना, ६४
  गृहस्थों के लिए आदर्श सेवा, ६४
  में भक्तों की तुलना मायावादियों के साथ, ६४
अविद्या का तात्पर्य, १०६
अव्ययात्मा का तात्पर्य १६, १७
आत्मा; *देखें :* जीवात्मा
आत्मा का देहान्तरण, ४५, ५७-५८
आदि पुराण में बताया गया है, भक्तों की सेवा के बारे में, ८०
आधुनिक सभ्यता
  में आध्यात्मिक जीवन उपेक्षा, ६३, ८८
  की भर्त्सना, २२
आध्यात्मिक गुरु
  भगवान् कृष्ण ही आदि गुरु, १२४
  भगवान् के प्रामाणिक प्रतिनिधि के रूप में, ४
आध्यात्मिक जगत में लौटना, कृष्णभावनामृत द्वारा, ८६
'आश्चर्यम्' शब्द का तात्पर्य, १११
इन्द्रियतृप्ति
  द्वारा जन्म-मृत्यु का चक्र, १०८
  द्वारा प्राप्त विपत्तियाँ, १०९
इन्द्रियाँ
  अनियंत्रित
    का खतरा, १०५, १०९
    की तुलना बिना लगाम के घोड़े से, १०७
    द्वारा प्राप्त विपत्तियाँ, १०७, १०९
  की तुलना चोरों के साथ, १०५
  का नियंत्रण, ६८, १०६-०७
  का शुद्धीकरण, कृष्णभावनामृत द्वारा, **६७**
ईशोपनिषद में बताया गया है
  भगवान् द्वारा भक्तों के मूल्यांकन के बारे में, ९९
  विद्या और अविद्या के बारे में, १०६
"ईश्वरपूरी" श्री चैतन्य महाप्रभु के आध्यात्मिक गुरु के रूप में, १२३
ईसा मसीह, ५
उपदेशामृत उद्धृत
  भक्तों के प्रति समदृष्टि होने के बारे में, ६५
  भगवन्नाम की मधुरता के बारे में, ८२
उपनिषद् द्वारा पवित्र नाम का गुणगान, ९२
कपिल भगवान् बताते हैं
  गर्भ में असहनीय पीड़ा के बारे में, १३४
  पुरुषों पर स्त्रियों के प्रभुत्व के बारे में, ७३
कलियुग
  के दुष्प्रभावों को दूर करने के लिए हरे कृष्ण महामंत्र, ९२
  में पवित्र नाम का जप ही धर्म, ११२, ११९
कलिसन्तरण उपनिषद्, हरे कृष्ण महामंत्र के कीर्तन के विषय में, ५५, ९२

कष्ट (विपत्तियाँ)
का अन्त, भगवन्नाम के जप द्वारा, ९३
गर्भ में, १३४
की तुलना सर्प-दंश से, ९३
से निवृत्ति, भक्तिमय सेवा द्वारा, २, ३८, ९३
भक्तिमय सेवा के लिए प्रेरक-बल के रूप में, ४५-४६
भौतिक जगत में, ४५, ५४
करभाजन मुनि बताते हैं, वर्तमान युग में पवित्र नाम का जप ही प्रमुख धर्म है, ११८
कर्म, २३
काम
का अन्त कृष्णभावनामृत द्वारा, ७३
की तुलना लुटेरों के साथ, १०७
त्यागीयों के लिए अवरोध रूप, ७४
कामदेव
को भक्तों द्वारा चुनौति, ७३
शिवजी द्वारा भस्म किया गया, ७३
कार्ल मार्क्स, १३०
कुन्ती महारानी
की प्रार्थनाएँ, १३९
द्वारा भगवान् के स्मरण के लिए बार बार विपत्तियों को आमंत्रित करना, ४६
कुम्भीपाक नरक, २४
की तुलना फैक्टरियों के साथ, २८
कुलशेखर, राजा
की प्रसन्नता, कृष्णभावनामृत द्वारा, ४०
शुद्ध भक्त के रूप में, ३, १४, २०, २६, २९, ३४, ५४, ८४
कुरुक्षेत्र, ७५
कृष्ण-कथा
की तुलना अमृत से, ६५-६७
की तुलना औषधि से, ५५
कृष्णकर्णामृत में बताया गया है भगवान् की मधुरता के बारे में, १४४
कृष्ण का कीर्तन एवं श्रवण द्वारा समस्त कष्टों से छुटकारा, २
"कृष्ण" पुस्तक में वसुदेव व देवकी द्वारा की गयी तपस्याओं के बारे में बताया गया है, १२८-१२९
कृष्ण भगवान्
द्वारा आदान-प्रदान, भक्तों के प्रेम का, १२८
आदि गुरु के रूप में, १२४
आदि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, १२५
के द्वारा कुब्जा को सीधा (सुन्दर) बनाना, ६६
कुरुक्षेत्र में, ७५
के गुणगान की तुलना औषधि से, ९५
के चरण की तुलना नाव के साथ, ५१
कृष्ण भगवान् (चालू)
के जन्म की तुलना जीवात्मा के जन्म के साथ, १५, २२-२३
की तुलना
अमृत के साथ, १०९
झील के साथ, ३८
मणि के साथ, ८९-९०
वर्षा से भरे बादलों के साथ, ९०
की प्राप्ति, भक्तों की सेवा द्वारा, ७०
भक्तों के भक्त के रूप में, ८०
के विचारों में तल्लीनता, का महत्त्व, ७६
समस्त शक्तियों के स्रोत के रूप में, ९५
के सौन्दर्य द्वारा कामवासना का अन्त, ७४
का स्मरण, मृत्यु के समय, ९९
कृष्णभावनामृत
अचिन्त्य, ९६
द्वारा पाप का क्षय, ९६
का प्रचार, सभी को, ८४
के बारे में संशय, ४३
के माध्यम द्वारा ही तपस्या का मूल्य, ७१
में लगे रहना, अर्चाविग्रह की पूजा के द्वारा, ६४
समस्त दुखों की औषधि के रूप में, ११०
की सरलता, ७६
सर्वोच्च ज्ञान के रूप में, ११३
का सार, आजीवन अभ्यास के रूप में, ९९
कृष्णभावनामृत आन्दोलन
प्रभुपाद का उद्देश्य, ९६
भक्तों के लिए मुक्ति तुच्छ, १४४
का मूल्य, ४०
कृष्णभावनामृत द्वारा भयरहित होना, **४३, १३५**
कृष्णभावनामृत सम्बन्धित संशय, ३८
कृष्ण शक्ति, के प्रभाव, ९६
उद्धृत, १४८
प्रभुपाद द्वारा इच्छित, ९६, १४८
की व्याख्या, ९८
कृष्ण का श्रवण एवं कीर्तन
के लाभ, १००
वास्तविक धर्म का उद्देश्य, ३२
कृष्ण-स्मरण
द्वारा आनन्द, ३८
द्वारा दिव्य सुख का सागर, ३७
की प्रशंसा, **७६**
भक्तिमय सेवा का आधार, ७०
भक्तिमय सेवा का प्रमुख उद्देश्य, ७१
का महत्त्व, ७५
मृत्यु के समय अत्यन्त कठिन, ९८
वैदिक साहित्य के माध्यम से, ४०
के सन्दर्भ में ही पुण्यकर्मों की महत्ता, **७१**

क्षीरोदकशायी विष्णु, १४०, १४१-४२
गजेन्द्र
द्वारा प्रार्थनाएँ, १३८
की शरणागति, भगवान् के चरणों में, ४६
गर्भ में जीवन का वर्णन, १३४
गरुड, ८९
गुरुत्वाकर्षण का नियम भगवान् की शक्ति के रूप में, १०
गुरु, साधु और शास्त्र का तात्पर्य भगवद् विज्ञान को जानने के साधन के रूप में, ८५
गुरु-शिष्य परम्परा, १२४
गृहस्थ जीवन, २१
गोपी पराणधन दास बताते हैं
अचिन्त्य शक्ति के बारे में, ९५
संस्कृत व्याकरण के बारे में, १२३
गोपियों
की आँखों की तुलना चातक पक्षी से, ९०
सहनशीलता, दोषदर्शन की समालोचना के प्रति, १२१
गोविन्द दास कृष्ण की पूजा की आवश्यकता के विषय में, ३५
की आवश्यकता के बारे में बताते हैं, ३५
गोविन्द लीलामृत में आध्यात्मिक काव्य की मधुरता के बारे में बताया गया है, १४६
चैतन्य चरितामृत में उद्धृत
गोपियों की सहनशीलता के बारे में, १२१
चैतन्य महाप्रभु की उदारता के बारे में, ११९
भगवान् के नामों की एकता के बारे में, १४१
भगवान् नित्यानन्द और श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा के बारे में, ९३
सभी को कृष्णभावनामृत का प्रचार करने के बारे में, ८४
चैतन्य चरितामृत में बताया गया है, श्रद्धा के बारे में, १३६
चैतन्य महाप्रभु
की उदारता, ११९-२०, १३०
द्वारा संकीर्तन रूपी महान् वरदान, १३०
ने संस्कृत व्याकरण द्वारा कृष्णभावनामृत सिखाया, १२३
चैतन्य महाप्रभु बतलाते हैं,
भक्तिमय सेवा में नम्रता के बारे में, १३६-३७
भारतवर्ष कृष्णभावनामृत के लिए सर्वोत्तम स्थान, १३१
श्रद्धा के बारे में, १३६
चैतन्य महाप्रभु, उद्धृत
कृष्ण से विरह के बारे में, ९०
चैतन्य महाप्रभु, उद्धृत (चालू)
भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन के बारे में, ३६, ८५, ९३
विनम्रता के बारे में, ८१
सभी को कृष्णभावनामृत के प्रचार के बारे में, ८४
जन्म-मृत्यु के चक्र
का अन्त
कृष्णभावनामृत द्वारा, ३८
पवित्र नाम के जप द्वारा, ९३
में इन्द्रियतृप्ति के कारण फँसे रहना, १०८
की तुलना अग्नि से, ९३
जीवात्मा
के जन्म की तुलना कृष्ण जन्म के साथ, १५, १६, २२-२३
का धर्म, ३२
की प्रकृति सदैव आनन्दमग्न रहना, ३६
भगवान् की तटस्था शक्ति के रूप में, १३
का शरीर (भौतिक) की तुलना भगवान् के शरीर के साथ, १६-१९
की संतुष्टि, कृष्णभावनामृत द्वारा, ७६
की स्वभाविक स्थिति भगवान् की सेवा, ९
ज्ञान
द्वारा अमरता, १०६, १०७
आध्यात्मिक, की प्राप्ति, पवित्र नाम के कीर्तन द्वारा, ९३
की परिभाषा, १९-२०
भौतिक, की तुलना आध्यात्मिक ज्ञान से, १०५
ज्ञानी, २५
ज्ञानी की तुलना कर्मी तथा भक्त से, १९-२०
डार्विन, १३०
'दयापर' नाम का तात्पर्य, ४
'दीन-बन्धु' का अर्थ, ४
देवकी, १४
द्वारा की गयी तपस्याएँ, १२८-२९
द्वारा भगवान् कृष्ण का जन्म, की तुलना पूर्वी क्षितिज में सूर्य उदय होने से, १२
देवता
निर्विशेषवादियों के विषय में उद्धृत, ११६
भगवान् के भक्तों के रूप में, १३०
धर्म
दिव्य सेवा ही जीवात्मा का सनातन धर्म, ३२, ५९
नामजप ही वर्तमान युग में धर्म, ११२, ११९
पथभ्रष्ट धर्म, ३२
की परिभाषा, ३२
धार्मिकता, ३१

ध्यान
भक्तिमय सेवा में, १३६
भगवान् के चरणकमलों में, ४०
ध्रुव महाराज की विरक्ति, कृष्णभावनामृत द्वारा, ११७
नन्द महाराज, १४, ३६
नन्दनकानन उद्यान, २९
नरक
की तुलना फैक्टरियों से, २८
पूंजीपति के गन्तव्य के रूप में, २८
नाग-शयन का तात्पर्य, १०
'नाथ' का तात्पर्य, ९
'नामापराध' का तात्पर्य, १४३
नामाभास का तात्पर्य, १४३
नारद दक्ष द्वारा शापित, ११४
नारद पञ्चरात्र
में पवित्र नाम के जप के बारे में बताया गया है, ११२
में वास्तविक प्रायश्चित्त सिर्फ कृष्णभावनामृत द्वारा—के बारे में बताया गया है, ७१
नारद मुनि
दक्ष द्वारा शापित, ११४
का द्वारका में आश्चर्यचकित होना, ३७
भौतिक जीवन के भ्रम के बारे में बताते हैं, ४५-४६
नारायण भगवान्
के नाम के जप की शक्ति, १३३
श्री नित्यानन्द प्रभु को प्रार्थना करते हुए नरोत्तम दास ठाकुर के विषय में उद्धरण, ३५-३६
पूर्ण स्वामी के रूप में, ५९
नास्तिकवाद को बढ़ावा देने वाले (भौतिक) वैज्ञानिक, ८८
निर्वाण शब्द की व्याख्या, ५४
निर्विशेषवाद, १२
का कारण अज्ञान, ६०
को राजा कुलशेखर द्वारा चुनौति, १०१-१०२
निर्विशेषवादी
अशुद्ध व्यक्तित्व के रूप में, ११६
की असफलता, ११६
का गन्तव्य, ४०
नृसिंह देव, भगवान्, १४७
नैतिकता, ईशभावनामृत की प्रथम सीढ़ी, २९
परम सत्य
के चरणों का वर्णन, ३२
परम पुरुष के रूप में, १२-१३
परमात्मा की तुलना भगवान् तथा ब्रह्म के साथ, १२-१३
परमानन्द
कृष्ण प्रेम द्वारा प्राप्ति, २
भक्तिमय सेवा द्वारा प्राप्ति, ३
भगवन्नाम के कीर्तन द्वारा प्राप्ति, ३६
प्राप्त करने में असफल होने की भर्त्सना, १०
पवित्र नाम
की तुलना,
अमृत पान के साथ, १११
औषधि से, ५४-५५, ९४
मधु से, ८२
उपनिषदों द्वारा गुणगान, ९२
के लाभ, ९१-९२
की शक्ति, १०, १४३
के साथ भगवान् अभिन्न, २
के प्रति अपराध, १०४
की निवृत्ति जप द्वारा, ५७
पवित्र नाम का कीर्तन
द्वारा अपराध-निवृत्ति, ५७
द्वारा आत्म-साक्षात्कार, २
का आस्वादन, ५७, ८१-८२
द्वारा ईश प्रेम की प्राप्ति, ९३, १४३
द्वारा कलि के दुष्प्रभाव का निवारण, ९२
कलियुग में विशेष आवश्यकता, १२०
द्वारा कृष्ण से सम्बन्ध (सम्पर्क), ११७
द्वारा जन्म-मृत्यु के चक्र का अन्त, ९३
द्वारा ज्ञान प्राप्ति, ९३
निरन्तर करना, भगवद्गीता में परामर्श, ११२
द्वारा परमानन्द की प्राप्ति, १२१
द्वारा पाप से निवृत्ति, ४४, १२०, १३३
द्वारा पूर्णता की सरलता से प्राप्ति, ११२
के लिए बुद्धि की आवश्यकता, ११८
द्वारा भौतिक इच्छाओं की समाप्ति, ११७
द्वारा मुक्ति, ४३, ५५, ५७-५८, १४३
मृत्यु के समय, ५७
द्वारा मृत्यु के समय भगवान् का स्मरण, ९८
युगधर्म के रूप में, ११२
के लाभ, ९१-९२
द्वारा वास्तविक आनन्द, ८१
और विनम्रता, ८५, १३६
द्वारा विरक्ति, ११७
की शक्ति, १४
द्वारा सहनशीलता, १२१
द्वारा सुख की प्राप्ति, ११७
पापकर्मों के फल
का क्षय कृष्णभावनामृत से, ४३, ९६, १३३
की तुलना

बुरे स्वप्न में दिखनेवाले शत्रु से, ४३
रस्सी से, १०७
पारिवारिक जीवन
द्वारा भ्रम, ४५
का मोह, ९
पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्
का आदान-प्रदान, भक्तों से साथ, ८, २५
की इन्द्रियाँ सर्वशक्तिमान, ३३-३४
की कृपा, ४, ६
के गुण (छब्बीस) की सूची, १८
का "जन्म," १२, १५, १६, १७
द्वारा 'जादू', १२९
की तुलना सामान्य जीव से, १२८
परम भोक्ता के रूप में, ३
का प्रेम, भक्तों के लिए, ५
माता द्वारा बच्चे के पालन से, २८
द्वारा भक्तों को विशेष प्रेम, ५
द्वारा भक्तों की सुरक्षा, १२७
को भूल जाना, सबसे बड़ी विपत्ति, १२६
के माता-पिता, १४
के रूप का दर्शन कीर्तन करने से प्राप्त होता है, ३९
के शरीर की तुलना भौतिक शरीर से, १७
की शुद्धीकरण शक्ति, १५
का स्मरण, के लिए प्रार्थना, १९-२०
के साकार रूप, की तुलना निराकार पहलू रूप से, १२-१३
द्वारा हृदय में मार्गदर्शन देना, ६, ७
पृथ्वी भक्तिमय सेवा के लिए सर्वोत्तम स्थान, १३१
प्रचारक भगवान् के प्रिय, ४-५
प्रतापरूद्र राजा ने भगवान् की सेवा की, ६९
प्रतिष्ठा का तात्पर्य, ११६
प्रबोधानन्द सरस्वती ने निर्विशेष मुक्ति को (शुद्ध भक्तों के लिए) नरक जाने के समान बताया है, १४४
प्रयाण-काले का तात्पर्य, ९७
प्रयोजन, १०३
प्रह्लाद महाराज
उद्धृत करते हैं
भक्तिमय सेवा की महत्ता के बारे में, ४८
भगवान् की शरणागति के बारे में, ५०
बताते हैं
भक्तों की सेवा के बारे में, ८०
भौतिक संसार के कष्टों के बारे में, ४५
भगवान् के प्रिय भक्त के रूप में, ५-६
प्राण का प्रयोग, कृष्णभावनामृत में, १३२
फ्रायड, १३०
बिल्वमंगल ठाकुर बताते हैं
भगवान् की मधुरता के बारे में, १४६
मुक्ति के प्रति भक्तों की उदासीनता, १४४
बुद्धि
प्रामाणिक स्रोत से श्रवण करने पर प्राप्त होती है, ११८
पर भक्तिमय सेवा निर्भर, ११८
की व्याख्या, ११८
बृहद् भागवतामृत में भगवान् के पवित्र नाम के बारे में उद्धरण, ८३
बैक टु गॉडहेड पत्रिका, १४८
बौद्ध धर्म का शून्यवाद, अस्वाभाविक, ५४-५५
ब्रह्म
की तुलना जलती हुई अग्नि से, १३
की तुलना परमात्मा और भगवान् से, १२
ब्रह्म-संहिता में वर्णन,
कृष्ण ही आध्यात्मिक जगत के सृष्टा, १२५
भगवान् की प्रत्येक इन्द्रिय सर्वशक्तिमान, ३४
भगवान् की सुन्दरता के बारे में, १८
ब्राह्मणों की तुलना कृपण से, ९
'भक्त प्रिय' सम्बोधन का तात्पर्य, ५
भक्तियोग
का अकल्पनीय होना, ९६
की सरलता के बारे में, ७६
भक्तिरसामृतसिंधु में भक्तों के स्तर के बारे में बताया गया है, १३५
भक्तिविनोद ठाकुर
उद्धृत करते हैं
उन्नत भक्तों की तुलना नवदीक्षित भक्त से, ८१
भोगवाद रूपी दारुण विष, १०९
हरे कृष्ण मंत्र एक औषधि के रूप में, ९४
द्वारा गोपीनाथ को प्रार्थना, १३९
बताते हैं
आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक आवश्यकताओं के बीच सन्तुलन के बारे में, ६३
पवित्र नाम के जप की अवस्थाओं के बारे में, १४३
भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर
यश और उसकी व्यर्थता के बारे में बताते हैं, ११६
भगवद्गीता में बताया गया है
कृष्ण की पूजा ही एक मात्र सही लक्ष्य है, १०१
परमात्मा के बारे में, २८
भगवान् के जन्म के बारे में, २२
भगवान् के द्वारा भक्तों से प्रेम के आदान-प्रदान के बारे में, ५

भगवद्गीता में बताया गया है (चालू)
भौतिकवादी के समक्ष भगवान् अदृश्य, ४७
भौतिक संसार के कष्टों के बारे में, ३४
भगवद्गीता से उद्धृत
अधम व्यक्तियों के बारे में, जो भगवान् की शरण नहीं ग्रहण करते, ८८
आत्मा का देहान्तरण, मृत्यु के समय की चेतना का निर्णायक होना, ९८
कृष्ण के स्मरण के बारे में, ७०
जन्म-मृत्यु के बारे में, ४९
त्याग के बारे में, ११८
भगवान् को अर्पित खाद्य सामग्री के बारे में, ४७
भगवान् के 'जन्म' के बारे में, १५
भगवान् के निरन्तर यशोगान के बारे में, ११२
भगवान् द्वारा भक्तों की सुरक्षा के बारे में, ४७
भगवान् की शक्तियों के बारे में, १२९
भक्तिमय सेवा कृष्ण को जानने का एकमात्र मार्ग, ७८
भक्तिमय सेवा द्वारा मुक्ति के बारे में, ५७
भक्तियोग की क्रमिक प्रगति के बारे में, ८४
भक्तों के अजेय होने के बारे में, ४२
भक्तों के साथ भगवान् के आदान-प्रदान के बारे में, १०१
मन, बुद्धि एवं इन्द्रियों की श्रेष्ठता के बारे में, ६८
मन, शत्रु एवं मित्र के रूप में, १०७
योग पद्धति की कठिनता के बारे में, ७६
सदैव कृष्ण के चिन्तन के बारे में, ४०
सभी वस्तुओं के आधार कृष्ण, ९०
सर्वशक्तिमान भगवान् के बारे में, ५२
भगवान् के चरणकमल
का ध्यान करके प्राप्त होने वाला आनन्द, ४०
की व्याख्या, ४०
भगवान् द्वारा 'जादू', १२९
भगवान् की तुलना ब्रह्म और परमात्मा से, १२
भगवान् के दासों की सूचि, ७९
भगवान् को प्रणाम
की आवश्यकता, १३०-३१
का तात्पर्य, ८४
करने से सुन्दरता बढ़ती है, ६७
भगवान् की पूजा की शुद्धीकरण शक्ति, १०१
भगवान् के भक्त
कवि के रूप में, १४५
का गन्तव्य, मृत्यु के समय, २३
की तुलना नास्तिकों के साथ, २५
की तुलना सकाम कर्मी एवं प्रयोगवादी दार्शनिकों के साथ, २०
भगवान् के भक्त (चालू)
की तृतीय श्रेणी वर्णित, १३५
की द्वितीय श्रेणी वर्णित, १३५
निन्दा के प्रति सहिष्णु, १२१
की परिभाषा, २
प्रथम श्रेणी के वर्णित, १३५
द्वारा प्रार्थनाएँ, १३९
की बुद्धि की तुलना चन्द्रमा के प्रकाश के साथ, ६५-६७
भक्त की मृत्यु के समय कृष्ण का स्मरण, ९९
के द्वारा भगवान् के दर्शन के समय उनका भाव, १०१-१०२
को भगवान् द्वारा स्वयं ज्ञान देना, ७
का भयरहित होना, ४७
के लिए मुक्ति महत्त्वहीन, १४४
लोगों की राय के प्रति उदासीन, ६४, ११४
की विनम्रता, ८०, १३६
में शुद्ध करने की शक्ति, १५
की सुरक्षा, यमराज के दण्ड से, ४४
की सेवा, कृष्ण की उत्तम सेवा, ८०
की सेवा द्वारा कृष्ण की प्राप्ति, ७०
भगवान् की भक्तिमय सेवा
अम्बरीश महाराज की, १०६
की अवस्थाएँ, तीन, १०३
में इन्द्रिय नियंत्रण, ६८
द्वारा ही कृष्ण को जाने जा सकते हैं, ७८
जीवात्मा के धर्म के रूप में, ३२
की तुलना रस्सी से, १०७
में दिव्य आनन्द, २
में प्रगति, विनिम्रता द्वारा, १३६
द्वारा ही भगवान् कृष्ण का स्मरण, भक्त की मृत्यु के समय, ९९
में भगवान् का स्मरण, २३
द्वारा मुक्ति, ५५, ५७, १४३
द्वारा सभी कष्टों से मुक्ति, २
द्वारा ही समस्त सुखों की प्राप्ति, १४४
की सरलता, ७६
भगवान् के भक्तों की सेवा भगवान् की सर्वोत्तम सेवा, ८०
भगवान में श्रद्धा द्वारा भय पर विजय, ४३
भगवान् की सेवा
की उत्तमता, भक्तों की सेवा के रूप में, ८०
मुख्य *रस* के रूप में, ६०-६१
भज हु रे मन गीत में भगवान् की पूजा की आवश्यकता के बारे में बताया गया है, ३५
भवलुण्ठन कोविन्द का तात्पर्य, ९
भवे भवे का तात्पर्य, २२

भ्रम
अन्धकूप से तुलना, **१०५-०६**
अनियंत्रित इन्द्रियों के द्वारा, **१०७**
भौतिकवादियों का, ९
भारतवर्ष भक्तिमय सेवा के लिए सर्वोत्तम स्थान, १३१
भीष्मदेव बताते हैं
कृष्ण के वीररस के बारे में, ७५
भगवान् के स्मरण के बारे में, ७६
भोगवाद
द्वारा समस्त विपत्तियाँ, १०९
भौतिक इच्छा
की तुलना पीलिया रोग से, २
हरे कृष्ण महामंत्र के जप द्वारा लुप्त हो जाती है, ११७
भौतिक जीवन
की तुलना
अन्धकूप से, १०७
डुबाकर दिये जाने वाले कष्ट से, ५४
धागे में पिरोये मोतियों से, ९०
नकली मोर से, २०
बन्दी गृह से, १९
मरूस्थल से, १९-२०, ३७
समुद्र से, २१, ४४, ४७, ४९, ५१, ५६
की भर्त्सना, २१
भौतिकतावादी
आध्यात्मिक रूप से अन्धे, १८
की चार श्रेणीयाँ, २५
की तुलना भक्तों से, २५
द्वारा भगवान् के बारे में गलत धारणा, १३
की मूर्खता, आश्चर्यजनक, १११
मन मित्र एवं शत्रु के रूप में, १०७-१०८
मनुष्य
आधुनिक, की अयोग्यताएँ, ३
का उद्देश्य मुक्ति, ११३
मनः शिक्षा में कृष्ण को पुकारने के बारे में बताया गया है, १०७
महाभारत से उद्धृत, भौतिकवादियों की मूर्खता के बारे में, १११
महाविष्णु सृष्टि के स्रोत के रूप में, १०१
माधवेन्द्रपुरी ने बताया है, भक्तों को निन्दित होने पर अविचल रहना चाहिए, ११४
माया, ९
मायावदियों द्वारा विग्रह की "पूजा," ६४
मांसाहारियों के लिए दण्ड, ६-७
मुक्ति
जीवात्मा का प्रमुख उद्देश्य, ११३
निर्विशेष
मुक्ति (चालू)
की तुलना नरक से, भक्तों के लिए, २७
महत्त्वहीन, भक्तों के लिए, १४४
"माया के अन्तिम फन्दे के रूप में," ३२
हरिनाम के कीर्तन द्वारा, २१, ४३, ५५, ५७, १४३
मुकुन्दमाला स्तोत्र
के पाठकों को आशीर्वाद, **१४७**
में भक्तिमय सेवा में विनम्रता के बारे में बताया गया हैं, १३६-१३७
का सारांश, १४७
मृत्यु के समय की चेतना का निर्णायक होना, ९८
यश
की इच्छा की तुलना चाण्डाल से, ११६
की तुलना शूकर मल से, ११६
यतयः का तात्पर्य, ११८
यमराज
ने पाप का निवारण भगवान् के पवित्र नाम के द्वारा होने के विषय में बताया है, ४४
पापीयों को दण्ड देने वाले के रूप में, ४४
भगवन्नाम की मधुरता के बारे में, ८२
यशोदा, १४
याज्ञवल्क्य, ५३
यामुनाचार्य
ने कृष्णभावनामृत द्वारा प्राप्त विरक्ति के बारे में बताया है, ७४
भगवान् की सेवा के बारे में बताया है, ६१
ने भौतिकवादियों द्वारा भगवान् के पवित्र नाम की अवगणना के बारे में बताया है, ८७
युगधर्म
भगवन्नाम के कीर्तन के रूप में, ११८
की व्याख्या (वर्णन), ११२
युधिष्ठिर महाराज ने भौतिकवादियों की मूर्खता के बारे में बताया है, १११
योगनिद्रा, १४०
योग, में उन्नति के लिए विरक्ति आवश्यक, ११८
योगीयों के लिए समाधि कठिन, ७५
रघुनाथ दास गोस्वामी
द्वारा प्रणाम, १३५
ने यश की व्यर्थता के विषय में बताया है, ११६
की विरक्ति के बारे में, २१
रस
पाँच प्रकार के, वर्णित, ४
विस्तृत वर्णन, १४
रामचन्द्र, भगवान्, २१
रामानुज द्वारा गुप्त मंत्र को प्रकट करना, ११९

रूप गोस्वामी उद्धृत करते हैं
पवित्र नाम के बारे, ८१-८२, ९३
भक्ति रूपि रस्सी के बारे में, १०७
भक्तों के प्रति समान दृष्टि के बारे में, ६७
लक्ष्मी, आध्यात्मिक विविधता के स्रोत के रूप में, ३
'वरद' का तात्पर्य, ३
वसुदेव (कृष्ण के पिता), १४
द्वारा की गयी तपस्याएँ, १२८-२९
वासुदेव (कोढ़ी) को चैतन्य महाप्रभु के द्वारा ठीक कर देना, ६६
वास्तविक धर्म, भक्तिमय सेवा, ३१
विद्या का तात्पर्य, १०६
विनम्रता
पवित्र नाम का जप और, ८५, १३६
भक्त का गुण, ८०, १३६
विष्णु भगवान् की तुलना नाव से, ४४-४५
वृन्दावन के ज्येष्ठ जनों की प्रबुद्धता, ११०
वृन्दावन में, ज्येष्ठ लोगों द्वारा भक्तिभाव, ११०
'वृष्णिवंश प्रदिप' का तात्पर्य, १४-१५
वेदान्त के अध्ययन से मुक्ति नहीं, ५६
वैकुण्ठ, ५५, ६१
वैदिक साहित्य का मुख्य उद्देश्य भगवान् का स्मरण करना, ४०
व्यक्तिवाद, १२-१३
शक्ति (अचिन्त्य) के उदाहरण, ९५
शरणागति, भगवान् के प्रति
गजेन्द्र द्वारा, ४६
जीवात्मा की स्वाभाविक स्थिति, ९
का प्रभाव, ६, ५७
द्वारा मुक्ति, ५७
शास्त्र चक्षुर् का तात्पर्य, ८५
शिक्षाष्टक
में उद्धृत किया गया है
भगवन्नाम की शक्ति के बारे में, ८७, ९३
हमेशा पवित्र नाम का जप करने के बारे में, ३६
में नामापराध के बारे में बताया गया है, १०४
शुकदेव गोस्वामी, १४६
शुद्ध भक्त, भगवान् के
की अनासक्ति, २१, २९
की अलिप्तता, भौतिक परिस्थितियों से, २८
की तुलना चार प्रकार के पुण्यात्माओं के साथ, २५
की निर्भयता, २१
का भगवान् के प्रति प्रेम, ३६
का वर्णन, २६
की संगति का प्रभाव, १०४
शुद्ध भक्त, भगवान् के (चालू)
की समता, २८, ३३
की सेवा का प्रभाव, १०४
शुद्ध भक्तिमय सेवा के लक्षण, १०४
शुद्ध नाम का तात्पर्य, १४४
शेष नाग, ९
श्रीनिवास आचार्य षड् गोस्वामी द्वारा किये गये दण्डवत् प्रणाम के बारे में बताते हैं, १३२
श्रीमद्भागवत में उद्धृत किया गया है
अजामिल द्वारा भगवान् के पवित्र नाम के उच्चारण के बारे में, १३३
आसक्ति के बन्धन को काटने के बारे में, १३९
कृष्ण कथा जन्म-मृत्यु रूपी बिमारी की औषधि के रूप में, ५५
कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् होने के बारे में, १२५
कृष्णभावनामृत द्वारा प्रत्येक वस्तु की उपयोगिता के बारे में, ६८
कृष्णभावनामृत सर्वोच्च ज्ञान के रूप में, ११३
क्षीरोदकशायी विष्णु के विषय में, १४०
गजेन्द्र द्वारा भगवान् की शरणागति के बारे में, ४६
जीवन को सादगीपूर्ण बनाने के बारे में, ६३
जीवात्माओं का भगवान् के अधीन होना, १०१
निर्विशेषवाद द्वारा गुमराह किये जाने के बारे में, १०१
निर्विशेषवादियों की असफलता के बारे में, ११६
पवित्र नाम के कीर्तन द्वारा प्राप्त आनन्द, ६१
पापफलों से भक्तों की सुरक्षा के बारे में, ४४
पुरुषों पर स्त्री के प्रभुत्व के बारे में, ७३
पृथ्वी भक्तिमय सेवा के लिए सर्वोत्तम स्थान, १३१
फौलाद के हृदय के बारे में, १०४
भक्तिमय सेवा की महत्ता के बारे में, ४९
भक्तिमय सेवा द्वारा मुक्ति के बारे में, ४८
भक्तों द्वारा लोकमत के प्रति उदासीन होने के बारे में, ६०
भगवतन्नाम की कीर्तन द्वारा सहनशीलता, १२२
भगवान् के पवित्र नाम की शक्ति के बारे में, ९२
भगवान् की पूजा के बारे में, ६१
भगवान् की शरणागति के बारे में, ५०
भगवान् के स्मरण के लिए विपत्तियों का प्रेरणा रूप होना, ४६
भगवान् की सुन्दरता के बारे में, ६५
भागवत के पाठकों को प्राप्त लाभ, १४७

श्रीमद्भागवत में उद्धृत किया गया है (चालू)
भीष्मदेव द्वारा भगवान् के कृष्ण के स्मरण के बारे में, ७५
भौतिक जीवन के भ्रम के बारे में, ४५
वर्तमान युग में पवित्र नाम का कीर्तन ही प्रमुख धर्म, ११८
श्रीमद्भागवत में बताया गया है
भक्तियोग एवं उसकी नौ विधियाँ, ८६
भक्तों द्वारा मुक्ति तुच्छ, १४३
भगवान् के जन्म के बारे में, १२
भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन के नियमों के बारे में, ५५
श्रील प्रभुपाद उद्धृत करते हैं
एटलस के बारे में, १२९
कुन्ती महाराणी की प्रार्थनाओं के बारे में, १३८
कृष्णत्वदीय श्लोक के विषय में, ९९
गजेन्द्र की प्रार्थनाओं के बारे में, १३८
जीव गोस्वामी द्वारा रचित संस्कृत व्याकरण के बारे में, १२३
तृतीय श्रेणी के बारे में, १३५
पवित्र नाम के जप के बारे में, ५७, ८२, ८५
पृथ्वी भक्तिमय सेवा के लिए सर्वोत्तम स्थान होने के बारे में, १३१
भक्तों को निन्दा पर अविचल रहने के बारे में, ११४
भक्तों की सेवा के बारे में, ७०–८०
भगवद् धाम वापस जाने का साधन, १०४–०५
भगवान् की सेवा के लाभ के बारे में, ६०
भगवान् द्वारा सुरक्षा प्रदान करने के बारे में, १२६–२७
मन की संतुष्टि कृष्णभावनामृत के द्वारा, ७६
माया के आखरी फन्दे के बारे में, ११६
शास्त्रों की अवहेलना करना आत्महत्या के बराबर, १३४
शुकदेव गोस्वामी और *भागवतम्* के बारे में, १४५–१४६
सभी समस्याओं का पूर्ण रूप से निवारण शुद्ध कृष्ण प्रेम द्वारा, ११७
स्वतंत्र इच्छा के बारे में, १०१
श्रील प्रभुपाद बताते हैं,
दीक्षा द्वारा कर्मफलों से मुक्ति के बारे में, ४४
(उनके) शिष्यों के बारे में, जो वैकुण्ठ से आये तेजस्वी देवदूतों से लगते हैं, ६६
'श्री वल्लभ' सम्बोधन का तात्पर्य, ३
श्रुति मंत्र में भगवान् की इन्द्रियों के बारे में बताया गया है, ३३
श्रेयस और *प्रेयस*, ११८
श्वेतदीप, १४०
श्वेताश्वतर उपनिषद्
भगवन्नाम के जप के बारे में बताया है, ११२
भगवान् की शक्तियों के बारे में उद्धरण, १८
षट्-सिद्धी का तात्पर्य, १०२
षड् गोस्वामी और भगवतन्नाम का कीर्तन, ५७
संन्यास
द्वारा योग में सफलता, ११८
की व्याख्या, ११८
संस्कृत व्याकरण द्वारा कृष्णभावनामृत सिखाया गया है, १२३
सङ्कीर्तन
के कारण पृथ्वी सर्वोत्तम स्थान, १३१
सकाम कर्मियों की तुलना भक्तों और प्रयोगवादी दार्शनिकों के साथ, २०
सत्राजित, ९०
सनातन गोस्वामी पवित्र नाम के बारे में बताते हैं, ८३
समाधि की परिभाषा, ७५
समानताएँ
अग्नि और जन्म मृत्यु का चक्र, ९३
अन्धकूप एवं भौतिक जीवन, १०७
अन्धकूप एवं माया, १०६
अमृत और भगवान् कृष्ण, १०९
अमृत वर्षा और कृष्ण कथा, ६७
आकाश का वायु से और परमात्मा का पदार्थ से पृथक् होना, २८
आत्महत्या करने वाला पुत्र और अभक्त, २७
औषधि एवं कृष्ण कथा, ५५
औषधि एवं कृष्ण की महिमा, ९४
औषधि और कृष्णभावनामृत, ११०
औषधि और भगवान् का पवित्र नाम, ५४, ९४
कमल और भगवान् के हाथपाँव, ३८
चन्द्रमा का प्रकाश और भक्त की बुद्धि, ६५
चांडाल और यश की कामना, ११६
चातक पक्षी और गोपियों के नेत्र, ९०
चोर एवं इन्द्रियाँ, १०५
छोटे पक्षी एवं भक्त में, ४७
जलती हुई अग्नि एवं निर्विशेष ब्रह्म, १३
झील में खेलते जलचर और कृष्णभावनामृत में मग्न भक्तों में, ३९
झील और भगवान् कृष्ण, ३८
डुबाकर दिये जाने वाले कष्ट एवं भौतिक संसार, ५४
तोता और शुकदेव गोस्वामी, १४६
दर्पण एवं हृदय, ३
नकली मोर और भौतिक जगत, २०
नाव और भगवान् के चरणकमल, ४९, ५१
नाव और भगवान् विष्णु, ४४–४५

समानताएँ (चालू)
पीलिया एवं भौतिक आसक्ति, २
पूर्वी क्षितिज में सूर्य का उदय होना और देवकी से भगवान् कृष्ण का जन्म, १२
प्लग निकाल देने पर भी चलता हुआ पंखा एवं कर्मों के शेष प्रभाव, ४४
बत्तख का भोजन के लिए चिल्लाना और भक्तों का कृष्ण के लिए रोना, १३८
बन्दीगृह और भौतिक जगत, १९
बालक का अपनी माता के लिए रोना, और भक्त का कृष्ण के लिए रोना, १३८
बिल्ली द्वारा अपने बच्चे को और अपने शिकार को मुँह से पकड़ना एवं भौतिकवादी एवं भक्त की मृत्यु, २३
बुरे स्वप्न में दिखने वाले शत्रु एवं पापफल, ४३
बेलगाम घोड़ा और अनियंत्रित इन्द्रियाँ, १०७
भँवर एवं पत्नी, **४९**
मछली और भगवान् की आँखें, **३८**
मणि एवं कृष्ण, ८९-९०
मधु एवं पवित्र नाम, **८२**
मधु एवं राजाकुलशेखर का काव्य, १४५
मधुमक्खी एवं *मुकुन्द-माला स्तोत* के पाठक, १४५
मधुमक्खी और राजा कुलशेखर, १४५
मरुस्थल और भौतिक संसार, १९-२०
माता का अपने बालक के प्रति स्नेह और भगवान् का अपने भक्त के प्रति स्नेह, २८
मेढ़क का टर्राना सर्प को आकर्षित करता है और भौतिकवादी गीत मृत्यु को आकर्षित करते हैं, ६९, १११
मोती एक धागे में पिरोये हुए और भौतिक जगत का कृष्ण पर टिके रहना, ९०
रस्सी एवं पापकर्म, १०७
रस्सी एवं भक्तिमय सेवा, १०७
राजा अपनी प्रजा के साथ, भगवान् अपनी शक्तियों के साथ, १००
लाखों डॉलर एवं शुद्ध कृष्ण प्रेम, ११७
लुटेरे एवं काम, १०७
वर्षा करने वाले बादल और कृष्ण, ९०
वायु का झोंका और अनियंत्रित इन्द्रियाँ, ६९
विद्युतवेत्ता द्वारा बिजली का प्रयोग और भगवान् द्वारा उनकी शक्तियों का प्रयोग, १८
शून्य और भगवान् के बिना सभी, ४
समानताएँ (चालू)
समुद्र और भौतिक जीवन, २१, **४६, ४७, ४९,** ५१, ५६, **१३८,** १४०, १४५
समुद्री दैत्य और रिश्तेदार, **४९**
सर्प द्वारा डसा जाना और भौतिक क्लेश, ९४
सूकर मल एवं यश में, ११६
सूर्य एवं पवित्र नाम, १४३
हंस एवं मन, **९७,** ९८, १४८
हिंसक जानवर और पारिवारिक सदस्य, ५१
सम्बन्ध, १०३
सर्वेश्वरवाद, ५२
सहनशीलता
कृष्णभावनामृत द्वारा, **१२१**
गोपियों की, १२१
प्रचारक का प्रमुख गुण, ११४
भक्तों की, १२१
और मृत्यु का समय, ५७
सार्वभौम भट्टाचार्य द्वारा भक्त का लोक चर्चा से विरक्त होने के बारे में, ६२
स्टाल, डॉ. जे. एफ. द्वारा प्रभुपाद के साथ पत्रों का आदान-प्रदान, ११२
स्तवमाला,
उद्धृत, भक्तिरूपी रस्सी के बारे में, १०७
भगवान् की सेवा के बारे में, ६१-६२
स्यमन्तक मणि, ९०
हनुमान, २१
हरिदास ठाकुर
ने पवित्र नाम के जप द्वारा मुक्ति के बारे में बताया है, ४३
पवित्र नाम, उनकी शक्ति के बारे में बताया है, १४३
द्वारा भगवन्नाम का जप, ८२
भगवान् के प्रिय भक्त के रूप में, ५
की विनम्रता, ८२
ने हमेशा हरे कृष्ण जप के बारे में बताया है, ८५
हरि नामामृत व्याकरण, १२३
हरिभक्ति सुधोदय में बताया गया है, कृष्णभावनामृत द्वारा विरक्ति के बारे में, ११७
हरे कृष्ण मंत्र
के जप से पाप की निवृत्ति, ४४
श्लोक उद्धृत, १७, ९२